CARMEL COLLEGE, MALA

Nationally Re-accredited with 'A' grade (Third Cycle)

Thrissur Dt., Kerala- 680732, Ph:04802890247, Fax: 04802890247

E-mail: carmelcollege@rediffmail.com, Website: www.carmelcollegemala.ac.in

Criteria III

Research, Innovations and Extension

3.3.3 Number of books and chapters in edited volumes/books published and papers published in national/ international conference proceedings per teacher during last five years

Details of Publication (Books and Chapters)

Submitted to

THE NATIONAL ASSESSMENT AND ACCREDITATION COUNCIL

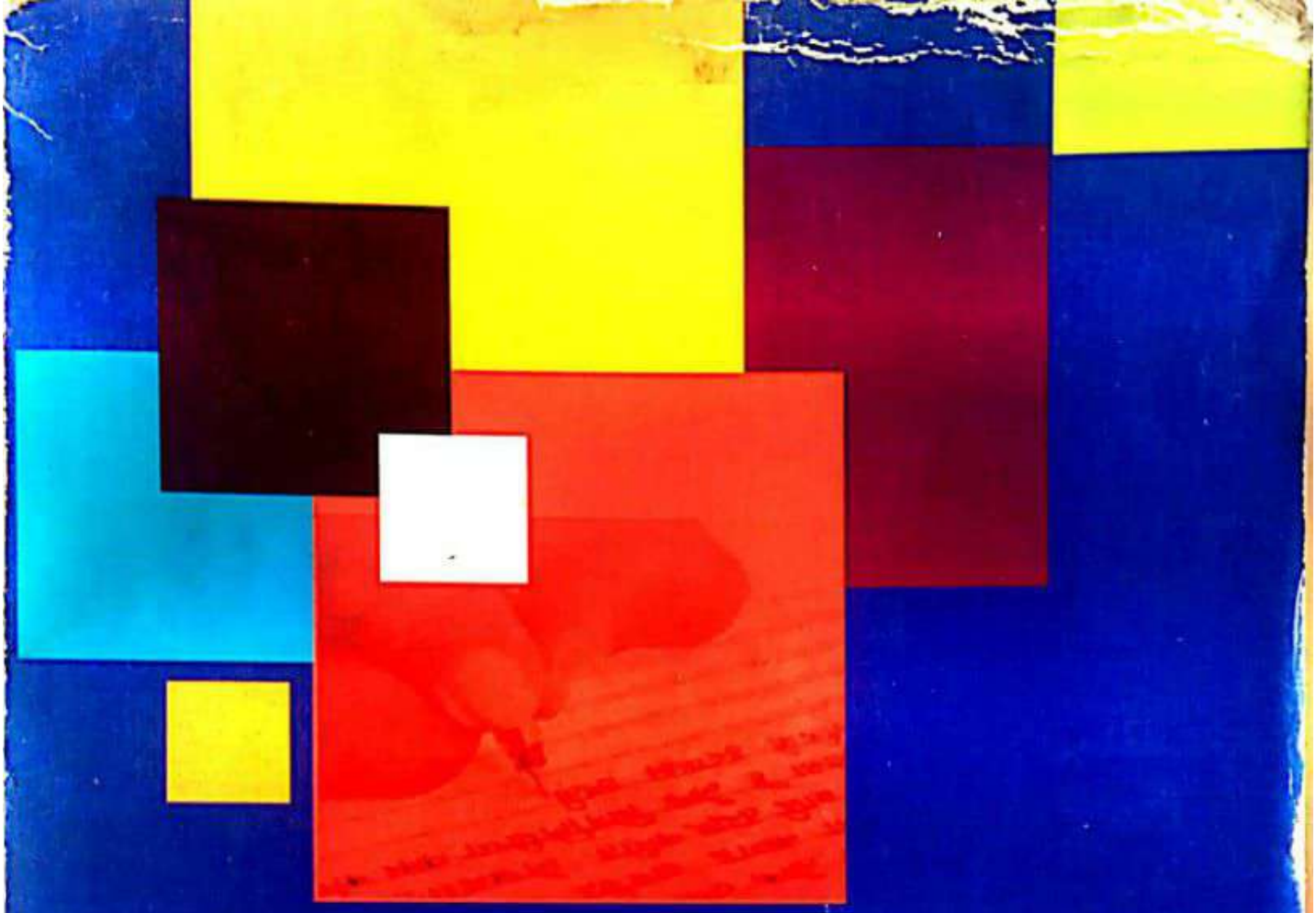

भारतीय साहित्य : अद्यतन प्रवृत्तियाँ

सं. डॉ. आर. सेतुनाथ

Scanned with CamScanner

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से अनुदान प्राप्त

ISBN : 978-81-8111-363-4

© : सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशक : गोविन्द पचौरी

जवाहर पुस्तकालय

हिन्दी पुस्तक प्रकाशक एवं वितरक,

सदर बाजार, मथुरा-281001 (उ. प्र.)

दूरभाष : 09897000951

ई-मेल: jawahar.pustakalaya@gmail.com

मूल्य : ₹ 300.00

प्रथम संस्करण : 2016

आवरण : गोविन्द पचौरी

शब्द-संयोजन : शालू कम्प्यूटर्स, शाहदरा, दिल्ली-110032

फोन नं. 09313588569

मुद्रक : जय भारत प्रेस, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

Scanned with CamScanner

से कटे हुए मानव की विस्थिति	डॉ. इंदु वेलसार	149
दलित कविता : एक पहचान	डॉ. मंजुला के.	157
ग्रामीणता और पारिस्थितिक विमर्श	डॉ. वी.के.सुब्रमण्यम	166
'राधा की परिकल्पना : भारतीय साहित्य में	डॉ. माया पी.	174
समकालीन हिन्दी कहानियों में संतान सत्ता और वृद्धजनों की अस्मिता की अभिव्यक्ति	डॉ. राधामणि सी.	181
गिरीशकार्नाड का नाटक साहित्य और हयवदन	डॉ.नामदेव एम. गौडा	189
रूपनारायण सोनकर के नाटक 'एक दलित डिप्टी कलेक्टर' में चित्रित दलित जीवन	डॉ. शरशाद खान एम	206
पर्यावरण : के. जी शंकरपिल्लै की कविताओं में	श्रीकला टी. के.	209
कन्नड लोक परंपरा और लोरी साहित्य	शकुंतला एस. पाटिल	215
मलयालम उपन्यास ऊर्मिला : एक अध्ययन	डॉ. संगीता पी.	225
मलयालम दलित कहानीकार टी. के. सी वटुतला	डॉ. शैलजा वाडी	229
'एनमकजे प्रदत्त पर्यावरण सुरक्षा पाठ'	डॉ. नरमदा पी.	234
21वीं सदी के हिन्दी उपन्यासों में पुरुष विमर्श	मोहन सिंह	238
'ओलिप्रम कटवु' और 'किसके पक्ष में'—स्त्री चिन्तन और बदलते दाम्पत्य संबंध की कहानियाँ	डॉ. षिबी सी	244
दलित आलोचना : हिन्दी आलोचना की अद्यतन प्रवृत्ति	मणिकंठन सी.सी.	248
बंगला साहित्य में भारतीय मूल्य	प्रो. ईप्शिना चन्दा	253
'ग्लोबल गाँव के देवता' : वैश्वीकृत समाज का प्रतिनिधि उपन्यास	डॉ. आर. सेतुनाथ	267

Scanned with CamScanner

'ओलिप्रम कटवु' और 'किसके पक्ष में'–स्त्री चिन्तन और बदलते दाम्पत्य संबंध की कहानियाँ

–डॉ. षिबी सी

समकालीन साहित्य में मानवीय संबंधों के अंतर्द्वंद्वों का चित्रण करने की ओर साहित्यिकारों ने विशेष ध्यान दिया है। कहानियों के माध्यम से प्रस्तुत द्वंद्वों का मार्मिकता के साथ करने का सफल प्रयास मलयालम तथा हिन्दी के कहानीकारों ने किया है। इस दृष्टि से मलयालम की कहानी लेखिका रेखा और हिन्दी की प्रख्यात महिला कहानीकार राजी सेठ की रचनाएँ महत्वपूर्ण हैं।

राजी सेठ की कहानी 'किसके पक्ष' में वह अपने समूचे रचनाओं की तरह, पुरुष विरोधी आधुनिक स्त्री की तरह न तो स्त्री होने से इनकार करती हैं और न उसे नष्ट कर देती हैं। नैसर्गिक रूप से उसकी शक्ति और संभावना को चित्रित किया गया है।

वेला और विक्की के बीच तलाक होती है। एक दिन वेला अपने पति को छोड़कर घर से चली जाती है। विक्की का मित्र और वेला को समझने वाले जयन्त इन दोनों के बीच एक ऐसी जगह है, जो दोनों के लिए मध्यवर्ती की भूमिका निभाता है। वेला और विक्की के बीच में पड़कर संकटग्रस्त जयन्त को इन्दौर की ओर ट्रांसफर हो जाता है, जिससे जयंत विशेष शांति एवं सुख की स्थिति महसूस करता है। इस बीच विक्की और बेटी नीरू को छोड़कर वेला घर से बिना किसी से कहकर चली जाती है। विक्की जयन्त से अनुरोध करता है कि वेला से बात करें और उसे वापस बुलायें। लेकिन जयन्त को यह समझ में नहीं आता है कि किसके पक्ष में रहूँ। वह स्वयं वेला के निर्णयों पर दखल नहीं देना चाहता। समाज

CS Scanned with CamScanner

की अदृश्य निष्ठा के नाम पर अपनी को अक्षुण्य रखने को कैसे कहा जाए? अन्त में तलाक होती है तो नीरू को लेकर उस समय तक विक्की को जो आशंका थी, धीरे-धीरे फीका पड़ने लगता और वह दूसरी शादी के लिए तैयार हो जाता है। यह जानकर वेला जयन्त से अनुरोध करती है कि विकी से वह कहे कि नीरू थोड़ी और बड़ी हो जाए तब वह विक्की दूसरी शादी न करें। लेकिन जयन्त यह अनुरोध नहीं स्वीकार पा रहा है और विक्की के हित में कार्य करने के लिए तैयार है।

'ओलिप्रम कटवु' कहानी में कहानीकार ने मुरलीकृष्णन और तारा के दाम्पत्य जीवन के माध्यम से किसके पक्ष में से थोड़ा अलग होकर सोचने को हमें वाध्य कर दिया है। इस कहानी में पुरुष वर्चस्व का चित्रण है। स्त्री को हमेशा शंकाकुल दृष्टि से देखने वाले समाज का चित्रण मुरलीकृष्णन के माध्यम से किया है। मुरलीकृष्णन अपनी पत्नी तारा से बेहद प्यार करता है और उनकी निष्कलंक वर्तावों में अपने को स्वस्थ पाता हूँ लेकिन जब तारा मुरलीकृष्णन से अनुमति लेकर शोध करने के लिए चली जाती है तो स्थिति धीरे-धीरे बदलने लगती है। लोग तारा को बुरी दृष्टि से देखने लगते हैं और तारा के बारे में अपवाद भी कहने लगते हैं। थोड़ा कुछ तो मुरलीकृष्णन के कानों में भी आ पहुँचता है और अपने दोस्तों की सभा में इस पर चर्चाएँ भी होती हैं। ऐसी चर्चाओं के बारे में जानकर मुरलीकृष्ण को वेदना होती है आखिर अपनी माँ के मुँह से वही बातें सुनकर वेदना अपनी चरम सीमा पर पहुँचती है। अंत में वह खुद तारा के विश्वविद्यालय जाकर उसे छोड़ देने की बात सोचता है और अपने मन को तैयार कर देता है। जब वह तारा के होस्टल पहुँचता है तो मालूम हो जाता है कि वह किसी लड़के के साथ 'ओलिप्रम कटुव'–(ओलिप्रम कटुव केरल के जिला मलपुरम की एक जगह विशेष के पास एक सुन्दर जगह) गई हुई है। यह सुनकर उनका क्रोध और भी बढ़ जाता है। उसका भाव देखकर पहरेदार कहता है कि तारा से नाराज न हो, वह अच्छी लड़की है। जब तारा वापस आ जाती है तो कहानी का पूरा ढाँचा ही बदल जाता है। तारा कहती है कि आज मुरली का जन्मदिन होने के कारण ओलिप्रम कटुव के मन्दिर गई थी। रात होने के डर से श्रीनी को भी साथ लेकर गई थी। यह सुनकर मुरली थोड़ा शान्त हो जाता है और क्रोध का सम्पूर्ण शमन तब होता है जब तारा कहती है कि वह शोध पूरा करके तुरन्त वापस आना चाहती है और माँ बनना चाहती है। तब मुरली सोचने लगता है कि अब मेरा शेष जीवन इसके साथ ही बिताना चाहिए। तारा से उसका प्यार और भी बढ़ जाता है।

इन दोनों कहानियों के माध्यम से कहानीकार दाम्पत्य और स्त्री जीवन के

विभिन्न परिदृश्यों को नये रूप में हमारे सम्मुख रखते हैं, जो साम्य-वैषम्य से भरपूर हैं।

स्त्री के दो जीवन पक्ष

बेला अपने आपको उन्मुक्त मानती है। वह सोचती है कि ताकतवर हो जाना केवल पुरुष का ही बपौती नहीं है। दाम्पत्य की अनिवार्य गिलगिली दासता को समाप्त करने को वह तैयार है। बेला परंपरा और पारिवारिक संबंधों की खेमे में नहीं जीना चाहती। वह जानती है कि जब स्त्री कुछ हटकर सोचती है तो मान-सम्मान, यश-अपयश की चिन्ता होने लगती है, जिसकी वह सख्त विरोधी है। 'बनी बनाई हुई इमेज' पर बेला का विश्वास नहीं है।

तारा अपने को पारिवारिक और दुनियाई रिश्तों को बरकरार रखते हुए उन्मुक्त रखना चाहती है। वह पुरुष को तोड़ने के लिए उतारू नहीं, बल्कि अपने पति को अपने साथ रखने का प्रयास करती है। वह सबको प्यार और ममता से देखती है। आधुनिक दुनिया के परिवेश में रहकर भी वह अपने अन्दर भारतीय नारी संकल्पना को कायम रखने का प्रयास करती है।

शक्तिहीन पुरुष का प्रतीक

'ओलिप्रम कटुव' की मुरली और 'किसके पक्ष में' की विक्की में कई समानताएँ हैं। दोनों के माध्यम से कहानीकारों ने बदलती सांस्कृतिक परिवेश का जिक्र किया है। विक्की और मुरली दोनों, प्रभुतापूर्ण पुरुष हैं, लेकिन उनमें सामाजिक मान्यताओं को तोड़ने की शक्ति और क्षमता नहीं है। दोनों अपने-अपने परंपरागत जीवन शैलियों पर टिके हुए हैं और बनी बनाई इमेज के पक्षधर हैं। समाज के खोखले मर्यादावाद के प्रतिष्ठापकों की तरह दोनों कार्यवाही करते हैं। विक्की को भय है कि अगर लोग यह जान लिया कि बेला उसे छोड़कर चली गइ है, तो वह बड़ी अपयश की बात है।

तारा के प्रति अदम्य प्यार रखते हुए मुरली भी भयग्रस्त है कि तारा कहीं उसे छोड़का चली जाय। तारा की बारे में अपवाद सुनकर उसे भी विककी की तरह मान-सम्मान का भय है। किसी भी हालत में वह तारा को छोड़ना नहीं चाहता और हर क्षण धैर्य सँभालता रहता है। विक्की भी कई बार बेला की वापस आने की प्रतीक्षा करता है। जयन्त को वह निरन्तर बेला से बात करने को विवश भी कर देते हैं।

मातृत्व–नये संदर्भ में

बेला और तारा मातृत्व के धरातल पर एक जैसे लगते हैं। बेला अपने आपको स्वायत्त बनाने के बाद नीरू को ले जाने के बारे में जयन्त से कहती है कि बेटी बड़ी होने तक पुनर्विवाह न करें। यहाँ आधुनिक स्त्री के अन्दर भी प्रतिष्ठित मातृत्व की माधुर्य का भाव झलकता है। तारा अपनी शोध पूरा करके माँ बनना चाहती है, जो आधुनिक पढ़ी-लिखी औरत की इच्छा है।

बदलते दाम्पत्य-संबंध

आज के तनावपूर्ण सामाजिक जीवन में दाम्पत्य किस प्रकार बदल रहा है का चित्रण दोनों कहानियों में विद्यमान है। पति और पत्नी के बीच में समझौता की खड़िया फीकी पड़ रहा है। एक–दूसरे को चाहते हुए भी अपने आप को स्वतंत्र मानकर विक्की और बेला के बीच तलाक हो जाती है। विक्की यह मानता है कि वह स्वयं बेसहारा बन गया है। आज तक स्वयं को बेला को समर्पित नहीं किया है–यह जानकर भी पुरुष की प्रभुताभरी स्वर में वह जयंत से कहता है कि "मैं उसे ब्याहकर लाया था... क्या कोई आदमी अपनी ब्याहता के साथ ऐसा कर सकता है?" इसी तरह दाम्पत्य की एडजेस्टमेंट से बोर होकर बेला कहती है कि "घृणा का भी प्यार की तरह एक बन्धन होता है–नकारात्मक बन्धन।"

विक्की और मुरली पर अतीत का बोझ है। जीवन को नये मौलिक दृष्टि से देखने की शक्ति दोनों में नहीं है जो बेला और तारा में विद्यमान है। बेला अपनी वैवाहिक जीवन को छोड़कर भी अपनी अस्तित्व को बनाए रखती है, तो तारा ऐसा नहीं कर पाती है। सारे बंधनों के बीच में भी वह स्वयं को खोजती रहती है। दोनों कहानियाँ विविध मुद्दों पर मिलते-जुलते लगते हैं।

☐

Scanned with CamScanner

SVASH 2016

Govt Reg. No: TVM/TC/493/2013

Proceedings of the Third International Seminar of Swami Vivekananda Association of Science & Humanities 2016

VOLUME - I- LANGUAGES

NUMBER AND LETTERS ARE LIKE BOTH EYES

SVASH

ISBN 978-81-928007-45

★★★

Research papers & Articles of the 3rd International Seminar of SVASH

★★★

Editor - Dr. M. Jaya Prakash

Scanned with CamScanner

CONTENT

MALAYALAM

PAGE NO

1 മലയാള അച്ചടിമാധ്യമ വളർച്ചയും ചാവറയച്ചനും
Sr. Beena.D.L 1-4

2 വത്തരിങ് ഹൈറ്റ്സ്- ഒരു പുനർവായന
Bincy Dominic 5-8

3 പണ്ഡിറ്റ് കെ.പി.കറുപ്പനും കേരളീയനവോത്ഥാനവും
Subash.V.R 9-12

4 കേരളത്തിലെ ധന്വന്തരി ക്ഷേത്രങ്ങൾ
Biji.K.B 13-20

5 സോൾട്ട്ആന്റ് പെപ്പറും മലയാളിയുടെ ജനപ്രിയകാഴ്ചയും
Devi.N 21-23

6 സ്ത്രീപ്രതിനിധാനങ്ങളിലെ പ്രാദേശിക പ്രതിരോധങ്ങൾ
(ബിന്ദുകൃഷ്ണൻറെ കവിതകളെ ആസ്പദമാക്കിയുള്ള പഠനം)
Vidya..M.V 24-25

7 ചലച്ചിത്രത്തിലെ സ്ത്രീകഥാപാത്രങ്ങളുടെ ചുവടുമാറ്റം
(പി. പത്മരാജൻറെ സ്ത്രീകഥാപാത്രങ്ങളെ ആധാരമാക്കിയുള്ള പഠനം)
Brijit K Jacob 26-27

8 സെബാസ്റ്റ്യൻ കവിതകളിലെ പുത്തൻ പ്രവണതകൾ
Jophy Raphy 28-30

9 കുംഭാര സമുദായത്തിന്റെ ജീവിതക്രമങ്ങൾ
Shinta Anto 31-32

10 സ്ത്രീയും പരിസ്ഥിതിയും സുഗതകുമാരിയുടെ കവിതകളിൽ.
Dr.Ganga Devi.M 33-36

11 ആഖ്യാനത്തിലെ കാലവും മനുഷ്യനൊരാമുഖവും
Vijitha.P 37-39

12 തിരുക്കുറളിന്റെ അകപ്പൊരുൾ
Sowmya.P.R 40-52

13 മണിപ്രവാള കവിതാ സങ്കേതങ്ങൾ സ്വാതി തിരുനാൾ പദങ്ങളിൽ
Dr. S. Sreedevi 53-54

14 ഐവർകളിയും കണ്യാർകളിയും ഒരു താരതമ്യാത്മക വിശകലനം
Dr. R. Vijayalatha 55-57

15 നവോത്ഥാനസങ്കല്പം - ചാവറയച്ചന്റെ ജീവിതത്തിലും കൃതികളിലും
Sr.Sindhu Sebastian 58-61

16 പാരിസ്ഥിതികസ്ത്രീവാദദർശനവും.സ്ത്രീസ്വത്വപ്രതിസന്ധിയും- സാറാജോസഫിന്റെകഥകളിൽ
Miss. Philomina K.J 62-65

17 പ്രകൃതിജീവനം- വിശ്വചേതന പരിരക്ഷിക്കുന്ന തത്ത്വശാസ്ത്രം
Dr. P. Valsala Devi Pillai 66-71

18 പ്രണയവും പ്രകൃതിയും കാൽപനിക കവിതയിൽ
Deepa.M.V 72-79

19 കേരളീയ നവോത്ഥാനവും സ്ത്രീ മുന്നേറ്റവും
Dr.Jancy.K.A 80-84

20 പ്രാദേശികവത്കരണം ഭാഷ, തൊഴിൽ, സംസ്കാരം
Arun.T.V 85-86

21 നവോത്ഥാനവും ആർഷപാരമ്പര്യവും ഇന്ത്യൻ സമൂഹത്തിൽ
Thushara.K.T 87-88

22 കേരളനവോത്ഥാനചരിത്രത്തിൽ പണ്ഡിറ്റ് കറുപ്പന്റെ സ്ഥാനം
Subash.V.R 89-93

Scanned with CamScanner

വതറിങ് ഹൈററ്സ്- ഒരു പുനർവായന

Biney Dominic, Research scholar

SreeSankaracharya Sanskrit University

വിശ്വസാഹിത്യത്തിൽ സ്വന്തമായ ഇടം കണ്ടെത്തിയ *വതറിങ് ഹൈററ്സിന്റെ* പുനർവായനയെന്ന നിലയിലാണ് എം. പി രാജൻ എമിലി ജെയിൻ ബ്രോണ്ടിയുടെ *ഞൗവേല്യശിഴ ഒലശഴവേ* വിവർത്തനം ചെയ്യുന്നത്. 1750-1802 കാലഘട്ടത്തിലെ ഇംഗ്ലണ്ടിന്റെ പശ്ചാത്തലത്തിൽ വ്യത്യസ്തമായ മനുഷ്യമനസ്സുകളെ വിശ്ലേഷിക്കുന്ന തരത്തിലാണ് നോവലിന്റെ രചന. നാടകീയമായ അവതരണരീതിയും സവിശേഷമായ രചനാശില്പഘടനയും കരുത്താർന്ന വാക്യപ്രയോഗരീതിയും മററു വിക്ടോറിയൻ നോവലുകളിൽ നിന്ന് ഈ രചനയെ വ്യത്യസ്തമാക്കുന്നു. ഇരുളും വെളിച്ചവുമായി മുന്നോട്ടു നീങ്ങുന്ന എമിലിയുടെ ജീവിതബോധം അവരുടെ എഴുത്തിലും പ്രതിഫലിക്കുന്നുണ്ട്. സ്വജീവിതത്തിൽ അനുഭവിച്ച അതേ താളലയങ്ങൾ അവർ വാക്കുകളിലേക്ക് പകർത്തുകയായിരുന്നു. പ്രണയവും പ്രണയനഷ്ടവും ഉന്മാദവും ഓർമയും സ്വപ്നവും കൂടിക്കുഴഞ്ഞുകിടക്കുന്ന അനുഭവലോകമാണ് ഇവിടെ ആവിഷ്കരിക്കപ്പെടുന്നത്. അതിനിടയിൽ കാലസഞ്ചാരത്തിന്റെ സൂചനകളെ അഴിച്ചെടുക്കാനുള്ള ശ്രമവും കാണാം. *ഞൗവേല്യശിഴ ഒലശഴവേ* ൽ നിറഞ്ഞുനിൽക്കുന്ന അന്തരീക്ഷം അവർ കണ്ട ലോകത്തിന്റെ നേർപതിപ്പായിരുന്നു. ദുഃഖകരമായ സംഭവങ്ങൾ, അകാലമരണങ്ങൾ എന്നിവ നോവലിലെ സജീവസാന്നിധ്യമായി മാറിയത് അങ്ങിനെയാണ്. പ്രകൃതിദൃശ്യങ്ങളുടേയും കാലാവസ്ഥാ വ്യതിയാനങ്ങളുടേയും സമൃദ്ധി അവതരിപ്പിക്കുന്നതിലെ തന്മയത്വത്തിൽ നിന്ന് *Wuthering Heights*ലെഫാംഹൗസുമായി എമിലിയ്ക്കുള്ള അടുപ്പം വായിച്ചെടുക്കാം. കഥയിലെ നായികയായ കാതറിൻ, എമിലിയുടെ ആത്മവത്തയുടെ സ്വരൂപം തന്നെയാണ്. കല്ലുകൊണ്ട് ശില്പം കൊത്തിയെടുക്കുന്നതുപോലെ അത്രമേൽ തീഷ്ണതയോടെ, കരുതലോടെയാണ് നോവൽ മെനഞ്ഞെടുക്കുന്നത്.

തീവ്രവും അനിയന്ത്രിതവുമായ പ്രണയത്തേയും അതിന്റെ നിർദ്ദയത്വത്തേയും സമുചിതമായ ചിത്രണം കൊണ്ട് നോവലിൽ ആവിഷ്കരിച്ചിരിക്കുന്നു. സെക്സോ വയലൻസോ ഇല്ലാതിരുന്നിട്ടു കൂടി രചനയുടെ വ്യത്യസ്തതയാൽ വിക്ടോറിയൻ വായനക്കാരെ ഞെട്ടിക്കാൻ പോന്നതായിരുന്നു ഈ കൃതി. ഗോഥിക് പ്രണയം, വിജനമായ ചതുപ്പുനിലങ്ങൾ എന്നിവയാൽ സമ്പന്നമായ കഥയിലെ പ്രധാനഭാവമായി നിൽക്കുന്നത് പരസ്പരവിരുദ്ധമോ മിശ്രിതമോ ആയ വികാരങ്ങളായിരുന്നു. നാടകീയത നിറഞ്ഞ ആഖ്യാന സവിശേഷത, നാടകം, സംഗീതം, ഓപറ, സിനിമ തുടങ്ങി വ്യത്യസ്ത വ്യവഹാരങ്ങളിലേക്ക് നോവലിനെ പരിവർത്തനം ചെയ്യാനുള്ള സാധ്യതകളൊരുക്കി. ഇന്ന് *ഞൗവേല്യശിഴ ഒലശഴവേ* ലോകസാഹിത്യത്തിൽ സുരക്ഷിതമായ സ്ഥാനം നേടിക്കഴിഞ്ഞു. 19-ാം നൂററാണ്ടിന്റെ ഗോഥിക്പാരമ്പര്യം ഭാഗികമായി അടിസ്ഥാനമാക്കി നിർമിതമായതാണ് *ഞൗവേല്യശിഴ ഒലശഴവേ*. അനർഥങ്ങളും അമാവാസി രാത്രികളും വിചിത്രമായ ബിംബകൽപനകളും കൊണ്ട് നിഗൂഢവും ഭയായകവുമായ പ്രതീതി നോവൽ അനുവാചകനിൽ ഉണർത്തുന്നു. കഥയുടെ ഇടപെടലിന്റെ സവിശേഷത കൊണ്ട് വ്യത്യസ്തമായ രചനാസൗഷ്ടവം അത് പ്രാപ്തമാക്കി.

വിവർത്തനത്തിന്റെ സാധ്യതകളെ വേണ്ടത്ര പ്രയോജനപ്പെടുത്തിക്കൊണ്ടാണ് എം. പി രാജൻ *വതറിങ് ഹൈററ്സിന്റെ* വിവർത്തനത്തിലേർപ്പെടുന്നത്. മനുഷ്യബന്ധങ്ങളുടെ പ്രതീതി ഭാവത്തെ നോവൽ അടയാളപ്പെടുത്തുന്നു. അതിലെ ദാർശനികമായ ധ്വനനസാധ്യതകളെ പരമാവധി പ്രയോജനപ്പെടുത്തുന്നുമുണ്ട്. മൂലകൃതിയുടെ അപ്രമാദിത്വത്തെ ചോദ്യംചെയ്യുന്ന ഇററാമർ ഈവൻ സൊഹറിന്റെ ബഹുവ്യവസ്ഥാ സിദ്ധാന്തവും, മൂലത്തെയും വിവർത്തനത്തെയും രണ്ടു ധ്രുവങ്ങളായി കാണുന്ന രീതിയിൽ നിന്ന് ഇതിനിടയിലുള്ള ചലനാത്മകമായ ഒരിടത്തെകുറിച്ച് അന്വേഷിക്കണമെന്ന് നിർദ്ദേശിക്കുന്ന നിക്കോൾ ബ്രൊഡാർഡിന്റേയും സൂസൻ ഹാർവുഡിന്റേയും അഭിപ്രായങ്ങളും സ്ഥല-കാല ഭേദമനുസരിച്ച് വിവർത്തനത്തിൽ സ്വീകരിക്കാവുന്നതാണെന്ന വാദം അംഗീകരിക്കുന്ന തരത്തിലാണ് എം. പി രാജൻ *വതറിങ് ഹൈററ്സ്* മൊഴിമാററം ചെയ്തിരിക്കുന്നത്. അതിനനുസൃതമായ മാററങ്ങളാണ് കഥയിൽ വരുത്തുന്നതും.

Scanned with CamScanner

നോവലിന്റെ ആരംഭത്തിൽ കഥയുടെ ആത്മാവായി വർത്തിക്കുന്ന കഥാപാത്രത്തിന്റെ ആത്മവത്തയുടെ ആവിഷ്ക്കാരമെന്ന നിലയിൽ അവതരിക്കപ്പെട്ട ആഖ്യാനഭാഗം തുടർന്നു വരുന്ന ഭാഗങ്ങളിൽ മാററി പ്രതിഷ്ഠിച്ചിരിക്കുന്നത് ബോധപൂർവമായുള്ള ഇടപെടലായി വേണം കാണാൻ.

ഒരിക്കലും നശിക്കാത്ത പ്രണയത്തിന്റെ മാനമാണ് *വതറിങ് ഹൈററ്സിന്റെ* ജീവൻ. മറേറതൊരു വികാരത്തേയും അതിവർത്തിച്ച് നോവലിൽ നിലനിൽക്കുന്നതും അതുതന്നെയാണ്. കഠിനമായ വിമർശനത്തോടെയാണ് നെല്ലിയുടെ വാക്കുകളിലൂടെ തെളിയുന്ന ഹീത്ത്ക്ലിഫ്-കാതറൈൻ പ്രണയത്തെ വെളിപ്പെടുത്തുന്നതെങ്കിലും കഥയുടെ ചരടുവലിക്കുന്നതു തന്നെ ആ പ്രണയമാണ്. ഈ പ്രണയത്തെ വാഴ്ത്തുകയാണോ ഇകഴ്ത്തുകയാണോ കഥയുടെ ഉദ്ദേശമെന്ന വ്യക്തമാകാത്ത തരത്തിലാണ് അവതരണം. കഥാനായകനായ ഹീത്ത്ക്ലിഫിന് റൊമാന്റിക് ഹീറോയുടെ പരിവേഷം കൊടുക്കുമ്പോഴും പ്രതിനായകന്റെ വേഷവും ഒപ്പം നൽകുന്നു. സർവ സാമൂഹികനീതികളേയും നിരാകരിച്ചു കൊണ്ട് സാമ്പ്രദായിക വ്യവസ്ഥകളെ പൊളിച്ചെഴുതുകയാണ് എമിലി ബ്രോണ്ടി. സമാന്തരങ്ങളായ രണ്ടു പ്രണയകഥകളാണ് നോവലിൽ പ്രതിപാദിക്കുന്നത്. ഹീത്ത്ക്ലിഫിന്റെയും കാതറിന്റെയും തീവ്രവും തീഷ്ണവുമായ പ്രണയകാലത്തിന്റെ സഞ്ചാരവഴികളിൽ താരതമ്യേന ശാന്തവും അത്രയൊന്നും ശോഭ ലഭിക്കാതെ അരങ്ങേറിയതുമായ ലിന്റണിന്റെയും കാതിയുടെയും പ്രണയം. ഏതൊരു പ്രണയസങ്കൽപവുംപോലെ നായകന്റെ മാനസിക-കായിക സ്ഥിതി പ്രധാനഘടകമായിതന്നെ ഈ നോവലിൽ നിലനിൽക്കുന്നു. ഹീത്ത്ക്ലിഫ് അനാഥനും തീയിൽ കുരുത്തവനുമാണ്. അതിനാൽതന്നെ പ്രകൃതിയുടെ സർവ ഊർജവും സ്വാംശീകരിച്ച ആരോഗ്യം അയാളുടെ കായികപ്രകൃതത്തെ മാത്രമല്ല മാനസിക ചിന്തകളേയും നിഷ്കരുണമാക്കുന്നു. പ്രണയത്തിനാണെങ്കിലും വൈരാഗ്യത്തിനാണെങ്കിലും എന്തും അങ്ങേയററം എന്നതാണ് ഹീത്ത്ക്ലിഫിന്റെ പ്രകൃതം. എന്നാൽ രണ്ടാമത്തെ പ്രണയനായകൻ ലിന്റണാകട്ടെ അമിതലാളനയും സുരക്ഷിതത്വവും കൊണ്ട് വഷളാക്കപ്പെട്ടവനാണ്. അത് അയാളുടെ പ്രകൃതത്തേയും സ്വാധീനിച്ചു. 'നാലുമൈൽ നടന്നാൽ ഞാൻ മരിച്ചു പോകും' എന്ന പ്രണയിനിയോടുള്ള പരിഭവത്തിൽ തന്നെ മാനസികവും ശാരീരികവുമായ അവന്റെ ദുർബലത പ്രകടമായിരുന്നു. എന്തിനേയും ഏതിനേയും ഭയപ്പാടോടെ കാണുന്ന അവന്റെ പ്രകടഭാവം നിസ്സംഗതയാണ്. അത് ജീവിതത്തിലായാലും പ്രണയത്തിലായാലും. തുള്ളിച്ചാടി നടക്കാനുള്ള ആഗ്രഹം ഉള്ളിലൊതുക്കേണ്ടിവന്ന കാതിയും ലിന്റണുമായുള്ള പ്രണയത്തിന് തീരെ ശോഭയില്ലാതെ പോയതിനു കാരണവും അവരുടെ പ്രകൃതങ്ങൾ തമ്മിലുള്ള വൈരുദ്ധ്യമാണ്.

ആദ്യനായികയായ കാതറൈൻ ഊർജപ്രസരത്തിന്റെ അന്തരീക്ഷസാന്നിധ്യമായാണ് കഥയിൽ നിറഞ്ഞു നിൽക്കുന്നത്. താൻ ചെന്നിടത്തെല്ലാം തന്റെ മാസ്മരിക പ്രഭാവംകൊണ്ട് കീഴടക്കിയ കാതറൈന് പററിയ ജോടിയെക്കൂടി ലഭിച്ചപ്പോൾ അവരുടെ പ്രണയത്തിന്റെ തീവ്രതയേറി. മരിച്ചതിനുശേഷവും സജീവസാന്നിധ്യമായി കഥയിൽ നിറഞ്ഞു നിൽക്കുന്ന കാതറൈൻ -ഹീത്ത്ക്ലിഫ് പ്രണയത്തിനു തന്നെയാണ് കഥയിൽ പരമപ്രാധാന്യവും.

കഥാപാത്രാവിഷ്കാരം

വതറിങ് ഹൈററ്സ്. ത്രഷ്ക്രോഷ്ഗ്രേഞ്ച് എന്നീ രണ്ടു കുടുംബങ്ങൾ തമ്മിലുള്ള പാരസ്പര്യങ്ങളുടേയും അസ്വാരസ്യങ്ങളുടേയും കഥ പറയുന്ന നോവൽ മുന്നോട്ടു പോകുന്തോറും അവർ തമ്മിലുള്ള മാത്സര്യത്തിലാണ് എത്തിനിൽക്കുന്നത്. ആ അവസ്ഥയിലേക്ക് എത്തിക്കുന്നതിൽ വതറിങ് ഹൈററ്സിലേക്ക് എടുത്തു വളർത്തപ്പെട്ട ഹീത്ത്ക്ലിഫിന്റെ പ്രതികാരവും അത്യാർത്തിയും പ്രധാനകാരണമായി വർത്തിക്കുന്നതു കാണാം. പരിഷ്കൃതരും സാംസ്കാരികമായ ഔന്നിത്യം കാത്തു സൂക്ഷിക്കുന്നവരുമായ ഈ കുടുംബങ്ങളുടെ മാത്സര്യത്തിന് അയാളുടെ അനാഥബാല്യത്തിന്റെ അപകർഷകത്വവും അടിച്ചമർത്തപ്പെട്ടതിലുള്ള അമർഷവും പ്രതികാരകാരണമായി തീർന്നു. അയാളെ എടുത്തു വളർത്തിയ മി. ഏൺഷായുടെ മരണശേഷം കുടുബഭരണം ഏറെറടുത്ത മൂത്തപുത്രൻ ഹിന്റ്ലി ഹീത്ത്ക്ലിഫിനോട് ചെയ്ത അനീതിയാണ് അയാളെ ക്രൂരനും നീചനുമാക്കി തീർത്തതെന്ന് കഥ വെളിപ്പെടുത്തുന്നു.

"ഹീത്ത്ക്ലിഫിനോടുള്ള ഹിന്റ്ലിയുടെ പെരുമാററം ഒരു വിശുദ്ധനെപ്പോലും പിശാചാക്കി മാററാൻ പോന്നതായിരുന്നു."

"ഹിന്റ്ലി ഹീത്ത്ക്ലിഫിനെ ചമ്മട്ടി കൊണ്ടടിച്ചില്ല."

Scanned with CamScanner

ഇവിടെയെല്ലാം ഒരനാഥ ബാലന്റെ ദാരുണമുഖം തെളിഞ്ഞു വരുന്നുണ്ട്. അയാൾക്ക് പിശാചിന്റെ ക്രൗര്യം എങ്ങനെ ലഭിച്ചു എന്നതിന് ഈ സംഭവങ്ങൾ സാക്ഷ്യം വഹിക്കുന്നു.

"Haerton was very sad about Heathcliff's death even though he had treated him so badly, but no one else mourned for him at all".

എന്ന മൂലപാഠത്തിലെ ആശയം വിവർത്തനത്തിലെത്തുമ്പോഴേക്കും വരുത്തുന്ന മാറ്റം ശ്രദ്ധേയമാണ്. "..ഹെയർട്ടണിനെയാണ് ഹീത്ത്ക്ലിഫ് ഏററവും അധികം പീഡിപ്പിച്ചിട്ടുള്ളതും. അവൻ രാമുഴുവനും ശവശരീരത്തിനടുക്കൽത്തന്നെ ഇരുന്നു. കയ്പു നിറഞ്ഞ ആത്മാർത്ഥതയോടെ കണ്ണീരൊഴുക്കുകയും ചെയ്തു. അയാളുടെ കൈകൾ എടുത്ത് അവൻ മൃദുവായമർത്തുകയും ആക്ഷേപഹാസ്യം സ്ഫുരിക്കുന്ന കാടൻ മുഖത്ത് ചുംബിക്കുകയും ചെയ്തു. മറ്റൊരാളും ആ മുഖത്തൊന്നു നോക്കുക പോലുമില്ലായിരുന്നു."

ഈ ഉദാഹരണങ്ങളിൽ നിന്ന് ഹീത്ത്ക്ലിഫിന്റേയും ഹെയർട്ടണിന്റേയും സ്വഭാവ ചിത്രണവും അനാവരണം ചെയ്യാൻ സാധിക്കുന്നുണ്ട്. സ്വന്തം അധീശത്വത്തെ യുക്തിവത്കരിക്കുന്ന ഭാവങ്ങളെതും പ്രയോജനപ്പെടുത്താനുള്ള ത്വരയിലാണ് അയാളിലെ സാഡിസ്റ്റിന്റെ സുഖമിരിക്കുന്നത്. അതേസമയം തന്നെ തീവ്രപ്രണയത്താൽ വെന്തെരിയുന്ന ആത്മാവിനേയും കഥയിൽ കാഴ്ചപ്പെടുത്തുന്നു. അധീശത്വത്തിനായുള്ള ആത്മരതി അയാളുടെ സ്വാഭാവിക ഭാവമായി കഥയിൽ നിലനിർത്തുന്നു. മാനസികാപഗ്രഥനത്തിലൂടെ വൈരുദ്ധ്യങ്ങൾ ഗ്രഹിക്കുന്നതിൽ നോവലിസ്റ്റിനുള്ള പ്രാവീണ്യം കഥ വ്യക്തമാക്കുന്നുണ്ട്. നോവലിനെ മുന്നോട്ടു നയിക്കുന്ന ചാലകശക്തിയും കഥാപാത്രത്തിന്റെ മാനസിക വിശകലനത്തിലൂടെ നേടിയെടുക്കുന്ന ആവിഷ്കാരചാതുര്യവുമാണ് ആഖ്യാനത്തെ വിശിഷ്ടമാക്കുന്നത്.

വളരെ ചുരുങ്ങിയ വാക്കുകളിലൂടെ മാത്രം നോവലിൽ രംഗത്തെത്തുന്ന മിസ്സിസ് ഫ്രാൻസിസ് ഏൺഷായെ അവതരിപ്പിക്കുന്ന ഇടവും കഥാപാത്രചിത്രണം വ്യക്തമാക്കുന്നതാണ്.

ഉദാ: "Why Cathy, you're quite a beauty! I would hardly have recognized you- You look like young lady now. Isabella Linton is nothing compared to her, is she, Frances?"

"Isabella does not have Cathy's look," his wife replied coolly. But we must make sure she doesn't grow wild again."

കാതറൈനെ താനൊരിക്കലും അംഗീകരിക്കില്ലെന്ന ദൃഢനിശ്ചയം ഈ വാക്കുകളിൽ നിന്ന് വായിച്ചെടുക്കാം.

വാങ്മയ ചിത്രണം

പ്രകൃതി ബിംബങ്ങളുടെ അർത്ഥതലങ്ങൾ വിശകലനം ചെയ്യുന്ന അപരിചിതമേഖലകളെയും വിദൂരലോകങ്ങളെയും വെളിപ്പെടുത്തുന്ന ആർജ്ജവം രചനയുടെ വൈശിഷ്ട്യം കൂടിയാണ്.

ഉദാ: "In these dream I am always in the same place…the small bare bedroom at Wuthering Heights with the snow swirling outside the window and the wind morning in the trees. As I listen to the wind the sound begin change and I hear that ghostly voice once more. Again and again I hear it crying '*Let me in, Let me in' But when I Run to the window there is no one there.*"

ചതുഷ്പുനിലങ്ങളുടെ നിസ്സംഗതയും കൊടുംതണുപ്പിന്റെ മരവിപ്പും വായനക്കാരിലും അനുഭൂതിചിത്രണമാകുന്നു.

ഉദാ: …with a snow swirling outside the window…

It was a hard ride across the moors

The loniest house you could ever imagine. The ancient stone farm house stand high up on the moors blank faced and grim, with a hedge of stunted trees bent almost double by the wind.

വിവർത്തനം: "ഇംഗ്ലണ്ടിൽ ആകമാനം നോക്കിയാൽ താമസിക്കാൻ ഇത്ര ഏകാന്തമായ സ്ഥലം എനിക്കു കണ്ടെത്താൻ കഴിഞ്ഞിരുന്നില്ല."(പുറം 7)

Scanned with CamScanner

നോവൽ ഉൾക്കൊള്ളുന്ന പശ്ചാത്തലപരിസരവും പാത്രാവിഷ്കരണവ രേഖപ്പെടുത്താനുള്ള അവസരമായിട്ടാണ് മൂലകഥയിൽ ഈ വിവരണം നൽകുന്നത്. നോവലിലെ ആദ്യഭാഗത്ത് കൊടുത്തിട്ടുള്ള ഈ വിശദീകരണം വിവർത്തനത്തിൽ, കഥാഖ്യാനത്തിന്റെ ഭാഗമാ മാററിയപ്പോൾ അർഹമായ പ്രാധാന്യം ലഭിക്കാതെ പോയി.

വ്യതിയാനങ്ങൾ

വതറിങ് ഹൈററ്സിൽ നിന്ന് ത്രഷ്ക്രോസ്ഗ്രേഞ്ചിലേക്കുള്ള മാററം കാതറൈ പരിഷ്കാരിയും അഹങ്കാരിയുമാക്കി മാററുന്നു. അത് അവളുടെ ജീവിതത്തെയ സൗന്ദര്യബോധത്തേയും സ്വാധീനിച്ചുവെന്ന് മൂലകഥയിലെ മാനസികവ്യാപാരത്തിൽ നിന്ന വ്യക്തമാകുന്നു.

"Cathy kissed me carefully anxious not to disarrange her hair and then she looked around the room fo Heathcliff."

"Cathy raced towards her old friend and covered him with kisses just like she used to do but then sh stopped and drew back in surprise, laughing out loud. "I'd forgotten how black and cross you look Heath Cliff, and how funny and grim! But that's because I'm used to Edgar and Isabella, with the pretty golden hair.

Heath cliff stood silent and still as a stone."

വിവർത്തനം: "എന്താ കാതറൈൻ നീയൊരു സുന്ദരിയായല്ലോ. ഇപ്പോൾ നിന്നെ കണ്ടാൽ ഒ മഹതിയാണെന്നു തോന്നും. എലൻ, മിസ് കാതറൈനെ സഹായിക്കൂ."

ഇത്ര മാത്രമാണ് വിവർത്തനത്തിൽ ചേർത്തിട്ടുള്ളത്. മററു പരാമർശങ്ങളെല്ലാം ഒഴിവാക്കുന്ന അവളുടെ സൗന്ദര്യബോധത്തിൽ വന്ന ഈ മാററം വിവർത്തനത്തിൽ ഒഴിവാക്കുന്ന മാനസികവ്യാപാരങ്ങളെ വെളിപ്പെടുത്തുന്ന ഇത്തരം പ്രയോഗങ്ങളിലൂടെ ഉൾച്ചേർത്തിരിക്കു കഥാപാത്രനിഗൂഹനത്തിനുള്ള അവസരങ്ങളാണ് ഇവിടെ നഷ്ടപ്പെടുന്നത്.

ചിതറിയ ബിംബങ്ങളിലൂടെ അവതരിപ്പിക്കുന്ന ഒരു തകർന്ന പ്രണയത്തിന്റെ തീവ്രതയും തീഷ്ണതയും ചോർന്നുപോകാതെ അവതരിപ്പിക്കാൻ സാധിച്ചു എന്നതാണ് നോവലിന്റെ മികവ്. അതു കൊണ്ടുതന്നെയാണ് കാതറിന്റേയും ഹെത്ക്ലിഫിന്റേയും പ്രണയത്തിന് മറേറതൊ പ്രണയത്തേയും അതിവർത്തിക്കാൻ സാധിച്ചതും. പാഠത്തിന്റെ പ്രാദേശികവും ഭൂമിശാസ്ത്രപരവുമാ ഘടകങ്ങളെ പൊളിച്ചെഴുതുകയും കാലാതീതവും ചരിത്രേതരവുമായ വീക്ഷണം നിലനിർത്തുകയു അങ്ങനെയൊരു വ്യവസ്ഥിതിയെ ഉൾക്കൊള്ളുകയും ചെയ്യുന്നതിലൂടെ പ്രാദേശിക സംസ്കാരങ്ങ പുനരാനയിപ്പിക്കുന്ന സാംസ്കാരിക സമീകരണമാണ് നോവലിന്റെ മുഖമുദ്ര. അതിനായ പ്രയോജനപ്പെടുത്തുന്ന തന്ത്രങ്ങളെല്ലാം തന്നെ ഫലം കണ്ടു എന്നതിന് തെളിവാണ് നോവലിന്റെ വായനാസാധ്യതയെ കാലാതീതമായി നിലനിർത്തുന്നത്. എല്ലാക്കാലങ്ങളിലും എല്ലാമനുഷ്യരേയു തൃപ്തിപ്പെടുത്തുന്ന രചനയെ മാത്രമേ ഉദാത്തമെന്നു വിളിക്കാവൂ എന്ന ലോംഗിനസിന്റെ വാക്കുക പ്രമാണമാക്കിയാൽ *ണൗവേല്യശിഴ ഒലശഴവരെ* ഒരു ഉദാത്തരചന തന്നെയാണ്.

സഹായക ഗ്രന്ഥങ്ങൾ

1. ഖമില ആശ്ിഴവമാ. 2003,*Wuthering Heights*, London: Usborne Publishng House.
2. രാജൻ എം.പി.ജെ. 2006. *വതറിങ് ഹൈററ്സ്.* കോട്ടയം: ഡി.സി ബുക്സ്.
3. മുരളീധരൻ. നെല്ലിക്കൽ. 2006, *വിശ്വസാഹിത്യ ദർശനങ്ങൾ.* കോട്ടയം: ഡി.സി ബുക്സ്.
4. Venuti, Lawerence. 2000, *The Translation Studies Reader*, London: Routledge.

Scanned with CamScanner

माया प्रकाशन

हिन्दी साहित्य और माँ

सम्पादक : डॉ. षिबी सी.

Scanned with
CamScanner

ISBN : 978-81-934201-3-3

पुस्तक	:	हिंदी साहित्य और माँ
सम्पादक	:	डॉ. षिबी सी.
स्वत्वाधिकार	:	सम्पादक
प्रकाशक	:	माया प्रकाशन 6A/540, आवास विकास हंसपुरम् कानपुर-208 021 Mo. : 09451877266, 07618879266
E- mail	:	mayaprakashankanpur@gmail.com
संस्करण	:	प्रथम 2017
मूल्य	:	400.00
शब्द सज्जा	:	विष्णु ग्राफिक्स नौबस्ता, कानपुर
मुद्रक	:	साक्षी ऑफसेट यशोदानगर, कानपुर
जिल्दसाज	:	तवारक अली, पटकापुर, कानपुर

HINDI SAHITYA AUR MAA

Editted by : Dr. Shibi C.

Price : Rs. Four Hundred Only.

Scanned with CamScanner

हिन्दी साहित्य और माँ

सम्पादक
डॉ. षिबी सी.

माया प्रकाशन
कानपुर-208021

ISBN : 978-81-934201-3-3

पुस्तक	:	हिंदी साहित्य और माँ
सम्पादक	:	डॉ. षिबी सी.
स्वत्वाधिकार	:	सम्पादक
प्रकाशक	:	माया प्रकाशन
		6A/540, आवास विकास
		हंसपुरम् कानपुर-208 021
		Mo. : 09451877266, 07618879266
E- mail	:	mayaprakashankanpur@gmail.com
संस्करण	:	प्रथम 2018
मूल्य	:	400.00
शब्द सज्जा	:	विष्णु ग्राफिक्स
		नौबस्ता, कानपुर, मो॰ 08009017637
मुद्रक	:	श्रीपूजा ऑफसेट
		नौबस्ता, कानपुर
जिल्दसाज	:	तवारक अली, पटकापुर, कानपुर

HINDI SAHITYA AUR MAA

Editted by : Dr. Shibi C.

Price : Rs. Four Hundred Only.

समर्पण

मेरी माँ, मिट्टू की माँ

और

प्रिय गुरुजनों को .....

भूमिका

जीवन को संपूर्ण एवं सक्षम रखना समाज के हर एक का दायित्व है। इस सामाजिक गति को बरकरार रखने में परिवार व्यवस्था की अहम भूमिका है। समूचे विश्व में परिवार व्यवस्था को लेकर समकालीन समय में काफी चर्चायें हो रहे हैं। आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार व्यक्ति का रुपीकरण परिवार में संभव होता है। परिवार के माहौल में तनाव आ जाने से व्यक्ति टूटने–बिगडने लगते हैं। व्यक्ति की सुख और दुख में परिवार और उससे जुड़े मामलों का मुख्य स्थान है। पारिवारिक संबन्धों में फीकापन होने से सदस्यों के व्यक्तित्व में दरार आने लगता है। परिवार व्यवस्था में स्त्री का स्थान महत्वपूर्ण है। परिवार के सदस्य होकर स्त्री पूरी यातनाओं को सहकर भी दूसरों के लिए सुख समीर लहराने की कोशिश निरंतर करती रहती है। स्त्री की इस त्यागवृत्ति का मूल आधार उसमें अंतर्निहित मातृत्व की भावना है। 'माँ' शब्द को भावात्मक अनुभूति से बनाये बिना हृदय में स्वीकारना कठिन है। इस भावात्मक गरिमामय शब्द को सदा समय संवेदनात्मक बनाये रखनेवाले अनेक सूक्ष्म बिन्दु है जिसे शब्दबद्ध करना उतना आसान काम नहीं है।

माँ सबको बिना पक्षभेद स्नेह परोसती है और अपने संपूर्ण जीवन को दूसरों के लिए अर्पित करती है। माँ के इसी रुप को लेकर साहित्य में निरन्तर रचनायें हुई हैं। विश्व साहित्य में मार्क्सिम गोर्की के विख्यात उपन्यास 'माँ' को लेकर भारतीय साहित्य के अनेक भाषाओं में तक माँ केन्द्रित अनेक रचनायें विद्यमान हैं। मातृत्व को अनुभूतिपरक नितान्त सत्य के रुप में अपनाये जाने के कारण रचनाकार और पाठक के बीच में एक तरह की सामंजस्य की भावना पैदा होती है।

मातृत्व को लेकर भारतीय भाषाओं के विविध साहित्यिक विधाओं में अनेक रचनायें हुई है, जिसमें हिन्दी का स्थान अद्वितीय है। मातृत्व को मुख्य विषय बनाकर हिन्दी के साहित्यकारों ने अच्छे–खासे ढंग से लिखा है। भक्तिकालीन साहित्य से लेकर यह कार्य जारी रहा था। सूरदास का कृष्ण–जसोदा संवाद मातृत्व का मुकुट उदाहरण है। आगे के समय में भारतेन्दु काल से होकर यह कार्य और भी गंभीर होने लगा। प्रेमचन्द के गोदान में नायिका धनिया भारतीय मातृत्व की मूर्ति रुप है। झुनिया को घर में आश्रय देने से समाज उसे बहिष्कृत कर देगी की बात जानते हुए भी वह अपनी मातृत्व भरी अनुभूति को त्यागते नहीं है। कविता, नाटक आदि की स्थिति भी भिन्न नहीं हैं।

आधुनिकता से उत्तराधुनिक सन्दर्भ में आते समय पूरा ढाँचा बदलने लगा है। ऐसी स्थिति में मानवीय मूल्यों में फेरबदल आना स्वाभाविक है। अधुनातन सन्दर्भ में भी मातृत्व का पुराना ढाँचा भावात्मक स्तर पर सुरक्षित तो है, लेकिन प्रयोगात्मक पहलू एकदम नया मोड़ अपनाया है। आज की माँ केवल परिवार की सेविका नहीं है बल्कि वह राष्ट्र–निर्माण के अनवरत ऊर्जा है। आज की पढ़ी–लिखी माँ कमाती भी है, परिवार में बच्चों का देख–भाल भी करती है। नारीवाद स्त्री को सशक्त बनाया है। वह अपने अधिकारों को पूर्ण रुप में परख लिया है और सदियों से अपने अधिकारों से वंचित आज की माँ अपने अधिकारों को पुनर्निणय करते वक्त क्या मातृत्व में कुछ खामियाँ दिखायी देने लगी है? परंपरागत मातृत्व भाव को बरकरार रखकर, तत्कालीन समस्याओं के साथ निरंतर संघर्ष झेलनेवाले अनके माँ हमारे बीच आज भी जीवित है। आज के दौड़ादौड़ी में भी वह स्वयं को अपने बच्चों से किसी भी तरह दूर नहीं रख पाती। नव इलेक्ट्रोनिक माध्यमों के चकाचौंध में भी 'माँ' भावात्मक आवेग के साथ क्या सुरक्षित है ? बदलते पारिवारिक संकल्पनाओं के बीचोंबीच रहकर वह अपने प्यारे बच्चों को छोड़कर कोई अन्य पुरुष के साथ क्यों भाग जाती है? मातृत्व और मातृत्वहीनता दोनों आज विराजमान है। नयी सन्दर्भ में हिन्दी साहित्य में चित्रित माँ पात्रों को अध्ययन–मनन का विषय बनाना और मातृत्व की स्थिति को विश्लेषण करना इस पुस्तक का लक्ष्य है। पिताजी के निधन के बाद मेरी माँ की स्थिति, अनेक यातनाओं को झेलकर मिट्टू को हासिल करनेवाली प्रिय पत्नी में देखे गये अभूतपूर्व साहस और शक्ति आदि ने इस विषय पर विचार करने को मुझे बाध्य बना दिया था। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा प्रायोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी के विषय के रुप में इस क्षेत्र को स्वीकारा गया था। बाद में इसे विस्तृत करके पुस्तककार में बदलने की प्रेरणा प्रो. अरविन्दाक्षनजी और पूज्य गुरु डॉ. आर. सेतुनाथजी ने दिया था। दोनों गुरुवरों को प्रणाम। मेरे अनुरोध पर आलेख तैयार करके देनेवाले सभी सहयोगी बंधुओं के प्रति आभार प्रकट करता हूँ। कार्मल कॉलेज के प्रिय बन्धुवों को धन्यवाद। इस पुस्तक का प्रकाशन कार्य को संपूर्ण बना देनेवाले अनिल तिवारी जी और माया प्रकाशन को विशेष रुप में अपना सुक्रिया अदा करना चाहता हूँ।

डॉ. षिबी सी.

अनुक्रमणिका

1. साहित्य में मातृत्व की परिकल्पना 9 – 15
प्रो. ए. अरविंदाक्षन

2. आधुनिक हिंदी कविता में मातृत्व का चित्रण 16 – 20
(केरल की हिन्दी कविता के विशेष सन्दर्भ में)
डॉ. आर. सेतुनाथ

3. माँ एवं मातृत्व की परिकल्पना : समकालीन हिंदी कविता में 21 – 29
डॉ. प्रमोद कोवप्रत

4. मातृत्व की संवेदना और मिथिलेश्वर की कहानियाँ 30 – 36
डॉ. मूसा. एम.,

5. माँ परिवार से क्या चाहती है? 37 – 39
डॉ. पी. के. अजीत कुमार

6. 'माँ' का मानसिक संघर्ष : भोले बादशाह के संदर्भ में 40 – 42
डॉ. जी. शान्ति

7. सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यास में मातृत्व 43 – 47
डॉ. सि. मरियट. ए. तेराट्टिल

8. समकालीन हिंदी कविता में मातृत्व का चित्रण 48 – 53
डॉ. सिस्टर रोस आन्टो

9. माँ और संतान के बीच बनते बिगड़ते परिवर्तित मूल्य
ममता कालिया की कहानियों में 54 – 57
डॉ. लिसम्मा जौन

10. गुलाब जैसी एक माँ 58 – 60
डॉ. ए. एस. सुमेष

11. ब्लॉग कविताओं में माँ 61 – 65
डॉ. रंजित. एम.

12. मातृत्व का सार्वभौमिक रूप : रतन की माँ 66 – 69
डॉ. टी. ए. आनंद

13. समकालीन हिंदी उपन्यास में पाश्चात्य माँ 70 – 74
डॉ. सुप्रिया. पी.

14. समकालीन हिंदी कविता में मातृत्व का भाव 75 – 78
डॉ. मिमी माणी पनक्कल

15. कृष्णा सोबती के उपन्यासों में मातृत्व की अभिव्यक्ति 79 – 83
डॉ. सिबी. एम. एम.

16. उत्तराधुनिक हिंदी कथा साहित्य में मातृत्व की परिकल्पना 84 – 88
डॉ. लेखा एम.

17. माँ की आशाएँ और आशंकाएँ कथा सतीसर के विशेष संदर्भ में 89 – 93
डॉ. मेय फ्लवर

18. समकालीन लेखिका चित्रा मुद्गल की कहानियों में
मातृत्व का चित्रण 94 – 96
डॉ. विजयश्री के. वी.

19. मधु धवन की साईबर माँ उपन्यास में चित्रित माँ का मूल्य 97 – 102
डॉ. सूर्या बोस

20. भीष्म साहनी की कहानियों में मातृत्व का चित्रण 103 – 106
डॉ. ह्रद्या. एम. पी.

21. 'अर्थ' और मातृत्व 107 – 109
शहला के. पी.

22. सशक्त मातृत्व का अंकन : कस्तूरी कुंडल बसै के सन्दर्भ में 110 – 113
संध्या इ. एन.

23. अलका सरावगी के कथा-साहित्य में मातृत्व 114 – 117
श्रीमती सिंधु. वी.

24. विष्णु प्रभाकर की कहानियों में मातृत्व 118 – 122
दिव्या. एम. टी.

25. 'ममता' कहानी एक पुनर्पाठ : मातृत्व के विशेष संदर्भ में 123 – 125
शाली पद्मावती पी.

26. हिमांशु जोशी की कहानियों में माँ 126 – 128
डॉ. संगीता पी.

1

साहित्य में मातृत्व की परिकल्पना

साहित्य में ही नहीं बल्कि हमारे सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन व चिंतन में मातृत्व को महत्त्व दिया गया है। विश्व की तमाम संस्कृतियों में इस महत्त्व को कई प्रकार से रेखांकित किया है। साहित्य में मातृत्व को महत्त्व ही नहीं अपितु अभौम भी माना गया है। मनुष्य के जीवन में ही नहीं, प्रकृति में भी मातृत्व का अनुभव किया गया है। अतः उर्वरता प्रदान करने वाली प्रकृति को, नदी को, मिट्टी को, हवा को मातृत्व प्रदान किया गया है। सही है कि यह एक विराट परिकल्पना है। इसलिए काव्यों में संदर्भोचित ढंग से इन तमाम प्राकृतिक संपदाओं को माँ की तरह देखा गया है, वर्णित किया है। वास्तविक जीवन में भी माँ उर्वरता का प्रतीक है। उर्वरता को हमारी संस्कृति ने स्वीकार किया और परम्परा को आगे बढ़ाने की प्रक्रिया में मातृत्व को संस्थित किया गया है। मातृत्व को प्राप्त जो महत्त्व है उसमें कई प्रकार के परिवर्तन आने लगे। और ये परिवर्तन मुख्य रूप से सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि–परिवर्तन संबंधी हैं, मातृत्व के मूल रूप में कोई परिवर्तन नहीं आया, लेकिन उसके व्यावहारिक प्रतिरूप बदलते गये। साहित्य ने इस बदले हुए रूप को जीवन के व्यापक संदर्भ में प्रस्तुत किया है।

पुराण–प्रसूत मध्यकालीन काव्यों में माताएँ अभौमता के साथ अंकित हैं। अधिक विस्तार में न जाकर दो उदाहरणों से इस बात को स्पष्ट किया जा सकता है। सूरसागर में कृष्ण की जननी न होने पर भी यशोदा को ही माँ का विशिष्ट स्थान दिया गया है। यशोद में मातृ सुलभ व्यवहार, प्रतिक्रियाएँ, आकांक्षाएँ, स्वप्न सदृश्य कल्पनाएँ, मनोरम ढंग से चित्रित हैं। यशोदा अपने पुत्र के लिए समर्पित एक विशिष्ट माँ है। सूरदास ने बिना किसी अतिशयोक्ति के साथ इस माँ को प्रस्तुत किया है। माँ का सर्वोत्तम उदात्त रूप हम यशोदा में अनुभव कर सकते हैं।

दूसरा उदाहरण महाभारत से लिया जा सकता है। एक सौ एक संतानों की माँ गांधारी कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण हैं। मातृत्व का उदात्त रूप उसमें भी मिलता है। साथ ही साथ मातृत्व का यथार्थ रूप भी। कुरुक्षेत्र युद्ध के समय आर्शीवाद लेने आये सुयोधन से वह बस इतना ही कहती है – यथो धर्म स्तथो जय। उदात्तता और यथार्थता का मिला जुला स्वर गांधारी के इस आशीर्वाद में

निहित है। गांधारी का मातृत्व रूप यशोदा की तरह लालित्यमय नहीं है। इन दो उदाहरणों से ही यह बात जाहिर होती है कि मध्यकाल में भी इसी एक परिकल्पना को कवियों ने उसकी सहजता तथा जटिलता में अनुभव कराने का प्रयत्न किया है।

आधुनिक काल में मातृत्व की परिकल्पना के विविध–वर्णी रूप अलग–अलग साहित्यिक विधाओं में मिल जाते हैं। विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक' की कहानी 'ताई' में अनपत्यता के अवसाद को मनोवैज्ञानिक बारीकियों से प्रस्तुत किया गया है। अपने देवर के बेटे को अपना समझनेवाली माँ पूर्णरूपेण माँ ही है। अपनी संतानहीनता की भरपाई वह इस बच्चे के माध्यम से करती है। लेकिन बीच–बीच में संतानहीनता की सच्चाई बुरी तरह से उसे कचोटती है। ऐसे ही एक अवसर पर वह उस बच्चे को बचाने से हिचकती है, जबकि वह उसे बचा सकती थी। परन्तु दूसरे क्षण में उसमें निहित माँ जाग उठती है और तब वह बच्चा नीचे गिर जाता है। वह माँ बेहोश हो जाती है। बेहोशी के खत्म होने के पश्चात् वह उस बच्चे को अपने प्यार–दुलार से सरोबोर कर देती है। 'ताई' वस्तुतः एक ऐसी माँ की कहानी है जो एक माँ नहीं बन सकी थी। अनपत्यता से जन्म लेती जटिलताओं के भरपूर संकेत उक्त कहानी में दर्शित होते हैं। इसी प्रकरण में एक और कहानी का उल्लेख आवश्यक हैं। सुदर्शन की कहानी 'प्रेमतरु' भी अनपत्यता के दुःख को लेकर लिखी गई है। एक बेर के पौधे पर अपने पुत्र को देखनेवाले माँ–बाप का चित्रण उस कहानी में मिलता है। बेर के बढ़ने के साथ–साथ अपने पुत्र के बढ़ते रहने का एहसास उन्हें होने लगता है। विशेष रूप से माँ सुलखी का मन सदैव तरोताजा रहता है। वह सबसे यह कहती फिरती है कि उसका बेटा कमाने लायक हो गया है। बेर के पेड़ में निकल आए बेर को वह आस–पास के सभी लोगों में बाँटती है और एक माँ का सुख अनुभव करती है। लेकिन जिस आदमी से उसने कर्ज लिया था वह उस बेर को पेड़ को काट लेता है और उसके तने को ले चलता है। सुलखी यह दुःख सह नहीं पाती और बची हुई टहनियों में आग लगाकर आत्मदाह कर लेती है। जहाँ कौशिक की कहानी अनपत्यता के दुःख में निहित जटिलता को दर्शाने में सक्षम हैं, वहाँ सुदर्शन की कहानी अन्पतयता के दुःख को आदर्शीकृत करती है। दोनों कहानियों में माँ के हृदय का आन्दोलीकृत रूप देखने को मिलता है जो कहानी की गति को बनाए रखने में सहायक है। कहानी की दृष्टि से 'ताई' कहानी अधिक रचनात्मक है। जबकि 'प्रेमतरु' माँ के हृदय के तरल रूप को विन्यसित करने में सफल होने के बावजूद रचनात्मक स्तर पर उतना सक्षम नहीं है।

नई कहानी के दौर में दो महत्त्वपूर्ण कहानीकारों की कहानियाँ इस प्रकरण में विचारणीय हैं। अमरकान्त की कहानी 'दोपहर का भोजन' और भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत', माँ को केन्द्र में रखकर लिखी गयी रचनाएँ हैं।

'दोपहर का भोजन' में अपने भरे–पूरे घर के सदस्यों को खिलाने– पिलाने की विकट समस्या का अवतरण और उसको संभालने की एक माँ की असफल चेष्टा दिखाई गई है। विपन्नता का दृश्य विन्यास कहानी में मामूली ढंग से ही हुआ है। लेकिन सदस्यों के बीच के नपे–तुले संवादों और संवादों के बीच का मौन और अन्तराल महज मामूली नहीं है। इन सबके केन्द्र में उस माँ को अमरकान्त ने प्रस्तुत किया है। एक निम्न मध्यवर्गीय परिवार की विपन्नता का दुःख उक्त कहानी में भरपूर मात्रा में उपलब्ध है। लेकिन उस दुःख में विचलित न होकर अपने परिवार को स्नेह के कमज़ोर दागों से ही सही बाँधने की कोशिश करनेवाली माँ हमारे निम्न मध्यवर्गीय जीवन की सच्चाई को उदाहरित करती है।

'चीफ की दावत' कहानी में सबसे पहले हम उस शामनाथ से मिलते हैं जो चीफ के आगमन को मेहमाननवाजी की दृष्टि से नहीं देख रहा है। चीफ को, जो विदेशी है, शामनाथ खुश रखना चाहता है। अपने उच्च अधिकारी के प्रति उसके मन में स्नेह या आदर जैसे भाव नहीं हैं। वह सिर्फ यह चाहता है, चीफ़ यह महसूस करें कि शामनाथ सुसंस्कृत और शालीन व्यक्ति है। अपनी कृत्रिम शालीनता को व्यक्त करने के लिए वह अपने यथार्थ को छिपा लेना चाहता है। वह अपनी माँ को भी छिपाना चाहता है, क्योंकि वह उसका यथार्थ है। शामनाथ के अनुसार माँ उसका अवांछित यथार्थ है। इसलिए उसके सामने यह प्रश्न उठ खड़ा होता है – माँ का क्या होगा?

अधिकार – मोह से ग्रसित होने के कारण ही शामनाथ के सामने यह प्रश्न आता है – माँ का क्या होगा? अन्यथा यह प्रश्न ही क्यों आता? साधारण से भी ऊपर सामान्य से युक्त खाता–पीता परिवार शामनाथ का है। यदि वह अकृत्रिम होता तो यह प्रश्न उसके सामने नहीं आता। कृत्रिम जीवन बितानेवाला शामनाथ हमारे कृत्रिम वर्तमान का प्रतीक है। इसलिए वह अपनी माँ की अनुपस्थिति चाहता है। इसलिए दोनों पति–पत्नी माँ को छिपा लेने की जल्दबाजी में हैं। लेकिन कहाँ? कैसे? कुछ तरकीब वे दोनों ढूँढ़ निकालते भी हैं। पत्नी कहती है – इन्हें सहेली के घर भेज दो। रात भर बेशक वहीं रहें। कल आ जाएँ। परन्तु शामनाथ टोकता है – "मैं नहीं चाहता कि उस बुढ़िया का आना–जाना यहाँ फिर से शुरू हो। पहले ही बड़ी मुश्किल से बन्द किया था। माँ से कहो कि जल्दी ही खाना खा के शाम को ही अपनी कोठरी में चली जाएँ। मेहमान कहीं आठ बजे आएँगे, उससे पहले अपने काम से निपट लें। कहानी का यह नाटकीय प्रसंग मध्यवर्गीय मानसिकता की कृत्रिमता को सही मायने में द्योतित करता है।

भीष्म साहनी की कहानी मातृत्व की बदलती हुई भावना पर चोट ही नहीं है बल्कि हमारे मातृत्व संबंधी मूल्यों के शातशः विघटन को दिखाती भी है। जिस माँ को साहित्य में पहले भी और आज भी सबसे उन्नत स्थान दिया गया उसी को नाचीज़ समझने की मध्यवर्गीय कृत्रिमता को यहाँ दर्शाया गया है।

जहाँ तक आज की कविता की बात है माँ अक्सर ऊर्जा के स्रोत स्थल के रूप में चित्रित हैं। जीवन की कठिनाइयों और कई प्रकार की विडम्बनाओं के मध्य जब एक औसत इन्सान उम्मीद की किरणों का सपना देखता है वहाँ वह अपनी माँ को देखता है। अतः आज की कविता में माँ कहीं उम्मीद है तो कहीं सपना है कहीं आशा है तो कहीं अवलम्ब। संघर्ष करते हुए इंसान हमेशा एक स्फूर्तिदायक मंजिल की तरफ देखता ही है। लेकिन इस कारण से आज की कविता में माँ का अंकन महिमामंडित ढंग से नहीं किया गया है। संघर्ष करने वाला मनुष्य माँ को संघर्ष का प्रतिरूप मानकर चलता है। माँ का इतना गहन और गहरा बिम्ब इसके पहले कविता में उभरकर नहीं आया। "संघर्षों के बीच संघर्षों के बीज" के रूप में जब माँ अवतरित होती है तो, उसमें रूमानियत की गुंजाइश भी होती नहीं है। ऐसी स्थिति उसकी सार्वत्रिकता और सर्वकालिकता को बढ़ावा देती ही है। चन्द्रकान्त देवताले की एक कविता का शीर्षक है – 'माँ पर नहीं लिख सकता कविता'। इस कविता में माँ संघर्ष और सहानुभूति का समन्वित रूप है। स्नेह और विशाल प्रेम का प्रतिबिम्ब है। ऐसी एक माँ को, कवि को लगता है कविता में उतरना नामुमकिन है। कवि का कहना है –

माँ के लिए संभव नहीं होगी मुझसे कविता
अमर चिउंटियों का एक दस्ता
मेरे मस्तिष्क में रेंगता रहता है
माँ वहाँ हर रोज़ चुटकी–चुटकी आटा डाल जाती है।

कवि अपने बारे में भी सोच रहा है कि उसकी माँ हर अच्छी चीज़ को चुन–चुन कर उसे देती रही है। प्रेम के इस विशाल रूप को देवताले इस तरह प्रस्तुत करते हैं–

माँ ने हर चीज़ के छिलक उतारे मेरे लिए
देह, आत्मा, आग और पानी तक के छिलके उतारे
और मुझे कभी भूखा नहीं सोने दिया।

देह, आत्मा, आग और पानी तक के छिल्के उतार कर देने की बात जो कविता में कही गयी है वह इस कविता की माँ के संघर्ष को भरपूर मात्रा में प्रकट करती ही है। इसीलिए कवि का मानना है कि इस तरह हर चीज़ का छिलका उतारकर हर किसी को भूख से अलग रखनेवाली माँ को कविता में उतारना मुश्किल है। वह वर्णन से परे है। मामूली कल्पनाएँ उसको शब्दबद्ध करने में सहायक नहीं हो सकती है। इसलिए कविता के अन्त में चन्द्रकान्त देवताले लिखते हैं –

मैंने धरती पर कविता लिखी है
चंद्रमा को गिटार में बदला है
समुद्र को शेर की तरह आकाश के पिंजरे में खड़ा कर दिया है
सूरज पर कभी भी कविता लिख दूँगा
माँ पर नहीं लिख सकता कविता।

विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने माँ पर बहुसंख्यक कविताएँ लिखी हैं। उनकी माँ केन्द्रित कविताओं में भी माँ का बिम्ब अतीव गतिशील और स्फूर्तिदायक है। सब कहीं माँ की उपस्थिति को पहचानने वाले कवि ने माँ को यथार्थ की पहचान के रूप में ही प्रस्तुत किया है। इस संदर्भ में उनकी एक छोटी–सी कविता है, 'माँ नहीं थी वह' –

माँ नहीं थी वह
आँगन थी
द्वार थी
किवाड़ थी
चूल्हा थी आग थी
नल की धार थी।

लोक – मन की अभिव्यक्ति के रूप में इस कविता को पढ़ा जा सकता है, जिसके केन्द्र में माँ को सन्निहित करके, माँ के यथार्थ को व्यापकता प्रदान करने की कोशिश भी कवि ने की है। वर्णन की जगह संकेतों के माध्यम से लोक में लिप्त अपूर्व मानवीयता को दर्शाने का कार्य किया गया है। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी की 'माँ और आग' शीर्षक कविता विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आग को सुरक्षित रखनेवाली माँ का चित्रण कवि ने इसमें किया है। एक सामान्य प्रस्ताव की तरह आग को सुरक्षित रखने के सम्बन्ध में पहले पहल संकेत किया गया है। "माँ थोड़ी–सी आग जलाकर रख देती/सबेरे रोटी सेंकने के लिए" लेकिन इस सामान्य प्रस्ताव के तुरन्त बाद वह आग कुछ और हो जाती है। कविता में आग विस्तृत होती जाती है –

रात को जब सभी सो जाते
माँ आग को ऐसे ढँक कर छिपाती
एक कोने में
जैसे कोई रतन हो अन्मोल
जैसे कोई शिशु हो मुलायम
जैसे कोई दुल्हन हो लाल लाल।

यहाँ आग की बहुआयामी जिजीविषा को उत्कट ढंग से प्रकट किया गया है। यही जिजीविषा संघर्ष में परिणत होती दिखाई देती है। रात के अंधकार में जब बच्चे डर जाते हैं माँ उन्हें सांत्वना देती है। यहीं पर कविता में माँ और आग की एक नई परिघटना विकसित होती है। माँ में आग और आग में मां, आग की इस समन्वयात्मकता में एक संघर्ष स्त्री जो कि माँ है, का उबलता हुआ प्रतिरूप हमें प्राप्त होता है –

मेघ गरजते थे रात को
कड़कती थी बिजली
खेतों में फेकरते थे सियार
और गलियों में रोते थे कुत्ते
हम डर से चिपक जाते
माँ की गोद में
उस अँधेरे के जंग में
माँ के लिए कवच कुण्डल थी आग
राख से लिपटी
माँ के दिल की तरह धुकधुकाती
माँ के सपनों सी दहकती
माँ की इच्छाओं सी सुलगती
माँ हमें ढाढस देती
'घर में आग है
तो कोई नहीं आ सकता भूत–प्रेत'

एक सामान्य परिवार की घटनाओं के बीच में से माँ का यह उभार संघर्ष को रेखांकित करता ही है। प्रस्तुत कविता माँ केन्द्रित होने से सहज और तरल भावों का भी अंकन हुआ है, परन्तु उन भावाभिव्यक्तियों के बीच में से उभरती माँ को स्त्री–स्वत्व के रूप में कवि ने प्रस्तुत किया है।

बोधिसत्व की कविता "माँ का नाच" दरअसल एक माँ के आंतरिक और बाह्य संघर्षों की अभिव्यक्ति है। कविता में दूसरी स्त्रियों के साथ नाचने वाली माँ को दर्शाया गया है। सामान्य ढंग से माँ का नाच शुरू होता है, अपने बदन की तमाम प्रकार के असुविधाओं के बावजूद माँ नाचती रहती है। बोधिसत्व ने उस नाच को एक विशाल वितान पर प्रस्तुत किया है।

मटमैले वितान के नीचे
इस छोर से उस छोर तक नाच रही थी माँ
पैरों में बिवाइयाँ थी गहरे तक फटी
टूट चुके थे घुटने कई बार
झुक चली थी कमर
पर जैसे भँवर घूमता है
जैसे बवंडर नाचता है वैसे
नाच रही थी माँ।

नाच के उल्लास का चित्रण कवि ने किया है। उस उल्लास को अनुभव करनेवाली माँ को भी दिखाया गया है। ऐन मौके पर माँ का गाना बंद हो जाता है और नाच ज़ारी रहता है। गाने की सतह माँ के रोने की आवाज़ सुनाई देती है। अपनी

कल्पना की जगह से नीचे उतरी हुई माँ कठोर यथार्थ से भिड़ती है। समय के कठोर यथार्थ से भिड़नेवाली माँ गा नहीं सकती, बिलख ही सकती है। इस दृश्य को भी बोधिसत्व ने अपनी कविता में एक व्यापक परिप्रेक्ष्य दिया है –

वह नाचती रही बिलखते हुए
धरती के इस छोर से उस छोर तक
समुद्र की लहरों से लेकर जुते हुए खेत तक
सब भरे से उसके नाच की धमक से
सब में समाया था उसका बिलखता हुआ गाना।

बोधिसत्व की यह कविता माँ के संघर्ष की बारीकियों में गोता लगाती है। हमारे अपने अलिखित इतिहास में ऐसी माओं की रुँआसी स्पष्ट रूप से अंकित है। लेकिन वास्तविक इतिहास में इसको महिमामंडित किया गया है और खारिज किया गया है। धरती की तरह माँ को भी 'सर्वं सहा' कहा गया है। पर उस उक्ति में यथार्थ रंजमात्र भी नहीं है। अतः बोधिसत्व की माँ पर लिखी यह कविता माँ के संघर्ष की कविता है।

हिंदी की अलग–अलग विधाओं में प्राप्त माँ केन्द्रित रचनाओं की इच्छित दृष्टि में इतिहास बोध का अवतरण सही मायने में हुआ है। पुरानी रचनाओं में भले ही माँ का आदर्श रूप प्राप्त होता है, लेकिन समकालीन रचनात्मकता में माँ परिवार की चारदीवारी के कटघरे के बाहर का ऐसा यथार्थ है जिसमें इतिहास बोध की सही पहचान है।

प्रो. ए. अरविंदाक्षन

•

2

आधुनिक हिंदी कविता में मातृत्व का चित्रण

(केरल की हिंदी कविता के विशेष सदंर्भ में)

भारतीय संस्कृति में माँ का स्थान सर्वोपरि महत्त्वपूर्ण है। मातृत्व एक ऐसी सार्वलौकि एवं सार्वकालिक अवधारणा है जिसका महत्त्व हर सभ्य समाज बड़े आदर के साथ स्वीकार करता है। मातृत्व की सबसे बड़ी विशेषता उसकी पवित्रता है। माँ हमेशा अपनी सन्तानों के प्रति असीम वात्सल्य प्रकट करती है। परिवार एवं समाज क प्रति भी उसका व्यवहार ममता से पूर्ण होता है, त्याग एवं सहानुभूति के भाव से ओत–प्रोत भी। वह निष्काम, तटस्थ होकर, स्नेह रूपी अमृत बहाकर सबके स्नेह का, श्रद्धा का अथवा भक्ति का पात्र बन जाती है। इसलिए समाज में उसका स्थान साधारण मानवीय स्तर से ऊपर उठकर ईश्वर के बराबर का हो जाता है।

साहित्यिक रचनाओं में मातृत्व की अभिव्यक्ति प्राचीनकाल से होती आ रही है। लेकिन इसके स्वरूप में विविधता दिखाई देती है। जैसे माता एक वैयक्तिक रूप अवश्य है जो बिल्कुल मानवीय संबंधों पर आधारित है। वैसे, मातृत्व की एक व्यापक सामाजिक अवधारणा होती है, यानी सम्पूर्ण प्रकृति को अथवा पृथ्वी को माता के रूप में देखने की प्रवृत्ति ईश्वर के रूप में माता को देखने की प्रवृत्ति, जो समाज में प्रचलित है उसका भी चित्रण साहित्य में देखने को मिलता है। मनुष्य जाति के विकास के इतिहास के साथ मातृत्व का इतिहास भी शुरू होता है। अतः मातृत्व की प्रतिष्ठा मानव–मन के अचेतन में अवश्य हुई है। साहित्य में इसकी अभिव्यक्ति प्राक् बिम्ब के रूप में होती है; कहीं–कहीं यह महामाता के रूप में, कहीं अशरीरी पत्र के रूप में। मिथकीय साहित्य में महामाता, दुर्गा, सरस्वती आदि माता के विशिष्ट रूप हम देख सकते हैं।

हिंदी साहित्य में मातृत्व का चित्रण प्रस्तुत सभी दृष्टियों से हुआ है। हिंदी कविता का अध्ययन करने से यह स्पष्ट विदित हो जाएगा कि मातृत्व की महनीयता के बखान में हर काल के हिदी कवियों ने विशेष रुचि दिखाई है। इस संदर्भ में एकान्त श्रीवास्तव का कथन दृष्टव्य है – "माँ मनुष्य के जीवन में आने वाली प्रथम स्त्री है जिसे वह आँख खोलते ही देखता है। प्रथम अनुभव अन्ततः

प्रथम है। यह कारण हो सकता है कि प्रायः प्रत्येक मनुष्य एक आदर्श स्त्री की छवि में माँ को ही देखता है। कवियों ने कविता के कैमरे से इस आदर्श स्त्री के अनेक छायाचित्र खीचे हैं।"[२] (एकान्त श्रीवास्तव, कविता का अन्य पक्ष, पृ. १०६)

हिंदी कविता में मातृत्व के चित्रण की परम्परा प्राचीन काल से ही शुरू होती है। बालकृष्ण की लीलाओं के वर्णन के दौरान माता–पिता के मनोविज्ञान पर भी सूरदास ने ध्यान दिया है। मातृत्व के विशिष्ट गुणों का वर्णन उनके पदों में जो मिलता है, बेजोड़ है। इस परम्परा को आगे बढ़ाते हुए आधुनिक हिंदी कवियों ने मातृत्व के विभिन्न गुणों का, उसके विभिन्न पहलुओं का सुन्दर चित्रण अपनी रचनाओं में किया है।

'कामायनी' में माँ की भूमिका में श्रद्धा का चित्रण जो हुआ है उसके द्वारा मातृत्व संबंधी भारतीय परिकल्पना को सार्थक बनाने में जयशंकर प्रसाद जी को विशेष सफलता मिली है।

ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता, हिंदी की नयी कविता के प्रवक्ता एवं प्रेरणा अज्ञेय की कविताओं में मातृत्व को व्यापक सन्दर्भ में देखने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। उनके अनुसार माता अपनी सन्तानों को आजीवन ममता प्रदान करती रहती है, विषम परिस्थिति में ऊर्जा प्रदान करके नयी चेतना से अनुक्षण बदलती रहती है –

ईश्वर
एक बार का कल्पक
और सनातन क्रान्ता है :
माँ एक बार की जननी
और आजीवन ममता है
पर उनकी कल्पना, कृपा और करुणा से
हम में यह क्षमता है
कि अपनी व्यथा और अपने संघर्ष में
अपने को अनुक्षण बदलते चलें,
अनुक्षण अपने को परिक्रान्त करते हुए
अपनी नयी नियति बनते चलें।

('पक्षधर', अज्ञेय 'कितनी नावों में कितनी बार' में संकलित, पृ. ३६)

अज्ञेय की एक और कविता है 'नदी के द्वीप'। यहाँ 'नदी' समाज का प्रतीक है, 'द्वीप' व्यक्ति का। नदी रूपी समाज को कवि माँ मानते हैं। क्योंकि वही, द्वीप रूपी व्यक्ति को आकार देती है :

हम नदी के द्वीप हैं
हम नहीं कहते कि हमको छोड़कर स्रोतस्विनी बह जाय
वह हमें आकार देती है

हमारे कोण, गलियाँ, अन्तरीप, उभार, सैकत–कूल
सब गोलाइयाँ उसकी गढ़ी हैं।
माँ है वह, इसी से हम बने हैं।

('नदी के द्वीप', अज्ञेय 'आपके लोकप्रिय एवं अज्ञेय' में संकलित,)

कात्यायनी की लंबी कविता 'किरणों के बीच भूमिगत' मातृजीवन को ऐतिहासिक दृष्टि से देखने का प्रयास है। कविता के प्रारम्भिक चरणों में माता के मन की चिन्ताओं एवं आकांक्षाओं का सच्चा चित्र खींचा गया है –

शताब्दी की ढलान के इस अन्तिम छोर पर
दुर्वह गर्भभार संभाले
चिन्ताओं और स्वप्नों को लिए साथ–साथ
सोचती है माँ
अपने अजन्मे शिशु के बारे में।

माँ के पूजनीय भाव का चित्रण कविताओं में काफी मिलता है। साथ ही साथ माँ की पीड़ाओं की और, उसके मन के त्याग की, समर्पण की, भावना की ओर संकेत करते हुए वर्तमान भारतीय नारी यानी माँ की दुःस्थिति पर भी आज की कविता प्रकाश डालती है। सबके लिए सारी सुख–सुविधाएँ तैयार करके अपने मन में त्याग की भावना जो है उसके बल पर समर्पित सेवा की मूर्ति है माँ। ज्योत्सना मिलन की कविता को देखिए :

पैर सिकोड़कर
रोज सोती है
गुड़ी पुड़ी माँ
बची खुची रात में
पैर फैलाने में लाचार
लम्बी भी नहीं होती
माँ की रात।

समकालीन हिंदी कवि अरुण कमल, आलोक नन्दा, आलोक वाजपेयी आदि की कविताओं में भी मातृत्व की महिमा पर विचार–विमर्श हुआ है।

केरल की हिंदी कविता में मातृत्व का चित्रण

भारतीय संस्कृति एवं भारतीय मूल्यों को बरकरार रखने का आग्रह केरल के हिंदी कवितयों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से व्यक्त किया है। इस दृष्टि से मातृत्व सम्बन्धी उनका दृष्टिकोण महत्त्वपूर्ण है। केरल की हिंदी रचना में मातृत्व का चित्रण जो हुआ है उसमें विविधता का दर्शन हम कर सकते हैं। प्रकृति अथवा पृथ्वी को माता मानकर उसकी पूजा करने वाले कवि तो अनेक हैं, माना कि वैयक्तिक एवं मिथकीय रूपों की अभिव्यक्ति भी इन कवियों ने की है।

पंडित नारायण देव (देव केरलीय) जो पुराने पीढ़ी के रूप हैं, वसुधा को जननी मानकर उसे पावन पयस्विनि का स्थान देता है –

"जिस वसुधा ने जन्म दिया है
तू वह पूज्या मम जननी है
जिस धरती का कण कण पावन
मेरी पावन पयस्वनी है।"

('माताभूमि' कविता से केरल हिंदी कविता' में संकलित सं. डॉ. एन. चन्द्रशेखरन नायर)

वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. एन. चन्द्रशेखरन नायर भी धरती को अपनी माँ मानने के पक्ष में हैं और वे उसे चिरयौवना बनाए रखना चाहते हैं –

माँ रहना तुझे चिरयौवना
तू प्रकृति की दिव्य कल्पना
मैं नियति–पथ का सुत
चाहता रक्त–माँस से अपना
यौवन दे फिर एक बार तुझे
देखूँ वही यौवना बना के।

'मेरी दुर्गा' शीर्षक कविता में डॉ. एन. रवीन्द्रनाथ के सामने दुर्गा माँ के रूप में अवतरित होती है। वे बताते हैं कि दुर्गा के भयंकर रूप के बारे में काफी सुना है, लेकिन असल में उनके लिए माँ है –

दुर्गे !
तू मेरे सामने माँ बनके–प्रेम की मूर्ति बन आयी
तेरे चुम्बन में मुझे सर्वप्रथम
वात्सल्य का मधुरामृत मिला
तेरे खुले शान्त नयनों में तड़ित का प्रकाश मैंने देखा
विश्व सृष्टि के लिए तूने एक नई चेतना दी
तेरे लाल–लाल अधरों ने मुझे शक्ति का मंत्र पढ़ाया
और वह मैं कल अपनी सन्तानों को सुनाऊँगा।

(मेरी दुगा : डॉ. एन. रवीन्द्रनाथ, रंग और गंध,)

प्रस्तुत कविता में दुर्गा का प्राक्बिम्बीय रूप स्पष्ट झलकता है। ममता, वात्सल्य, शक्ति और प्रेरणा की मूर्ति दुर्गा सम्बन्धी विचार जो हमारे सामाजिक अचेतन में हैं उसकी अभिव्यक्ति प्रस्तुत कविता में हुई है।

यह तो सर्वविदित है कि माँ, अनुकम्पा, स्नेह और वात्सल्य की मूर्ति है। उसकी उपस्थिति से, कभी उसकी स्मृति मात्र से हमें ऊर्जा प्राप्त होती है, जिजीविषा मिल जाती है, सारे दुखों को हम भूल जाते हैं। डॉ. अरविन्दाक्षन की कविता तो देखिए –

जब भी घर आता हूँ
मेरे ऊपर
दो चार बूँदे वात्सल्य की
कहाँ से गिर रही हैं माँ?

(माँ केन्द्रित, पाँच कविताएँ पतझड़ का इतिहास, डॉ. अरविन्दाक्षन में संकलित, पृ. ३१)

स्मृति बिम्बों के द्वारा मातृत्व की महिमा की घोषणा करने वाली उनकी दूसरी कविता तो देखिए –

वह क्षण मुझे याद नहीं
जब तूने अपनी जाँघों के बीच से
मुझे बाहर निकाला
वह क्षण मुझे याद नहीं
जब तूने मुझे अपने स्तन से दूध पिलाया
वह क्षण मुझे याद है
तूने पहली बार लोरी सुनायी थी।

(माँ केन्द्रित, पाँच कविताएँ डॉ. अरविन्दाक्षन, पतझड़ का इतिहास में संकलित, पृ. ३०–३१)

यो हिंदी की कवियों ने मातृत्व के विभिन्न पहलुओं की चर्चा अपनी रचनाओं में की है। यह मातृत्व सम्बन्धी मानव–मन के विचारों की सही अभिव्यक्ति है जो भारतीय संस्कृति के मूल्यवान पक्षों की ओर इशारा करती है। वैश्वीकरण के वर्तमान युग में पाश्चात्य संस्कृति का गहरा प्रभाव भारतीय समाज पर पड़ रहा है। फलस्वरूप हम अधिक से अधिक स्वतंत्र होना चाहते हैं। प्रतिष्ठा एवं धन की लालसा में मानवीय सम्बन्ध भूल जाते हैं। माता–पिता को वृद्ध–सदन में छोड़कर देश–विदेश घूमने वाले मानवों की संख्या आजकल बढ़ रही है। साहित्य समाज से नई दिशा देने का साधन है। हमारे कवि एवं अन्य साहित्यकार प्रस्तुति स्थिति की ओर अपनी रचनाओं में संकेत तो देते हैं। समाज को सही दिशा की ओर ले जाने का सफल प्रयास करते हैं। भारतीय मूल्यों को बरकरार रखने का, मूल्य ह्रास की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए समाज की रक्षा करने का कार्य करते रहते हैं, आगे भी करेंगे, क्योंकि वह सच्चे साहित्यकार का कर्तव्य है।

डॉ. आर. सेतुनाथ
असोसिएट प्रोफेसर – हिंदी विभाग
कालीकट विश्वविद्यालय

●

3

माँ एवं मातृत्व की परिकल्पना : समकालीन हिंदी कविता में

मातृत्व की परिकल्पना अपने आप में एक विशिष्ट परिकल्पना है। रिश्तों को भारतीय समाज विशेष महत्त्व देता है उसमें सबसे पहले माँ का स्थान आता है, जिसका किसी भी मनुष्य के साथ नाभि–नाल का संबंध होता है। इसीलिए उसमें इमोशनल अंश ज्यादा रहता है। पैगम्बर मुहम्मद ने यहाँ तक कहा कि – स्वर्ग माँ के पैरों के नीचे है। पुरुष वर्चस्व वाले समाज में भी माँ के साथ का रिश्ता पावन और आत्मीय होता है। अर्थात् मातृत्व की भावना एक खास प्रकार का एहसास है। कोश ग्रंथों में बताया गया है – "Motherhood is the state or experience of having and raising a child." मातृत्व में माँ होना एक गुण है, बच्चों को जन्म देना एक पहलू है। मातोचित चरित्रगत विशेषताएँ होना दूसरा पहलू है। फिर माँ की सामाजिकता तीसरा पहलू है।

बच्चे के जन्म से ही अगर माँ बिछुड़ जाती है तो अनाथ होने का भाव पैदा होता है। सनाथत्व का एहसास माँ की उपस्थिति से अवश्य होती है। माँ की गोद बच्चों के लिए स्वर्गीय होती है अर्थात् माँ हर संकट में एक आश्रयस्थल होता है। समस्याओं के झुलसने वाले व्यक्ति के लिए मातृत्व एक वटवृक्ष की परछाई की भाँति है। जिनके माँ–बाप जीवित हैं वे संसार के सबसे सम्पन्न लोग माने जाते हैं। माँ पर लिखी ओम व्यास की निम्न पंक्तियाँ मातृत्व की गहराई का पूरा का पूरा एहसास कराती है –

"माँ संवेदना है, भावना है, एहसास है
माँ जीवन के फूलों में खुशबू का वास है
माँ रोते हुए बच्चे का खुशनुमा पल्ला है
माँ मरुस्थल में नदी या मीठा सा झरना है
माँ लोरी है, गीत है, प्यारी सी ताप है
माँ पूजा की थाली है, मंत्रों का जाप है
माँ आँखों का सिसकता हुआ किनारा है

माँ गालों पर पप्पी है, ममता की धारा है
माँ झुलसते दिनों में कोयल की बोली है
माँ मेहेंदी है, कुंकुम है, सिंदूर है, रोली है
माँ कलम है, दवात है, स्याही है
माँ परमात्मा की स्वयमेक गवाही है
माँ प्यार है, तपस्या है, सेवा है ...
माँ ज़िन्दगी के मोहल्ले में आत्मा की भावना है"

भारतीय समाज में पारिवारिक रिश्तों में पुरुषों का नाम ही अधिकतर प्रथम आता है। जैसे दादा–दादी, नाना– नानी, मामा–मामी, काका–काकी, भइया–भाभी, पति–पत्नी। लेकिन माँ की बारी जब आती है तब माँ–बाप, माता–पिता ही कहा जाता है। इधर दैविक संबंधों में भी देवियों का नाम पहले आता है। जैसे – गौरी–शंकर, लक्ष्मी–नारायण, सीता–राम, राधा–कृष्ण आदि। मलयालम में अम्मे–नारायणा, देवी–नारायणा आदि काफी मशहूर हैं। तुलसीदास ने 'सिया राममय सब जग जानी' कहा और सीता को पहला स्थान दिया। हिंदी में कृष्ण भक्त कवि सूरदास ने मातृत्व भाव के विविध पहलुओं को पहली बार तन्मयता के साथ प्रस्तुत किया है।

माँ की तुलना सर्वंसहा पृथ्वी से की जाती है। वेदना के विष को पीकर आनंद का अमृत वह बाँटती है बच्चों की गलतियों को करोड़ों बार वह माफ करती है। उसकी उदात्तता एवं उच्चता विशेष ध्यान देने योग्य है। माँ के प्रेम और उसकी क्षमता को अनामिका 'माँ' कविता में स्पष्ट करती हैं। बच्चों की सारी परेशानियों को ब्लॉटिंग पेपर की तरह सोखना और उन्हें अपनी विषमताएँ बनाना माँ के लिए ही संभव है। 'माँ' (समय के शहर में) की पंक्तियाँ देखिए –

'तुम मेरे अकुलाहट के ब्लॉटिंग पेपर सी
जो भी विष मेरी आँखों में रिस जाता है
आँचल का बूटा बन तुममें छिप जाता है।'

मनीषा झा ने 'माँ' (शब्दों की दुनिया) कविता में माँ की संवेदना को अत्यंत घनिष्ठता से आँका है। मातृत्व के बहुआयामी पहलुओं पर मनीषा का विचार अंकित है। माँ के पास मातृत्व की एक नदी रहती है, वह हमेशा प्रवाहित है बच्चों के अंतस्थलों में। इसलिए यहाँ तक कि माँ से दूर रहकर भी बच्चा जब चाहे सराबोर हो सकता है। बच्चों के लिए काम करने वाली माँ कभी थकती नहीं है। कवयित्री माँ को धूप, हवा, फूल, पत्री, घास, दूब, झरना, नदी आदि के रूप में देखना पसंद करती है, पर माँ पृथ्वी नहीं, असली सहोदरा हे। मातृत्व की सबसे अनोखी और दिलचस्प बात प्रस्तुत कविता की अंतिम पंक्तियों में स्पष्ट होती है –

'माँ सँभालकर रखे रहती है
अपना बचपन
बच्चों के बच्चे आने तक'

मातृत्व की परिकल्पना में वैश्विक स्तर पर ही समानता देख सकते हैं। क्योंकि हर माँ की संवेदना बच्चों के प्रति एक–सी होगी। वहाँ जाति, धर्म, देश, युग का फरक नहीं। माँ की ममता पर 'माँ' (ज़िन्दगी का गद्य) कविता में सुभाष शर्मा लिखते हैं –

'माँ की ममता/अनुपमेय है
सभी युगों में/सभी जाति में
सभी देश में एक समान'

आज के उपभोक्तावादी संस्कृति में संबंध भी बाज़ारीकृत हो गये हैं। संवेदनहीनता एवं संवादहीनता के युग में कभी रिश्ते फालतू एवं निरर्थक लगते हैं। पर समकालीन कवियों ने माँ के रिश्ते को स्वर्णिम अक्षरों में अभिव्यक्त किया है। चन्द्रकान्त देवताले हमें बता देते हैं कि ब्रह्मांड में माँ की शक्ति और व्याप्ति क्या होती है। जीवन–मूल्यों के विघटन एवं अवमूल्यन के दौर में माँ के रिश्तें की आत्मीयता को वाणी में बाँधना संभव नहीं है। तन–मन–धन से माँ का समर्पण तथा सेवाभाव पर कोई क्या लिख सकता? देवताले की 'माँ पर नहीं लिख सकता कविता' (आग हर चीज़ में बताई गई थी) इसी विवशत एवं विह्वलता को शब्दबद्ध करती है जैसे –

'माँ ने हर चीज़ के छिलके उतारे मेरे लिए
देह, आत्मा, आग और पानी/तक के छिलके उतारे
और मुझे कभी भूखा सोने नहीं दिया
मैंने धरती पर कविता लिखी है/चन्द्रमा को गिटार में बदला है
समुद्र को शेर की तरह आकाश के पिंजरे में खड़ा कर दिया
सूरज पर कभी भी कविता लिख दूँगा
माँ पर नहीं लिख सकता कविता'

तात्पर्य यही है कि माँ का यह स्वरूप उसके जीवन में ब्रह्मांड की हर चीज़ से ऊपर है। बेटा कितना भी बड़ा बन जाए वह छोटा ही है, माँ को पूर्ण रूप में जानना उसे संभव नहीं। जो माँ बचपन में चना, मूँगफली और टमाटर नन्हीं हथेलियों पर रखती थी, वही माँ बेटे के लिए हर प्रकार से उसकी रक्षा के लिए त्याग भी करती है। इसी माँ का त्याग, ममता एवं सुरक्षा का भाव पाठकों को नितांत अपना लगता है।

पवन करण के 'स्त्री मेरे भीतर' की भूमिका में विष्णु नागर ने बताया है कि प्यार में डूबी हुई माँ ने पहली बार हिंदी कविता में प्रवेश पाया है। कवि 'प्यार

में डूबी हुई माँ' में बताते हैं कि माँ की भावनाओं को बेटी ज़्यादा समझती है, क्योंकि वह माँ में अपने को भी रेखांकित करती है। पति की मृत्यु के बाद पतिव्रता माँ की स्थिति अत्यंत दयनीय हो जाती है। कर्तव्यपरायण एवं निष्ठावान माँ की वीरान दुनिया पवन करण के शब्दों में –

'माँ तो भूल चुकी थी सारे रंग
उसे चटक दिखाओ तो वह उसे फीका बतलाती
मीठा खिलाते तो उसे कड़वा कहकर उलट देती
गीता सुनते ही रख लेती कानों पर हाथ
कहीं आती–जाती तो झीलती हुई अपनी
आँखों से सड़क'

माँ शब्द में अनुपम एवं अलौकिक ताकत है। हारे हुए क्षणों में, जीवन की हताशा के अंधकार में वह बिजली की तरह कौंध उठेगी। ज़िन्दगी के असंख्य संघर्षों में, अनवरत लड़ाइयों में, विवशता एवं लाचारी के मूक क्षणों में आशा एवं आस्था का संचार नसों में करनेवाली माँ ही होगी। ध्रुव शुक्ल की पंक्तियाँ (खोजो तो बेटी पापा कहाँ हैं) देखिए –

'अंत में सब हार जाएँगे/एक ही शब्द को पुकारेंगे
माँ ! माँ ! / माँ आएँगी
सबकी हारी हुई / लड़ाइयों को जीतेंगी
खून का घूँट पीकर / अकेली रह जाएँगी ...'

ऐसी ही भावना को कवि दिविक रमेश प्रकट करते हैं। मातृ हृदय की विशालता से कवि हैरान है। खुली आँखों में पूरे आकाश की तरह माँ उनके लिए एक गुदगुद एहसास बन जाती है। उसका स्नेह, सेवा, त्याग आदि अवर्णनीय है। मातृत्व की पहचान जवान होने पर होता है तो वह, किस प्रकार सोचता है। दिविक रमेश 'खुली आँखों में आकाश' में बताते हैं –

'आज / जवान होने पर
एक प्रश्न घुमड़ आया है
पिसती / चक्की थी / या माँ'

माँ का स्वयं पिसना एक ओर है तो दूसरी ओर संबंधों का बिखराव और दूरी इस हद तक फैला है कि ऐसा लगता है कि माँ घर में एक अतिथि बन गयी है। बच्चे आजकल वैश्वीकरण के युग में दुनिया भर फैल रहे हैं। हकीकत यही है कि बाज़ारीकरण एवं टेक्नोलॉजी ने संबंधों को भी यांत्रिक बना दिया है। जन्म देने वाली माँ बेटे के घर में अतिथि है तो यह समय की सबसे बड़ी विडम्बना ही नहीं भयावहता भी है। 'कुमार अंबुज' की 'माँ अतिथि है' इसी बेबसी को रेखांकित करती है –

'धीरे–धीरे मैं खुद चला आया हूँ / माँ से इतनी दूर
कि मेरे घर में अब, माँ एक अतिथि है।'

'माँ की याद' में कवि वीरेन डगवाल प्रश्न करते हैं कि क्या माँओं की भावनाओं को किसी ने पहचाना है। उसके साथ समाज ने सिर्फ ढोंग ही रचा है। क्या हम माँओं को देह के रूप में ही देख रहे हैं? कवि बताना चाहते हैं कि सामाजिक एवं सांस्कृतिक परम्परा की दुहाई देकर हम माँओं को 'बर्फीली चोटी पर और सबसे आगे फायरिंग स्क्वैड के सामने' ही खड़ा करते हैं। यह सबसे बड़ा अन्याय एवं अनादर है मातृत्व के प्रति।

बद्री नारायण ने 'माँ' के द्वारा समाज की हिंसा की भावनाओं को प्रस्तुत किया है। समाज में अमानवीयता का बोलबाला है। बर्बर शक्तियाँ पनप रही हैं। नरसंहार की चिंताओं में दुखी माँ का रूप कवि 'खुदाई में हिंसा' की कविता 'माँ' में अभिव्यक्त करते हैं –

'गाय के गोबर / और गंगाजल में
कब और कैसे पैठ गया है
हत्याओं का विचार / चिंतित है मेरी माँ।
संगम पर मलमास में / प्रवचन सुन
वह दुःखी होने लगती है
कि न जाने कब से मंत्रों में नरसंहार की टिप्पणियों ने
प्रवेश कर लिया है
कि कैसे चौपाइयाँ सपनों के संहार के अस्त्र में तब्दील हो गई हैं

रमेश जोशी की दो कविताएँ मातृत्व की ओर संकेत को प्रकट करती हैं। 'माँ कहती हैं' अपनी संतान के हित में डूबी, परम्परावादी, माँ का भव्य रूप हमारे सामने आता है तो 'माँ की याद' अधिक नोस्टॉलिजक है। माँ की यादों में डूब जाने में मातृत्व की सभी भावनाएँ उमड़ पड़ती हैं। 'माँ कहती है' (एक दिन बोलेंगे पेड़) की पंक्तियों में स्पष्ट है कि माँ कितना भला पुत्र चाहती हैं। यहाँ अंधविश्वास पर टिका हुआ लोकजीवन का यथार्थ चित्र बड़ी आत्मीयता एवं सहजता के साथ राजेश जोशी ने व्यक्त किया है जैसे –

'सोने से पहले / माँ टुईयाँ के तकिए के नीचे
संरौता रख देती है ... / माँ कहती है
डरावने सपने इससे / डर जाते हैं।'

चन्द्रकांत देवताले की तरह शब्दों से परे, भावनाओं से परे विचरने वाली मातृत्व के भव्य स्वरूप को कवि विजय गुप्त 'शब्दों की ज़मीन' में अभिव्यक्त करते हैं–

'माँ को मैं / कभी शब्दों में
नहीं बाँध सका, / माँ हर बार
मेरे लिए उपमानों से / फिसलती रही'

मंगलेश डबराल 'माँ की स्मृति' (नये युग में शत्रु) में बताना चाहते हैं कि माँ की स्मृति कभी–भी नहीं मिटती। मृत्यु के बाद भी वह स्मृति के रूप में घर में छायी रहती है। तकलीफ के समय में उसका बोझ बढ़ता जाता, तब तक वह हवा की तरह होती है। माँ के शब्दों द्वारा कवि मातृत्व एवं सतीत्व की ज़िन्दगी को परिभाषित करते जैसे –

'वह अक्सर कहती थी औरतों के दो घर दो जन्म होते हैं
दोनों में साथ–साथ रहना होता है इन अभागियों को मृत्यु तक
और सबका सुख चाहने के लिए अगले जन्मों में भी
ईश्वर उन्हें बना देता औरत'

उदय प्रकाश ने 'माँ' कविता में मातृत्व का पूरा एहसास कराया है। उन्हें पता है कि दुनियाँ के सभी भाषाओं के सभी शब्दकोशों में एक शब्द मौजूद है वह माँ है। लेकिन कवि का दुख इसमें है कि 'लेकिन किसी भी व्याकरण ने उसे एक समूचे वाक्य का दर्जा नहीं दिया था।' माँ के द्वारा इस धरती पर हमारा अवतरित होना एक महान घटना ही है और इस दुनिया में आते समय जो पहला अनुभव है वह कभी भूल नहीं सकता।

राजम पिल्लै 'माँ की धरोहर' (उत्तराधिकार) में माँ की महानता के बारे में कहती हैं। कठोर धरती पर पाँव रोप–रोप कर चलना सिखाना, बूँद–बूँद पानी से नदी समुन्दर में खिलवाड़ करना सिखाना, आग की तपिश को दोस्त बनाना या सिखाना, असीम आसमान में पंख बगैर उड़ना सिखाना, हवा का रुख पहचानकर छप्पर छाना सिखाना माँ की खासियत है। कवयित्री बताती है –

'पंच तत्वों के नाम / यह परिचय–पत्र / मेरी धरोहर है'। माँ की ऐसी धरोहर को जतन से सँभालकर रखने का आह्वान कवयित्री करती है। दूसरी ओर राजम पिल्लै 'रिश्ते' में बताती है कि सिर्फ पैदा करने से कोई माँ नहीं बन जाती। क्योंकि पैदा करना एक जैविक प्रक्रिया है। पाला नहीं, पोसा नहीं, फिर बच्चे के आज या कल की चिंता भी नहीं। वर्तमान समाज के प्रति कवयित्री का विद्रोह इन्हीं पंक्तियों में द्रष्टव्य है –

'फसल उगाई / मंडी में अच्छे दामों बेच दी /
काश्तकार, बागवान को / 'माँ' नहीं कहते ना ?

वहीं आनंद अस्थाना माँ के प्रति अतिभावुकता प्रकट करती हैं 'माँ – तीन कविताएँ' (रेत पर नाम) की पंक्तियाँ देखिए –

'झुको / नीचे झुको
जमीन तक झुकों और उसके पैर छू लो
वह माँ है'

वहीं विजय गुप्त (शब्दों की ज़मीन) बताते हैं कि संसार का कोई फूल माँ के जितना सुंदर नहीं होगा। पंक्तियाँ हैं –

'माँ को मैंने चखा / आलिंगन में कसा
कोई फूल / इतना सुंदर नहीं / जितनी माँ'

चन्द्रकांत देवताले की 'मैं अभी–अभी माँ से मिलकर आया हूँ', अशोक बाजपेयी की 'दिवंगत माँ के नाम पत्र', आग्नेय की 'माँ', रामदरश मिश्र की 'माँ उग रही है मेरे भीतर', 'माँ बाज़ार में', राजकुमार केसरवानी की 'माँ नहीं होगी', शैल रस्तोगी की 'माँ, माँ होती है', यश मालवीय की 'माँ का अप्रासंगिक होना', सतीश जायसवाल की 'माँ, मुक्ति और सपना', सीताराम–गुप्ता की 'माँ', रश्मि रमानी की 'माँ और बेटी', कृष्ण स्वरूप पाण्डेय निर्बल की 'माँ', फूलचंद मानव की 'माँ के मुहावरे' आदि कविताएँ समकालीन साहित्य में मातृत्व के विविधमयी रूपों को प्रकट करती है। कहीं नष्ट–बोध की संवेदना है तो नहीं नोस्टालिजया हैं फिर मीठी यादें हैं तो कहीं मातृत्व की गरिमामय संस्कृति है। आस्था एवं अटूट विश्वास के प्रतीक के रूप में माँ चित्रित हुई है।

सीताराम गुप्ता ने 'माँ' मल–मूत्र, दुर्गन्ध सभी को प्रसन्नता के साथ स्वीकारने वाली माता का चित्र सामने रखा है। दुर्गंध के सुगंध के रूप में परिवर्तित करने की क्षमता की वे कल्पना करते हैं। यहाँ तक कि माँ होने की वजह गरल भी स्वीकार करने के लिए वह तैयार है। बच्चे एवं परिवार के लिए सब कुछ न्यौछावर करनेवाला मातृहृदय यहाँ प्रस्तुत होता है। रश्मि रमानी की 'माँ और बेटी' में बेटी का कथन अत्यंत मार्मिक है –

'माँ / मुझे पता है कि / अच्छी तरह जानती हो तुम
अकेलेपन, उदासी और आत्म–निर्वासन का अर्थ
फिर भी संजोई तुमने मेरे लिए सुहानी स्मृतियाँ
भूलकर काँटों की चुभन
कहाँ–कहाँ से चुनकर लाई हो तुम अनगिनत कलिया।'

कवि फूलचंद मानव को लगता है कि सबसे बड़ा मुहावरा स्वयं माँ ही है। कवि के शब्दों में –

'माँ घर के मदरसे से, देश के चौरस्ते तक
पार्टी और पॉलिटिक्स में पूरा परिवेश है
शब्दों और अर्थों का शुभ श्रीगणेश है'

कवि के मत में रसोई से पूजा पाठ तक माँ एक लम्बी प्रार्थना के रूप में उपस्थित हैं। घर के सारे काम करने वाली, सबको खुश रखने वाली माँ का महकता प्रतीक कवि हमारे सामने दिखाते हैं।

यश मालवीय ने बुढ़ापे में माँ की पूरी मानसिकता को आँकने का प्रयास किया है। माँ खुद अपना अप्रासंगिक होना देख रही है। घर भरा हुआ है। नाती–पोते हैं, बच्चे हैं, बहुएँ हैं, पर माँ के पास यादें हैं, थकान है। वह पकी उम्र काट रही हैं। उपेक्षित मातृत्व कवि के शब्दों में –

'बुझी–बुझी आँखों ने / पर्वत से दिन काटे हैं
कपड़े नहीं, अलगनी पर / फैले सन्नाटे हैं
इधर–उधर उड़ती सी नज़रें / फेंक रही है माँ'

कवि आग्नेय के अनुसार माँ स्वयं चूल्हे की आग थी। वह घड़े का ठंडा पानी थी। अर्थात् अपने आपको आग बनाकर पूरे परिवार को पाल–पोसनेवाली माँ, जो पानी की तरलता, स्वच्छता अपने अंदर संजोए हुए थी। अपने को शांत–शीतल रखनेवाली माता का चरित्र उज्ज्वल ही है। कवि रामदरश मिश्र यादों एवं अहसासों के सहारे माँ को अपने ही अंदर पा रहे हैं। उन्हें लगता है कि 'माँ उग रही है मेरे भीतर'। कवि के स्तब्ध नसों में नन्हें झरन के रूप में, नीम मंजरी की तरह रोम–रोम खिल रहा है और माँ का ममता भरा हाथ निस्पंद त्वचा को अहिस्ता–अहिस्ता सहला रहा है।

शैल रस्तोगी बताना चाहती हैं कि मातृहृदय की थाह माँ ही जननी है। उनकी कविता 'माँ माँ होती है (सुनो ओ, नन्हे दिये) में कवयित्री बताती है कि नन्हीं चिड़िया के चोंच में दाना डालने वाली चिड़िया, स्तन–पान कराने वाली गाय, कुतिया, बिल्ली सब माँ हैं, सबकी एक ही प्रकार की संवेदना है, वात्सल्य एवं ममता है। आखिर कवयित्री बताती है –

'सच मानो, माँ, माँ होती है
कोई भी रिश्ता उस जैसा नहीं होता'

संक्षेप में कह सकते हैं कि समकालीन हिंदी कविता में माँ के बहुआयामी रूपों में चित्रण हुआ है। मातृत्व एवं रिश्ते की पावनता की चिंता इसमें अधिक है। उपर्युक्त कविताओं के अलावा भास्कर चौधरी की 'माँ का आना', रजत कृष्ण की 'असमय विदा हो रहे लड़के की प्रार्थना माँ से', कुमार अनुपम की 'पराए शहर में माँ की याद', महेश प्रजापति की 'माँ के हाथ', मीठेश निर्मोही की 'तुम कैसी माँ हो', सुमन केशरी की 'माँ–१', 'माँ–२' 'सपने में माँ', 'पेड़ और माँ', मदन कश्यप की 'माँ की तस्वीर', बोधिसत्व की 'माँ का नाच', संजय कुंदन की 'तीस की उम्र में माँ को फिर से जानना', ऋतुराज की 'माँ का दूध', कैलाश बाजपेयी की 'माया, माँ सौतेली', वजीदा की 'माँ' आदि मातृत्व की विविधमुखी भावनाओं एवं संकल्पनाओं को अभिव्यक्त करने वाली कविताएँ हैं। मातृहृदय को छू लेने वाली कविताएँ यहाँ काफ़ी मिल जाती हैं। मातृहृदय का विस्तार, उसकी गहराई एवं भलाई अंत में अलिंद उपाध्याय की 'सपनों में माँ' कविता में देखिए–

'तुम देखना चाहोगे सपने / माँ बन जाएगी नींद
नदी होना चाहा तो / ग्लेशियर हो जाएगी माँ
बीज बने यदि / धरती हो जाएगी माँ
धान के खेत बने तो / मेघ बन झमाझम बरसेगी माँ
पहाड़ जो हो गए / माँ घाटी होकर देगी ऊँचाई
चाँद–तारे–सूर्य होना चाहोगे / माँ हो जाएगी आकाश
रहेगी सपनों में माँ / जिसका सपना हो तुम।'

डॉ. प्रमोद कोवप्रत
प्रोसेफर, हिंदी विभाग,
कालीकट विश्वविद्यालय, मलापुरम जिला,
केरल – ६७३ ६३५
मो. ०९४४७८८७३८४

•

4

मातृत्व की संवेदना और मिथिलेश्वर की कहानियाँ

निश्छल बालिका या बेटी, स्वप्नमयी प्रेमिका, समर्पिता पत्नी, सबकी अपेक्षा करने वाली बहू, कोमल हृदया माँ आदि नारी के विभिन्न रूप होते हैं। इन सब रूपों के साथ –साथ वह अपने स्वार्थों में डूबी एक मानवीय मूर्ति और विविध प्रकार के संघर्षों से जूझती एक औरत भी है। सनातन परम्परा के अनुसार कोई औरत स्वतंत्र होकर जी नहीं सकती। बचपन में उसे पिता के अधीन, जवानी में पति के अधीन तथा बुढ़ापे में पुत्र के अधीन जीना होता है।

नारी के माँ रूप का महत्त्व सबसे बड़ा है। माँ के बिना जीवन संभव नहीं है। माँ जननी है। असहनीय शारीरिक कष्ट के उपरान्त वह शिशु को जन्म देती है। व्यक्तिगत स्वार्थों को त्यागकर, अपने कष्टों को भूलकर वह शिशु का पालन–पोषण करती है। अपनी संतान की सुख के लिए माँ अनेक कष्टों और प्रताड़नाओं को भी सहर्ष स्वीकार कर लेती है। माँ के स्नेह एवं त्याग का पृथ्वी पर दूसरा उदाहरण मिलना सम्भव नहीं है। हमारे शास्त्रों में माँ को देवताओं के समान पूजनीय बताया गया है।

इस संसार में माँ की तुलना किसी अन्य से नहीं की जा सकती। परिवार में माँ का महत्त्व सबसे बड़ा है। पर घर परिवार को सम्भालने के साथ माँ अपनी संतान का पालन–पोषण भी करती है और उसका प्रत्येक दुख–दर्द कम करने के लिए दिन रात सजग रहती है। परिवार के अन्य सदस्य अपने–अपने निजी कार्यों में व्यस्त रहते हैं। परन्तु अधूरी नींद के उपरान्त माँ सदैव संतान के प्रति चिंतित रहती है।

सन्तान को संस्कार प्रदान करने में माँ का विशेष योगदान होता है। माँ ही सन्तान को टहलना–बोलना सिखाती है। आरम्भ में माँ ही सन्तान के अधिक सम्पर्क में रहती है। माँ के मार्गदर्शन में ही सन्तान का विकास होता है। महान संत, महापुरुषों की जीवनी सुनकर माँ सन्तान में महान व्यक्ति बनने के संस्कार कूट–कूट कर भरती है। वह सन्तान को सामाजिक मर्यादाओं का ज्ञान कराती है और उसे उच्च विचारों का महत्त्व बताती है। सन्तान को चरित्रवान बनाने में

सर्वाधिक योगदान माँ का होता है। एक ओर वह सन्तान को लाड़–प्यार से सुरक्षा एवं शक्ति प्रदान करती है, दूसरी ओर डाँट–डपटकर उसेस पतन के मार्ग पर जाने से बचाती है। कहा जाता है कि किसी भी व्यक्ति का चरित्र निर्माण उसकी माँ की बुद्धिमत्ता पर निर्भर करता है। एक माँ ही किसी भी व्यक्ति की प्राथमिक शिक्षिका होती है।

प्राचीन काल से ही नारी के विभिन्न रूपों का चित्रण भारतीय साहित्य का विषय रहा है। हिंदी साहित्य की विविध विधाओं में भी नारी के ये रूप उभर आये हैं। सत्तर के बाद लेखन के क्षेत्र में आने वाले मिथिलेश्वर सामाजिक प्रतिबद्धता को महत्त्वूपर्ण मानते थे। उनकी कहानियों का मूलाधार यही विचार सूत्र है। मध्य एवं निम्न मध्यवर्गीय जीवन से भली–भाँति परिचित लेखक के मन को उस समाज में व्याप्त अन्याय अत्याचार आदि के कारण बहुत अधिक बेचैनी का अनुभव करना पड़ा था। इन्हीं अनुभवों से उसको लिखने की प्रेरणा मिली है। मिथिलेश्वर ने लिखा है – "शरीर से लड़ नहीं पा रहा था और मन से हार नहीं मान रहा था, ऐसी स्थिति थी मेरी। मुझे भलीभाँति याद है, इन्हीं बेचैन स्थितियों के बीच एक दिन मैंने लिखना शुरू किया था।"

मिथिलेश्वर की कहानियों में ग्रामीण जीवन अपने पूरे यथार्थ के साथ अंकित है। एक कथाकार के रूप में मिथिलेश्वर ने ग्रामीण अंचल विशेष के जीवन की विभिन्न समस्याओं के अपने कथा लेखन का विषय बनाया है। उसकी कल्पना और भावना को जिन विषयों ने ज्यादा सक्रिय किया है उनमें भारतीय महिलाओं की दयनीय और दुर्दशापूर्ण स्थिति भी समाहित है। उनकी कहानियों में नारी के बेटी, पत्नी, बहू, विधवा, माँ, सास, औरत आदि विविध स्थितियों की विभिन्न समस्याओं जैसे – शिक्षा, बाल विवाह, अनमेल विवाह, दहेज–प्रथा, सास–बहू संबंध, वैधव्य, वेश्यावृत्ति आदि समस्याओं का अंकन उसकी सच्चाई के साथ हुआ है।

आदर्शपरक, प्रतीकात्मक, वास्तविक आदि कई अर्थों में माँ का प्रयोग किया जाता है। भारतीय संकल्पना एवं परम्परा में माँ एक आदर्श स्वरूपा है। लेकिन जीवन का यथार्थ वैसा नहीं है। पितृ–सत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था में माँ पुरुषों की इच्छाओं और आकांक्षाओं से सामंजस्य स्थापित करने के लिए मजबूर थी। इसलिए तथाकथित आदर्शों से युक्त माता लोगों की संख्या में अपेक्षाकृत कम है। उत्तर औद्योगिक भौतिकवादी दृष्टि के कारण आज इनको वह पुराना गौरव एवं आदर भी नहीं मिल रहा है। मिथिलेश्वर ने अपनी कहानियों के माध्यम से माँ की इन स्थितियों और समस्याओं का मार्मिक अंकन किया है।

माँ के मार्गदर्शन में ही सन्तान का विकास होता है। वह सन्तान को सामाजिक मर्यादाओं का ज्ञान कराती है। सन्तान को चरित्रवान, गुणवान बनाने में सर्वाधिक योगदान माँ का होता है। कहा जाता है कि किसी भी व्यक्ति का

चरित्र–निर्माण उसकी माँ की बुद्धिमत्ता पर निर्भर करता है। एक माँ ही किसी भी व्यक्ति की प्राथमिक शिक्षिका होती है। घर में माँ न सिर्फ अपने बच्चों को दुनिया की बुराइयों से बचाती है बल्कि वह अपने बच्चे की सबसे बड़ी प्रेरणा स्रोत भी होती है। लेखक का जीवन इसका प्रमाण प्रस्तुत करता है। 'मेघना का निर्णय' संग्रह की भूमिका में माँ द्वारा बचपन में सुनाई जाने वाली कहानियों को उन्होंने प्रेरणादायी माना है। वह अपने मन की शंकाओं को माँ के सामने रखता था। बेटा–बेटी भेदभाव का कारण जानने के लिए एक दिन वह अपनी माँ से पूछता है– "बेटी जनम पर सोहर क्यों नहीं गाये जाते और उत्सव नहीं होते?" तो माँ कहती है "बेटी का जनम बेटे की तरह शुभ नहीं माना जाता ... तू अभी बच्चा है, नहीं समझ पायेगा ... बड़ा होने पर सब कुछ जान लेगा ..." (तिरिया जनम प्रसंगवत, मिथिलेश्वर, पृ. ५८)

शादी होने से पहले ही माँ वे सारे उपदेश एवं मार्गदर्शन लड़कियों को देना आवश्यक समझती है जिनका पति के घर में आवश्यक हो जाता है। 'तिरिया जनम' में सास और माँ का चरित्र– चित्रण इस रूप में किया गया है। "शादी के पहले माँ ने सुनयना को कुछ खास उपदेश अनेक बार दिया कि पति की बात मान लेना ..., कि उनके मन में रहना ..., कि वे मार भी दें तो सह जाना। सास–ससुर को देवता समझना ...। उनकी सेवा करना ... रात को सबसे आखिर में सोना ... और हाँ, सोने से पहले सास के पाव में तेल जरूर लगाना आदि (प्रतिनिधि कहानियाँ, मिथिलेश्वर, पृ. ७०)

पितृ–सत्तात्मक व्यवस्था में माँ पुरुषों की इच्छाओं और आकांक्षाओं से सामंजस्य स्थापित करने के लिए मजबूर है। परम्परागत पुरुषों की इच्छाओं और आकांक्षाओं से सामंजस्य स्थापित करने के लिए मजबूर है। परम्परागत पुरुष स्त्री को बिल्कुल अपने अधीन में रखना चाहता है। इसलिए लड़कियों का सम्यक् पालन–पोषण एवं शिक्षाई प्रबंध पुरुष अनावश्यक समझता है। तिरिया जनम कहानी में सुनयना के बाबा के द्वारा पुरुष समाज की इस मानसिकता का सुन्दर अंकन मिथिलेश्वर ने यों किया है – "लड़कियों का अधिक पढ़ना–लिखना ठीक नहीं होता, नौकरी तो उन्हें करनी है नहीं। घर बार सँभालना है। चिट्ठी–पत्री लिखना–बाँचना जान गयी हो, बस यह होकर व्यवहार करना पड़ता है। इस कारण ही उसमें बेटा और बेटी में भेदभाव रखने और लड़की को हरदम कोसने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। मिथिलेश्वर ने अपनी कुछ कहानियों के द्वारा माँ के इस चरित्र का सुन्दर अंकन किया है।

नारी जब योग्य बन जाती है जब वह संतान को जन्म देने में समर्थ निकलती है। जननी होने या बनने की इच्छा उसमें प्रबल रहती है। यही कारण है कि असहनीय शारीरिक कष्ट के उपरांत भी वह शिशु को जन्म देती है और व्यक्तिगत स्वार्थों को त्यागकर, अपने कष्टों को भूलकर वह शिशु का पालन–पोषण

करती है। इसीलिए वह अपनी संतान के सुख के लिए अनेक कष्टों और प्रताड़नाओं को भी सहर्ष स्वीकार कर लेती है। मिथिलेश्वर की 'शांता नाम की एक लड़की' कहानी को बुढ़िया चरित्र में नारी मन की यह तीव्र इच्छा प्रकट हुई है। सब्जी बेचने का धंधा करने वाली यह बुढ़िया निस्संतान होने के कारण बहुत दुखी है। इसलिए वह एक अनाथ नवजात बच्ची का पालन–पोषण बड़े चाव के साथ करती है। अनाथ बच्चों को ही अपनी बेटी मानकर उस पर सारा स्नेह उड़ेलती है। लेकिन बुढ़िया के मरते ही शांता फिर से अनाथ हो जाती है और वासना के पिस्सू उसे खा जाते हैं।

संतान को जन्म देने में असमर्थ औरत को बाँझ कहा जाता है। संतान न होने के कई कारण हो सकते हैं। लेकिन उसमें पुरुष का कोई दोष नहीं हो सकता। सारा दोष स्त्री पर मढ़ दिया जाता है। 'तिरिया जनम' कहानी में जब शादी के दस वर्ष बाद भी सुनयना को कोई संतान न हुई तो उसे बाँझ घोषित किया जाता है। डॉक्टर के अनुसार सुनयना ठीक थी। उसमें कोई कमी नहीं थी। पति के वीर्य में ही दोष साबित हुआ था। रास खुलने पर सुनयना का जीना और दुश्वार हो गया था। पति के कारण निसंतान बनने की पीड़ा सुनयना को सालती थी या नहीं प्रत्यक्ष रूप में कहानी में नहीं किया गया है।

कभी–कभी वैधव्य और अंधविश्वास भी औरत के लिए अपनी माँ बनने की इच्छा में बाधा बन जाती है। 'पहली घटना' शीर्षक मिथिलेश्वर की कहानी में इसका अंकन किया गया है। इसमें एक बाल विधवा की शादी कराई गई है। मीना का विवाह तेरह वर्ष की उम्र में ही हो गया था। कुछ दिन बाद पति की मृत्यु हो जाती है। वह शिक्षित होकर आर्थिक आत्मनिर्भरता प्राप्त करना चाहती है। गाँव के आदर्शवादी युवक विपिन, जो हिंदी के लेक्चरर हैं, से वह व्याह करना चाहती है। लेकिन बाल विधवा मीना की माँ उसकी पढ़ाई–लिखाई तथा नौकरी का विरोध करती है। इसकी वजह बेटी के प्रति उसका पूर्वाग्रह ग्रस्त रवैया ही है। उसका समर्थन करने के बदले उसकी माँ उससे कहती है – बड़े और इज्जतदार घरों में विधवा लड़कियों की दूसरी शादी नहीं होती है। बहुत बड़ा पाप लगता है इसमें और फिर लोक और परलोक दोनों बिगड़ जाता है। घर के देवता–पितर नाराज होकर घर छोड़ देते हैं। (बाबू जी, पृ. १२८) जब घर वाले समझा बुझाकर हार जाते हैं तो वे मीना को खतम करवा देना चाहते हैं। लेकिन किराए का हत्यारा खुद मीना को विपिन के साथ भाग जाने देता है। इस प्रकार प्रस्तुत कहानी में एक अंधविश्वासी माँ का चित्र प्रस्तुत होता है।

आज भी लड़की का जन्म अशुभ माना जाता है। दहेज का कारण मानकर माँ किस प्रकार अपना मातृत्व भूल जाती है, इसका सुन्दर अंकन सावित्री दीदी कहानी में हुआ है। दीप्ति का जन्म होने पर घर में उदासी छा जाती है। माँ दीप्ति के पालन–पोषण का कोई बेपरवाह नहीं करती है। 'उधर दीप्ति का जन्म

हुआ था और इधर पूरे घर में मौत की–सी उदासी घिर आयी थी। ... लावारिस की तरह पड़ी रहती थी दीप्ति। ... माँ को भी उसकी चिन्ता नहीं रहती थी, सर्दी, बुखार या खाँसी होने पर उसकी कोई दवा नहीं की जाती थी।' (प्रतिनिधि कहानिया, मिथिलेश्वर, पृ. १३१)

सावित्री दीदी की माँ हमेशा गालीनुमा वाक्यों से फटकारती रहती थी। सावित्री दीदी की बढ़ती हुई उम्र देखकर माँ कहती हैं – दस हजार लेगी, दस हजार लेने के लिए ही आयी है ... इसे सौरी में ही नमक चटाकर मार देना चाहिए था ... अब हमें कंगाल बनाकर ही यहाँ से जायेगी। (प्रतिनिधि कहानियाँ, मिथिलेश्वर, पृ. १३३) और माँ इतना कहकर सावित्री दीदी को छोड़ नहीं देती थी। दिन–भर उससे नौकरानियों की तरह खूब काम लेती मामूली सी गलती पर भी उसे निर्दयता से पीटती थी। कम दहेज में शादी करने के लिए कोई वर न मिल पाने पर माँ सावित्री दीदी को तरह–तरह की गालियाँ देती हैं – मर जाना चाहिए इस कुलक्षिणी को ... इसका भरतार ही नहीं है इस दुनिया में ... बाप भाई इसके चलते दरवाजे–दरवाजे मारे फिर रहे हैं ... इसे जहर खा लेना चाहिए ... जीकर क्या करेगी यह हरामजादी ... जब बाप–भाई को कंगाल ही बना देगी ... हे भगवान, तू इसे उठा ले ... तीनों कुल तर जायेंगे ... (प्रतिनिधि कहानियाँ, मिथिलेश्वर, पृ. १३३) अंततः माँ और घर के बाकी लोगों को चैन दिलाने के विचार से सावित्री दीदी एलड्रीन पीकर अपना जीवन समाप्त करती है। शायद खुदा ने भी माँ की यह प्रार्थना सुन ली होगी।

अधिकांश स्त्रियाँ अपनी संतान को छोड़ नहीं सकती हैं। 'भोर होने से पहले' शीर्षक कहानी में बुधनी की माँ एक आदिवासी महिला है। जिसकी शादी बहादुर नामक गोरखे से हुई थी। बुधनी उन दोनों की बेटी थी। कुछ समय बीतने पर बहादुर और उस आदिवासी महिला के बीच में झगड़े होने लगे। आखिर उस महिला ने एक रिक्शा चलाने वाले आदिवासी से शादी कर ली। बुधनी को लेने के लिए वह एक दिन बहादुर के पास आई। लेकिन बहादुर से बुधनी को अपने ही पास रखने का निर्णय सुनकर वह वहाँ से चली जाती है। फिर कभी भी बेटी का हाल–चाल पूछने या देखने नहीं आयी थी। बुधनी को रविकांत नामक एक आदमी के यहाँ छोड़कर बहादुर नेपाल चला गया था और वहीं स्वर्ग सिधार गया था। रविकांत ने बुधनी को अपनी बेटी की तरह माना था लेकिन जब अपने भाइयों के बेटे बुधनी को बिगाड़ कर रख देते हैं और वह गर्भवती हो जाती है तो उसका ब्याह अपने चरवाहे बैजू से कर देता है।

ममता की मूर्ति के रूप में रहने वाली माँ के उस बलिदान और त्याग को कौन देखता है? कौन उसे गिनता है? कौन उसके कष्टों पर मरहम लगाता है? जिस माँ ने ९ माह तक अपने गर्भ में हर तरह की सुविधा देने का प्रयास किया, उसी माँ की छोटी–सी इच्छा पूरी करने में आज पूरा संसार आना–कानी कर रहा

है। हमें अपने खून से सींचने वाली माँ के बीमार पड़ने पर उसकी देख–रेख भी नर्स अथवा आया के भरोसे छोड़ी जा रही है। आज उसी माँ का हम सहारा नहीं बन पा रहे हैं। 'जी का जंजाल' कहानी की विषय वस्तु मातृत्व और पुत्रों के स्वार्थ से संबंधित है। कहानी की माँ एक विधवा है। माँ के पति कई वर्ष पहले दिवंगत हो चुके थे। उसके चार पुत्र हैं – कामता, रमता, भिमता और समता। ये चारों पुत्र नौकरी करते हैं तथा अपने परिवार के साथ अलग रहते हैं। चारों पुत्रों ने आपस में मिलकर यह पारी निर्धारित कर ली है कि माँ पुत्र के यहाँ तीन मास रहेंगी। इस प्रकार चारों पुत्रों के यहाँ घूमते–घूमते माँ का एक वर्ष बीत जाता है।

माँ की देखभाल करना बेटों के लिए कठिन हो जाता है। जिसके यहाँ उनकी पारी शुरू होती है, उसके वहाँ वह बोझ बन जाती हैं। बहुएँ उन्हें ताना देने लगती हैं तथा उपेक्षापूर्वक बासी और अरुचिकर भोजन देते हुए चाहती हैं कि जल्द से जल्द उनकी पारी खतम हो जाये ... इस दुर्दिन में माँ ने अपनी लड़कियों को भी परख लिया है। उनकी दो लड़कियाँ दोनों अच्छे घरों में ब्याही हैं। लेकिन दामादों को यह बात पसन्द नहीं आती है वे अपनी पत्नियों को कोसते हैं – सारा धन अपने बेटों को दे रखा है और बेटियों के यहाँ दिन गुजारने आयी हैं ... (प्रतिनिधि कहानियाँ, मिथिलेश्वर, पृ. १०५) बेटे भी नहीं चाहते हैं कि माँ बेटियों के यहाँ जाकर रहें। उन्हें डर है कि माँ बेटियों को रुपये दे देंगी।

पति ने अपने भविष्य के लिए रुपये रखे थे। ताकि अपनी इच्छा के अनुसार वह खर्च कर सकें। लेकिन लड़कों ने अपने भविष्य के लिए उन्हें फिक्स डिपोजिट के रूप में जमा करवाया था। अपने बेटों एवं बहुओं का निर्मम व्यवहार देखकर माँ अब सोचती हैं – बहुएँ तो दूसरे के घर से आयी हैं, लेकिन बेटे कैसे ऐसे हो गये? ये वही बेटे हैं जो उनसे तनिक भी अलग रहना नहीं चाहते थे। इन बेटों की वजह से ही वह पति को भी पूरा समय नहीं दे पाती थी। भिमता और रमता भी पास ही उनका हाथ पकड़कर या उनकी साड़ी का छोर पकड़कर सोते थे उनके स्पर्श के बगैर उन्हें नींद ही नहीं आती थी। (प्रतिनिधि कहानियाँ, मिथिलेश्वर, पृ. १०४)

जब माँ बीमार पड़ जाती तो वह अपने बेटे या बहुओं का सामीप्य चाहती हैं। लेकिन कौन सुनता है। इस स्थिति पर माँ बहुत दुखी है। अगर आत्मीयता से वह उनकी बात सुन लेता तो और सिंफ शाब्दिक सान्त्वना भी देता तो उसकी आधी बीमारी ठीक हो जाती। लेकिन अब किसी भी लड़के के यहाँ उनकी यह इच्छा पूरी होनेवाली नहीं। (प्रतिनिधि कहानियाँ, मिथिलेश्वर, पृ. १०६)

हर माँ अपने बच्चों को प्यार से पालती और उम्मीद रखती है कि जब वे बड़े हो जाएँगे तो उसका ध्यान रखेंगे, लेकिन बच्चे बड़े होकर अपने परिवार में मग्न हो जाते होकर अपने परिवार में मग्न हो जाते हैं। माँ की ओर ध्यान देने की उन्हें फुरसत कब रहती है? यह माँ भी सोचती है– अगर शुरू में ही इस सत्य

का ज्ञान हो गया होता कि बड़े होने पर उनके बच्चे इस तरह मुँह मोड़ लेंगे तो उन्हें इतना कष्ट नहीं होता। इस विपत्ति को सहने के लिए वह तैयार रहतीं। लेकिन वह धोखा खा गयी हैं। (प्रतिनिधि कहानियाँ, मिथिलेश्वर, पृ. १०५)

इस प्रकार मिथिलेश्वर ने अपनी कहानियों में निम्न वर्ग और निम्न मध्य वर्ग की औरतों के जीवन की विभिन्न समस्याओं के साथ माँ के जीवन प्रसंगों से जुड़ी कई समस्याओं को भी उसकी सहजता में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

डॉ. मूसा. एम.,
रीडर – हिंदी विभाग
श्रीशंकराचार्य विश्वविद्यालय – कालटी

●

5

माँ परिवार से क्या चाहती है?

ममता कालिया लिखित बहुचर्चित एकांकी है 'आप न बदलेंगे?' मध्यवर्गीय परिवार की नारियों का यथा तथा चित्रण करनेवाली लेखिका के रूप में वे विख्यात है। आधुनिक नारियों की चुनौतियों तथा पारिवारिक जीवन से संबंधित उनकी बेबसियाँ ममता कालिया के एकांकियों के मुख्य विषय वस्तु हैं।

सर्वहारा वर्ग की नारियों के प्रतिनिधि के रूप में 'आप न बदलेंगे' की नायिका नीता पाठकों या दर्शकों के सम्मुख आती है। उनके पति विधु नौकरशाह हैं। अपनी पत्नी की हर एक कार्य–कलाप उनके मन में चिढ़ पैदा करती है। उनके दो बच्चे हैं – सोनू और मोनू। वे भी सदा माँ को चिढ़ाने की कोशिश करते हैं।

नीता के घर में बार–बार बिजली चली जाती है। उस वक्त वह मोमबत्ती लेकर चलती है। यह देखकर विधु चिड़चिड़ा स्वर में कहता है – "वह तुम शाम के वक्त 'लेडी मैकबेथ' की तरह हाथ में मोमबत्ती थामें क्यों घूमती रहती हो? लैम्प खरीदो, लालटेन जलाओ, यह क्या कि मोमबत्ती लिए घूमो। जगह–जगह मोमबत्ती जलकर कितना भद्दा लगता है?"[१] पति की सलाह से मोलभाव करके बाज़ार से ग्यारह रुपये वाले एक मैला लैम्प खरीदती है। इसमें पड़े जंग को साफ करने के लिए नीता कपड़े से रगड़ करते वक्त अपने को आधुनिक और 'जीनियस' मानने वाले एक जिन्न, 'सौंडो' बनियान और जाँघिया पहन कर बाहर निकलता है जो नीता की इच्छानुसार काम करने के लिए तैयार हो जाता है।

जब सोनू और मोनू स्कूल से वापस घर पहुँचते हें तब माँ नीता प्लेट में नाश्ता लेकर उसके पास पहुँचती है। दोनों बच्चे, बस्ते एक कोने में पटकने के बाद भोजन की प्लेट पर एक नज़र देखकर कहते हैं – "हम आलू का टोस्ट नहीं खायेंगे हम सूजी की खीर नहीं खायेंगे।"[२] खुशामद के स्वर में नीता बोलती है – 'राजा बेटा खा लो'[३] लेकिन दोनों भोजन छोड़कर खेलने के लिए चले जाते हैं। नीता दुःखी हो जाती है। पति विधु के पास 'आमलेट' और डबलरोटी और चाय की प्याली लेकर वह पहुँचती है, पति इसकी ओर देखकर कहता है – "सुबह शाम अंडे की लाश मेरे सामने पटक दी और हो गई छुट्टी तुम्हारे काम की।"[४] आलू मटर बनाने के बारे में वह कहती है किन्तु यह सुनकर विधु चिड़चिड़कर कहता है – "इससे अच्छा है गुड़ और गोबर मिलाकर पका लो।"

रात में बच्चों के पास पहुँचकर नीता कहती है – सोनू, मोनू चलो होमवर्क करो, तो वे इन्कार करते हैं और माँ को मूर्ख बनाकर वो झूठ बोलते हैं – 'होमवर्क स्कूल में ही कर लिया था'। माँ की आज्ञा के पालन करने को तैयार न होकर सोनू 'कॉमिक्स' पढ़ रहा है और मोनू खिलौनों के ढेर में एक कार ठोक–ठोक कर दूसरी कार को तोड़ रहा है। नीता उन्हें दवा पिलाने की कोशिश करके चम्मच में दवा उड़ेल कर उनके पास पहुँचती है वे दोनों भाग जाते हैं। चम्मच लिए वह उनका पीछा करती है दवा छलक जाती है। झुँझलाकर वह कहती है – "उफ अब यहाँ पोछा लगाओ।"[५]

रात में जब घड़ी बारह बजा रही थी तब नीता बच्चों के टाईमटेलब देख–देखकर बस्ते ठीक करती है, फिर थकान और निराशा से घूर–घूर माथे पर हाथ रखे बैठी है। उस वक्त बिस्तर पर विधु–सोनू–मोनू सब लिहाफ में लिपटे सो रहे हैं। उसकी अवस्था देखकर जिन्न पास पहुँचता है, जिन्न से वह कहती है – "दिन भर मैं दौड़ती हूँ, रात भर मेरा दिमाग। इस वक्त मेरा दिमाग चूने का कड़ाह है, इसमें सब खौल रहा है।"[६]

सबेरे बच्चों को स्कूल भेजने की तैयारियाँ वह करती है तो बच्चे शिकायत करते हैं – "तुम्ही देर करती हो रोज़। फिर बस छूट जायेगी तो हम पर चिल्लाओगी।"[७] नाश्ते का डिब्बा खोलकर वे कहते हैं – "हम पराठा सब्जी बिल्कुल नहीं खायेंगे, छिः।"[८] जाने में देरी लगने के कारण कुपित होकर विधु भी नीता के साथ झगड़ा करके चला जाता है। दस बजते वक्त वह घर में अकेली हो जाती है। उस वक्त उसके पास जिन्न आ पहुँचा। नीता की परेशानियों के हल के रूप में जिन्न ने मनपसंद पति और बच्चों को 'रिमोट कंट्रोल' की सहायता से उनके पास पहुँचाया। वे सब नीता की इच्छानुसार काम करते हैं। बच्चे करीने से अपने बस्ते और जूते जगह पर रखते हैं। फिर कपड़े बदलकर नीता से लिपट जाते हैं। नीता बच्चों को खाना देती है। वे कायदे से खाना खाते हैं। बच्चे फिर कहते हैं– मम्मी हमें टॉनिक दे दीजिए। नीता चम्मच उनकी ओर बारी–बारी से बढ़ाती है। बच्चे फौरन खूब बड़ा सा मुँह फाड़ देते हैं। दवा देने में ज़रा भी तकलीफ़ नहीं होती। फिर बच्चे सिर झुकाए होमवर्क कर रहे हैं।

जब विधु तथा सोनू–मोनू बाहर चले गये, नीता सपने में डूबेगी और परिवार के वास्तविक सदस्य आते वक्त वह हड़बड़ा जाती है – जैसे स्वप्न से जागती है। स्वप्न में वह कहती है – "... मैं चाहती हूँ मेरे ही पति मुझसे प्यार करें, चाव से बोलें मेरे ही बच्चे मुझे प्याद दें।"[९] वह यह भी कहती है – मेरी इज्जत, मेरे पति की इज्जत, इस घर की इज्जत मुझे जान से ज़्यादा प्यारी है।"[१०]

माता त्यागमयी है और यह नारी का सर्वश्रेष्ठ रूप है। प्राचीन काल से ही नारी स्वरूपों के चित्रण में माँ का रूप आ जाता है। "ऋग्वैदिक ऋषियों ने

तो अनेक देवों की माता के रूप में कल्पना कर उससे प्राप्त होने वाले सुख, शान्ति तथा रक्षण की कामना भी की है।"[११]

मातृत्व नारी की चरम परिणति है। "माता की सुधावार्षिणी अभिधा को प्राप्त कर नारी अपने जीवन को सार्थक समझती है।"[१२]

नारी बच्चों के जीवन को खुश बनाने के लिए अपने को कुरबान करना चाहती है अपना सब कुछ उसको देना चाहती है लेकिन केवल वह अपने परिवार से प्रेम करती है।

वह अपने बच्चों से क्या चाहती है जिन्न द्वारा बनाये वे बच्चों से उसे वह मिली। नीता सीमाहीन वात्सल्य प्रवाह की स्रोतस्विनी तथा ममता की प्रतिमूर्ति है। इस प्रकार आदर्श भारतीय माँ के रूप में 'आप न बदलेंगे' की नीता हमारे सम्मुख आती है।

संदर्भ ग्रंथ :

१. गद्य–गगन से डॉ. अजिता के नायर, डॉ. वी. कुमारन, पृ. ११०, प्रकाशन विभाग, महात्मा गाँधी विश्वविद्यालय, कोट्टयम
२. वही, पृ. ११३
३. वही
४. वही
५. वही, पृ. ११४
६. वही, पृ. ११५
७. वही, पृ. ११६
८. वही
९. वही, पृ. १२७
१०. वही, पृ. ११७
११. ऋग्वैदिक काल में पारिवारिक संबंध – डॉ. शिवराज शास्त्री, पृ. २७१, अशोक प्रकाशन, दिल्ली
१२. संस्कृत नाटकों में समाज चित्रण, चित्रा शामी, पृ. ११७, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

डॉ. पी. के. अजीत कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर एण्ड रिसर्च गाईड,
पोस्ट ग्रेजुएट एण्ड रिसर्च डिपार्टमेंट – हिंदी,
एन. एस. एस. हिन्दू कॉलेज,
पेरुन्नम, चांगनाचेरी,
मो. ९४४७०३९४५७

●

6

माँ का मानसिक संघर्ष : 'भोले बादशाह' के संदर्भ में

'कहानी' साहित्य की लोकप्रिय एवं आकर्षक विधा है। कहने और सुनने की भावना के कारण, मानव के विकास के साथ–साथ कहानी साहित्य का भी समृद्ध विकास होता है। स्वाधीनता के बाद देश में अनेक समस्याएँ और परिवर्तन हुए जिनका प्रभाव कहानी पर भी पड़ा। कहानी के माध्यम से अनेक विचारधाराएँ व्यक्त की गई हैं। हिंदी कहानी एक नई दिशा की ओर मुड़ी। कहानी के कथ्य और शिल्प में भी परिवर्तन आया।

स्वतंत्र भारत की बदली परिस्थितियाँ, परिवर्तन और गतिशील प्रवृत्तियाँ, परम्परा के प्रति विद्रोह, लेखकों के व्यक्तिगत स्थापना की इच्छा आदि के कारण कहानी जगत में विभिन्न आंदोलनों को जन्म दिया। नई कहानी, अकहानी, सचेतन कहानी, समान्तर कहानी, सक्रिय कहानी, समकालीन कहानी, दलित विमर्श, नारी विमर्श आदि प्रमुख हैं।

आधुनिक हिंदी कहानी विकास में महिला लेखिकाओं का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। समाज में फैली अराजकता, अस्थिरता, भ्रष्टाचार, मूल्य विघटन, पारिवारिक विघटन, स्त्री केन्द्रित समस्यायें आदि कई विषयों पर लेखिकाओं ने लेखनी चलायी। समकालीन महिला लेखिकाओं में कृष्णा सोबती का विशिष्ट स्थान है। हिंदी साहित्य के क्षेत्र में अपनी अलग पहचान बनाई है।

कृष्णा सोबती का जन्म १६ फरवरी १६२५ में पंजाब में हुआ था। पिताजी फौज में काम करने के कारण उनकी शिक्षा दिल्ली, शिमला और लाहौर जैसे शहरों में सम्पन्न हुई थी। कृषि से भी सम्बन्ध होने के कारण, ग्रामीण जीवन से भी उनका सम्बन्ध रहा। कृष्णा जी ने अपना लेखन कविता से शुरू किया। उनकी सफलता उपन्यास लेखिका के रूप में है। अपनी स्वतंत्र व्यक्तित्व चेतना और युगीन यथार्थ के साक्षात्कार से उन्होंने जिस दृष्टिकोण को अपनाया है, उसे अपने रचनाओं के द्वारा व्यक्त करने का प्रयास किया है। डार से बिछुड़ी, मित्रो मरजानी, सूरजमुखी अँधेरे के, जिन्दगीनामा, दिलोदानिश, समय सरगम इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं।

संख्या की दृष्टि से कम होने पर भी कृष्णा जी की कहानियाँ साहित्य जगत में बहुचर्चित हैं। सन् १९४४ में रचित 'लामा' इनकी प्रथम कहानी है। देश विभाजन से जुड़ी 'सिक्का बदल गया है' इनकी सबसे प्रसिद्ध कहानी है। संस्मरण और निबन्ध के क्षेत्र में भी उन्होंने सराहनीय काम किया है। कृष्णा जी की अधिकांश रचनाएँ नारी प्रधान है। उन्होंने अपने नारी पात्रों से सामान्य एवं असामान्य स्थितियें को उजागर किया है।

पुत्री, बहन, बहु, पत्नी, दादी, नानी, सास, सहेली आदि नारी के विभिन्न रूपों में 'माँ' का रूप अधिक श्रेष्ठ एवं विशिष्ट होती है। स्त्री की सफलता एवं पूर्णत्व उसके माँ बनने में ही है। एक बच्चे का जन्म होते समय ही एक 'माँ' का जन्म होता है। ममता एवं निस्वार्थ स्नेह से भरी माँ, अपने बच्चे की कल्याण और भलाई चाहने वाली त्याग की मूर्ति है। बच्चों के सुख के लिए अपने सुख का त्याग करती हैं बच्चों की ओर से उपेक्षा और तिरस्कार होने पर भी उनके कल्याण ही एकमात्र लक्ष्य होता है।

कृष्णा जी ने माता से सम्बन्धित अनेक चित्र खींचे हैं। 'दादी अम्मा' की दादी अम्मा, 'भोले बादशाह' की माँ, 'अभी उसी दिन होते' की सुकान्ति और 'जिगरा की बात' की अमरो की माँ आदि रचनाओं में माँ के ममतामयी रूप का सहज एवं स्वाभाविक चित्रण देख सकते हैं।

'भोले बादशाह' की कहानी, मानसिक रूप से विक्षिप्त एक युवक की कहानी है। गली– मुहल्लों के हर व्यक्ति से ही नहीं अपनी भाभी से भी लड़ता है। नाई, लाला, नत्थू हलवाई सब उसकी खिंचाई करने में चूकते नहीं। उसके सिर में शादी की धुन सवार है। मुहल्ले में चिल्लाता फिरता है। अचानक भोला बीमार पड़ जाता है। दोपहर ढलते उसके गले में लम्बी साँस अटक गयी और माँ के गले में बाँहें डालकर वह चल बसा।

भोले बादशाह में चित्रित भोले की माँ पुत्र स्नेह की प्रतीक है। भोले मानसिक रूप से विक्षिप्त है। सब लोग उसे पागल समझते हैं। माँ स्नेहपूर्वक खाना परोसती है तो वह माँ से लड़कर चला जाता है। रात हो गई पर भोला नहीं लौटा। माँ भोला की राह देखकर थक गई। बड़े बेटे के बताने पर वह अनसुनी रह जाता है। निस्सहाय वह माँ चारपाई पर लेटते ही सोचती है – यदि उसका बेटा भला होता, तो इतनी रात गए मारा–मारा न फिरता? अभागा क्या जाने घर का–सा ..... क्या होता है? .....

सबेरे तेज बुखार लिए भोला घर आता है। बड़े बेटे से कहने पर भी दवा–दारू का इंतजाम नहीं होता। वह आँख से हरबंसे को जाने का संकेत करती है। बेटे का माथा पोंछ स्नेह से बोली, "आराम से सो जा लाडले ! कल जो मन में आए सो करना।" लड़के के लिए जी का जी तरस आती है। सोचती है कि यदि मेरा बेटा ठीक–ठाक होता तो आज उसका भरा–पूरा परिवार होता। रातभर माँ

सिरहाने बैठकर रोती रहती है। बहू से कहती है – "बहू, बेटे से कह कुछ दान–पुण्य करवा दे। अब दवा क्या काम आएगी।"

भोले बादशाह में चित्रित माँ की जो पीड़ा है उसे कोई बाँट नहीं सकता। वे अपने ही बड़े बेटे और मुहल्ले वालों की क्रूरता के सामने रोने के सिवा कुछ नहीं कर पाती। भोले के कारण उसकी माँ जीवन भर सामाजिक अवहेलना का पात्र बनती है। फिर भी वह भोले के प्रति स्नेह भाव प्रकट करती है। उसकी भलाई चाहती हैं। अपने बेटे के किस्मत पर रोती है। बेसहारे माँ अपने बेसुध बेटे के लिए तड़पती है। भोले की दशा देखकर, उत्पन्न उसके मानसिक घुटन की कोई सीमा नहीं है।

कृष्णा जी ने भोले बादशाह की कहानी में व्यक्ति चेतना के टूटन की मार्मिक अभिव्यक्ति भोले के माध्यम से की है। वह मोहल्ले वाले, समाज एवं परिवार से संघर्ष कर निराश होता है। मानसिक रूप से विक्षिप्त अपने बेटे की स्थिति एवं अवस्था देखकर, भाले की मातृहृदय तड़पती है। कृष्णा जी ने निस्वार्थ मातृ–स्नेह एवं माँ की निस्सहाय दयनीय दशा का भी सुन्दर चित्रण किया है। बेटा कैसा भी हो, पर माँ की ममता में भेदभाव एवं कलंक नहीं होता। ऐसे ही एक माँ का ज्वलन्त उदाहरण है भोले बादशाह की 'माँ'।

संदर्भ ग्रंथ :

१. कृष्णा सोबती की कहानी कला, सुप्रिया, पी., जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, उत्तर प्रदेश – २८१ ००१, प्रथम संस्करण, २००८
२. कृष्णा सोबती व्यक्ति एवं साहित्य, डॉ. ब्रिजिट पॉल, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, उत्तर प्रदेश – २८१ ००१, प्रथम संस्करण, २००५
३. सोबती एक सोहबत, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली – ११० ००२, द्वितीय संस्करण, २००७

डॉ. जी. शान्ति
असिस्टेन्ट प्रोफेसर (एस. एस.)
श्री अविरामी इल्लम, २/१७६ बी–२, वनप्रस्था रोड,
अन्नपूर्णा फ्रूड्स समीप, वड़वालिल,
कोयम्बटूर – ६४१ ०४१ तामिलनाडु
मो. – ०९४४३६५२०८८
e-mail: visaanthi@gmail.com

●

7

सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यास में मातृत्व

भूमिका

भारत की सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में सम्बन्धों का अटूट माहौल है जो साहित्य का विषय बन जाता है। भिन्न संबंधों में सबसे प्रमुख है – मातृत्व, जो हमारे लिए हमेशा अटूट ही माना जाता है। मातृत्व पर विचार करने वाले एक प्रमुख रचना है सुरेन्द्र वर्मा का उपन्यास – 'मुझे चाँद चाहिए'। उन्होंने १९४२ में जन्म लिये हुए हैं, और आजकल मुंबई में रंगमंच और फिल्मों में गहरी दिलचस्पी ले रहे हैं। NSD या 'नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा' के सतर्क प्रवर्त्तक होने के नाते उनके बहुचर्चित उपन्यास 'मुझे चाँद चाहिए' का ज्यादातर वातावरण NSD से जुडे हुए हैं। वे एक प्रमुख साहित्यकार एवं पत्रकरिता में काम लेने वाले हैं। सुरेन्द्र वर्मा एक बहुमुखी साहित्यकार है जैसे नाटककार, व्यंग्यकार, समीक्षक, एकांकीकार, उपन्यासकार आदि। अनके चर्चित उपन्यास 'मुझे चाँद चाहिए' केन्द्रीय साहित्य अकादमी से पुरस्कृत है। उनके अन्य दो उपन्यास हैं – 'अँधेरे से परे' और 'दो मुर्दों के लिए एक गुलदस्ता'।

'मुझे चाँद चाहिए'

'मुझे चाँद चाहिए' का कैनवास शाहजहाँपुर के रूढ़िग्रस्त जीवन से लेकर दिल्ली बम्बई जैसे महानगरीय जीवन यथार्थ तक को बड़ी ही बारीकी के साथ रेखांकित किया हुआ है। उपन्यासकार ने भूमण्डलीकरण के परिप्रेक्ष्य में कलाक्षेत्र पर मज़बूत होने वाले बाज़ार तंत्र को उजागर करने का प्रयास किया है।

उपन्यास का केन्द्रीय पात्र 'वर्षा' उत्तर औपनिवेशिक प्रवृत्ति का आईना बनकर उपस्थित होती है। वर्षा की पारिवारिक पृष्ठभूमि में औपनिवेशक एवं पुरुष वर्चस्व का काफी जिक्र होता है। उनके पिता और बड़ा भाई इसका प्रतिरूप होकर पितृसत्तात्मक सौंदर्यबोध का प्रतिनिधित्व करता है। इनके टूटर के रूप में आने वाली उनकी अध्यापिका मिस दिव्या औद्योगिक समाज की वकालत करती है। वर्षा की माँ और बड़ी बहिन पितृसत्तात्मक औपनिवेशक सौंदर्यबोध को मानते हैं। वह चाहती है कि वर्षा को भी इसी लीक की नारी बनाऊँ। लेकिन वर्षा बचपन

से ही नारी अस्मिता को ढूँढ़ती है। हाईस्कूल, भर्ती के समय बिना किसी की अनुमति से अपना नाम बदलने वाली वर्षा वसिष्ठ उपन्यास के अंत तक कला के विभिन्न आयामों से मुठभेड़ करनेवाली नारी और उसे संबंधित चुनौतियों का पर्दाफाश करती है। कला के बाजारीकरण प्रक्रिया के विभिन्न आयामों को खोलने में उपन्यास सफल निकलता है। विज्ञापन एवं सूचना माध्यम जिस प्रकार चित्रनगरी की धुरी पकड़ती है, इसका व्यापक मिसाल उपन्यास में उपलब्ध है। वर्षा के प्राइवेट सेक्रेटरी पांडे भी इस क्षेत्र में सक्षम हैं। अक्सर वर्षा को भी सताता है। बाज़ारी संस्कृति से समझौता करने को विवश नारी का तनाव, वर्षा के माध्यम से प्रकट हुआ है।

मातृत्व–प्रमुख पात्र वर्षा में

NSD, चित्रनगरी, हॉलीवुड आदि कला के विभिन्न आयामों से जुड़ी अस्त–व्यस्त ज़िंदगी के बीच में भी वह माँ, मातृत्व को स्त्रीत्व की परम उत्कर्ष स्थिति के रूप में साबित करने का प्रयास करती दिखाई पड़ती है। वर्षा का समर्थन है – "प्रकृति में स्त्री इसलिए विशिष्ट है, क्योंकि वह जननी है।"[१]

वह खुद कहती है – "अब मेरे जीवन के हर्षरहित अध्याय की शुरुआत हो रही है, कितने वर्षों की अंतरगता, आसंगों और स्मृतियों के साथ अब मुझे नये सिरे से हर्ष के बिना जीने की आदत डालनी होगी।"[२]

यहाँ मुख्य पात्र वर्षा के जरिए उपनिवेशवादी अपसंस्कृतियों नहीं, मातृतव का भी अस्तित्व एवं अस्मिता की पुनर्व्याख्या हुई है। आलोचक विजय बहादुर सिंह ने उपन्यास अभिव्यक्त नारी चेतना पर यह टिप्पणी दी है। "यह उपन्यास उन स्त्रियों का है, जो पुरुष वर्चस्वी व्यवस्था के प्रति सिरे से अहसमत है और लड़–झगड़ या मार–कूट कर उस स्वत्व को पा लेना चाहती है, जो सदियों से लावे की तरह उनके भीतर धधक रहा है।"[३] नायिका वर्षा के अलावा मिस दिव्या, रीटा, नीरजा, झल्ली आदि नारियाँ इसका मिसाल हैं।

वर्षा पारिवारिक संरचना का उत्तर औपनिवेशिक स्वरूप से समझौता करने में सफल दिखाई पड़ती है। रूढ़िगत सामाजिक मान्यताओं को खारिज करते हुए प्रेमी हर्ष की मृत्यु पर बच्चे की माँ बनने की वर्षा का निर्णय नारी मुक्ति के उत्तर औपनिवेशिक स्वरूप का मिसाल है। पत्नी बने बिना, जननी बनने की स्थिति यहाँ मौजूद है।

"उसे अंदाजा था, इस जीव की स्वीकृति उसके आगमी जीवन की दिशा और प्रकृति बदल देगी। पेड़ों के झुरमुट के बीच सूखे पत्तों पर चलते हुए उसने मन ही मन कहा, मैं इस फैसले का मूल्य चुकाने को तैयार हूँ।"[४] वर्षा हर्ष के बच्चे को स्वीकार करने के लिए तैयार है क्योंकि वह महसूस करती है कि अब इस संबंध

का एक प्रतीक उसे मिल सकता है। हर्ष से संबंध की निरंतरता बनी रह सकती थी। उसके पेट में जो बीज है, वह सिर्फ हर्ष की ही स्मृति नहीं, उसका अपना भी अंश है। वह उन दोनों की साझी प्रतिबद्धता है। अपनी कलानिष्ठा के बाद वह वर्षा का सबसे महत्त्वपूर्ण गठबंधन है।

वर्षा पारिवारिक ढाँचे के दायित्वों को रूढ़िगत रीति–रिवाज़ों के आधार पर स्वीकारने में असफल निकलती है। रंग दायित्व के प्रति सम्पूर्ण समर्पण की वजह से वह शादी जैसी सामाजिक प्रथा से दूर रही। उसे बिना शादी के मातृत्व को अपनाने के ज़रिए काफी मुसीबतें उठानी पड़ती हैं। सेक्रेटरी पांडे के साथ कई बार नाटकीय सक्षमता सम्पन्न होती। आखिर उसे कहना पड़ता है – "मैं एक बार कह चुकी हूँ, मेरी जाती ज़िंदगी पर टिप्पणी करने का आपको कोई अधिकार नहीं।"[५]

उत्तर औपनिवेशिकता ने नारी को पुरुष वर्चस्व से मुक्त किया साथ ही अपनी रुचि के अनुसार वैयक्तिक ज़िंदगी एवं कलाजगत में बढ़ने का मौका भी अदा किया। प्रत्येक स्त्री समाज की अपनी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, विशेष परिस्थिति एवं विचारधारा है। व्यक्ति इसके मुताबिक परिवर्तित होता है। सामजिक एवं कला क्षेत्र में नारी का विकास उपन्यास में गतिशील है। वर्षा पुरुष के समान दर्जे में गतिशील होकर आगे बढ़ती है, बड़ी कम्पनियों एवं फार्मों का साझेदार एवं लखपति बनती है।

डॉ. रेणु शाह का मत है – "वैश्वीकरण ने नारी चेतना के क्षितिज को सबसे ज्यादा फैलाया है। विज्ञान, तकनीक, खेल, कार्पोरेट–जगत आदि कई क्षेत्रों में स्त्रियों ने अपनी मेधा और श्रम द्वारा पहचान बनाई है। इस उपन्यास में वर्षा के द्वारा नारी सशक्तीकरण के विभिन्न आयामों का पर्दाफाश हुआ है।"[६] कला एवं पारिवारिक वातावरण में इसका प्रभाव हम पहचान सकते हैं।

वर्षा के अपने हर्ष की बहिन सुजाता से होनेवाली मुठभेड़ से हमें पता चलता है कि वह किस हद तक सामाजिक रूढ़ियों के लिहाज से अपनी चुनौती भरा कदम उठाया है। अपनी ज़िंदगी की कटु आलोचना करने पर वह व्यक्त करती है चाहे उनके रिश्तेदार जितना भी व्यंग्यभरी दृष्टि डाल दें उनका भरोसा है वही बच्चा हेमंत ही उसका सहारा होगा।

मातृत्व को अपनाने की तीव्र पीड़ा अपने ससुरालवालों से भोगते हुए उनकी प्रतिक्रिया है– "जो रास्ता उसे चुनना पड़ गया था, वह अलग और एकाकी था" ... "देखो हर्ष तुम्हारे बाप के साथ क्या हो रहा है।"[७] चारों ओर के इनकार एवं अकेलापन के कुएँ में पड़ी वर्षा की ज़िंदगी में बच्चे के साथ का बंधन और दृढ़ होती जाती थी।

मातृत्व अन्य पात्रों में

वर्षा के मातृत्व के साथ बच्चे की नानी का मातृत्व उतना ही झकझोरनेवाली है। अपनी बेटी सुजाता की रूढ़ि स्थिति को भी अनसुना और अनदेखा स्थापित करते हुए अपने दायित्व निभाने में सक्षम हर्ष की माँ का चित्रण भी मातृत्व की श्रेष्ठता का मिसाल है। अपने पति और पुत्र की अनुपस्थिति में भी यह नानी पोते के लिए जो कुछ निभाना था, उसी के वास्ते बेटी से रूठने की स्थिति तक पहुँचती है। फिर भी अपना दायित्व बिना किसी बाहरी मदद या प्रभाव से सार्थक कर देती है।

"मम्मी ने जैसी दृष्टि से बच्चे को देखा, वर्षा पिघल गयी, ... देखो भाग्य का खेल ..." मम्मी रुँधे गले से बोली, "आज के दिन न उसके डैडी हैं, न वह ..."।

वर्षा कुछ कह नहीं पायी। बस मम्मी को अपने हाथों में ले लिया। थोड़ी चुप्पी के बाद मम्मी ने आँसू पोंछे। फिर बैग से एक कागज़ निकाल – "अपने पुरोहित से बच्चे की कुंडली बनवायी है। ... मैंने वही किया है, जो न्याय की माँग है।"

... मैंने कुछ और कागज़ निकाले, वसंत बिहार का बंगला बच्चे के नाम किया है। ... हर्ष के डैडी ने जो fixed deposit, शेयर कुछ छोड़ा था, वह दोनों बच्चों में आधा–आधा है। ... मुझे पूरा विश्वास है, हर्ष के डैडी की आत्मा मुझसे सहमत होगी।

असल में माँ के व्यक्तित्व की श्रेष्ठता, जननी होने से उनमें प्रकट होने वाले नारीत्व या स्त्रीत्व से ही उसे देवता बनायी देती है। यह हर्ष की माँ इसका जिक्र देती है। वर्षा के बचपन में शाहजहाँपुर में उसकी ज़िंदगी में नए मोड़ दिए मिस दिव्या का मातृत्व की श्रेष्ठता उनकी बेटी प्रिया एवं पति रोहन के ज़रिए अभिव्यक्त होते हैं।

भूमण्डलीकरण के नये परिप्रेक्ष्य में भी चाहे पारिवारिक सम्बन्ध चाहे जितने भी शिथिल हो रहे हों – माँ–पुत्र–पुत्री का संबंध नये सिरे से मोड़ कर अटूट ही स्थापित होती है। सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यास 'मुझे चाँद चाहिए' इन गठबंधनों के नये प्रतिमानों के आधार पर नाप–माप कर प्रस्तुत करने में सक्षम निकले हैं। विश्व के सदैव असलियत संबंध झकझोरने के प्रयासों एवं पहलुओं को चुनौती देते हुए हमारे सामने हैं – वर्षा का, रीटा का, दिव्या का हर्ष की माँ का मातृत्व।

वर्षा की दिखावटी जीवन के मीडिया जीवन के बीच में भी मातृत्व भाव की आत्मीयता वर्षा एवं हर्ष की माँ में अभिव्यक्त हो रहा है।

संदर्भ ग्रंथ :

१. मुझे चाँद चाहिए, सुरेन्द्र वर्मा
२. वही
३. उपन्यास समय और संवेदना, विजय बहादुर सिंह
४. मुझे चाँद चाहिए, सुरेन्द्र वर्मा
५. वही
६. वैश्वीकरण और महिला लेखन का बदलता स्वरूप, डॉ. रेणु शाह
७. मुझे चाँद चाहिए, सुरेन्द्र वर्मा

डॉ. सि. मरियट. ए. तेराट्टिल
सह–आचार्य – हिंदी विभाग,
विमला कॉलेज – तृश्शुर
केरल

●

8

समकालीन हिंदी कविता में मातृत्व का चित्रण

कविता तब अर्थपूर्ण बन जाती है जब उसमें समकालीनता का पुट निहित हो। समकालीन कवियों की रचनाओं में सामाजिक यथार्थ का सजीव चित्रण देखने को मिलते हैं। शिवकुमार मिश्र समकालीन कविता के बीच में यों कहते हैं– "कठिन चुनौतियों के बीच जन्म लिया है उसने शिद्दत भरा कवि कर्म रहा है, उससे जुड़नेवालों का। बावजूद इसके समकालीन कविता कालांकित कविता है, काल के सीधे आँखें मिलानेवाली, उससे मुठभेड़ करने वाली, समय की नब्ज को पहचानकर उस समय से टकराने वाली।

समकालीन हिंदी साहित्य में स्त्री के विभिन्न रूपों को, साथ ही उनके सम्मुख आने वाली विविध समस्याओं को रेखांकित किया गया है। इसमें संदेह नहीं, समकालीन कविता युग की सच्चाई की कविता है। साहित्य में स्त्री कथापात्रों को माँ, बहन, बेटी, पत्नी, प्रेमिका, सास जैसी विभिन्न भूमिकाओं में मिलते हैं। इन रूपों में आदर्श रूप 'मातृत्व' ही है। प्रस्तुत अत्याधुनिक युग में अपने बच्चों को जान से भी ज्यादा चाहने वाली माँ से लेकर मातृत्व को तुच्छ समझकर अपनी स्वार्थता में लीन होकर जीने वाली माताओं को भी देख सकते हैं। एक माँ को अपने बच्चे से जितना स्नेह है वहाँ बात अकथनीय है। वह अन्दर मन में अनुभूत सत्य है लेकिन इस ममतामयी माँ की महत्त्व को नज़रअंदाज करके अपनी बूढ़ी माँ के परिपालन को भार समझकर किसी अनाथालय में ढकेल कर अपनी स्वार्थता के मार्ग पर चलने वाली सन्तानों की संख्या बढ़ती जा रही है।

समकालीन संदर्भ में मातृत्व का सच्चा रूप दिखाने वाली अनेक रचनायें हिंदी साहित्य में उपलब्ध हैं। माता शब्द 'माँ' धातु से बना है। माँ का अर्थ है 'मापना' (to measure) इससे 'मातृ' बना जिसका अर्थ है मापने वाली। हिंदी साहित्य के इतिहास की ओर दृष्टि डालने पर माँ के विभिन्न रूपों को हम देख पाते हैं। वीरगाथाकाल में मुख्य रूप से माता का वीर रूप दृष्टिगोचर होता है। वीर माता अपनी सन्तान को विजयी पुत्र के रूप में देखना चाहती है। वहाँ माँ हमेशा यही चाहती है कि या तो उसका पुत्र विजयी होकर लौटे, अन्यथा वह शरीर त्याग दे।

भक्तिकाल में तुलसीदास की कौशल्या और सूरदास की यशोदा को आदर्श माता के रूप में देख सकते हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की माता है कौशल्या। इसलिए वह सुख–दुःख दोनों भावों के अवसर पर गहन गंभीर बन जाती हैं। लक्ष्मण की माँ सुमित्रा भी आदर्श माता है जो लक्ष्मण के लिए वन गमन की आज्ञा न होने पर भी उन्हें सहर्ष राम के साथ भेज देती है। तुलसीदास के रामचरित मानस की सीता भी आगे चलकर आदर्श माता बनती है। उन्होंने परित्यक्तावस्था में भी लव–कुश को वीरता एवं विश्व कल्याण का पाठ पढ़ाकर राम से अधिक शक्तिशाली बनाया।

समाज के विकास की मेरुदण्ड वास्तव में स्त्री ही है। स्त्री के बिना किसी प्रकार की प्रगति की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। यह निसंदेह कह सकते हैं कि आज समाज में मर्दों से ज्यादा आदर 'माँ' को ही मिलता है। माँ क्षमता और ममता का प्रतीक है। वह घर की लक्ष्मी है, सरस्वती है और जब वह अत्याचार सह–सह कर बेबस हो जाती है तो दुर्गा का उग्र रूप धारण करने में भी हिचकती नहीं। माँ बनना एक औरत के लिए ईश्वर का दिया हुआ सबसे बड़ा वरदान है। बच्चों का जन्म न देने पर भी एक नारी में माँ की ममता का भाव ज़रूर छिपा रहता है। जो माँ बच्चों को जन्म देती है वह अपना दूध देकर अपनी संतान का पालन–पोषण करती है। जीते जी कोई भी माँ अपनी संतान पर किसी भी प्रकार की आँच नहीं आने देती। अपनी संतान को खुश देखने के लिए वह कुछ भी करने को तैयार हो जाती है। माँ का हृदय ममता का सागर है। दुसरों का दुःख–दर्द देखकर उसका हृदय पिघलता है। बिगड़ते सम्बन्धों को बनाये रखने में भी वह अपनी ओर से पूरी कोशिश करती है।

'माँ' की महत्ता एवं मातृत्व की विशिष्टता दिखाने वाली अनेक कवितायें समकालीन हिंदी साहित्य में आज उपलब्ध हैं। चन्द्रकान्त देवताले जी की 'कम खुदा न थी परोसने वाली' शीर्षक कविता में ममतामयी माँ की जीवंत तस्वीर उपलब्ध है। एक मातृ हृदय का यथार्थ चित्रण कवि यों देते हैं –

"माँ थी
सबसे बाद खाने वाली
जिसके लिए दाल नहीं
देचकी में बची थी हलचल
चुल्लू–भर पानी की
और कटोरदान में भाफ़ के चन्द्रमा जैसी
रोटी की छाया थी।"

यह सत्य है कि घर में सबके बाद खानेवाली हमेशा माँ ही होती है। वह घर के सारे सदस्यों को भोजन परोसने के बाद अगर कुछ बाकी है तो उसे खाती है। यदि कुछ नहीं है तो उसे शिकायत नहीं, किसी न किसी बहाव बनाकर अपनी

अभावग्रस्तता को आप ही आप सहती है। साथ ही घर के सबों का पेट भरना अपना ही दायित्त्व समझकर उसकी पूर्ति के लिए कर्मनिरत हो जाती है।

ममतामयी एवं उत्तरदायित्वपूर्ण माँ का चित्र प्रस्तुत करता है कवि मधुर गंजमुरादाबादी की 'माँ की आख' शीर्षक कविता में। उनकी राय में माँ हर पल का हिसाब हर समय रखने वाली घड़ी की सुई की तरह है। घर की आवश्यकता को ठीक समय पर करने की कोशिश करके उसकी आँखें घूमती रहती हैं –

"घर के किसी कोने में हो माँ
पर उसकी आँख घूमती रहती है
घड़ी की सुई की तरह हर समय
रखती है हिसाब हर पल का"

कवि ने माँ को परिवार की ज़रूरतों के आगे आँखें बन्द करने के रूप में नहीं बल्कि घरवालों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सचेत होकर कर्मण्य व्यक्ति के समान दिखाया है। पूरे घर एवं सदस्यों की देख–रेख, उनके पेट भरने का दायित्व घर की माँ पर थोपा गया है। वह कर्म ममत्व भाव से वह करती भी रहती है।

फिर कवि माँ के हृदय की तुलना एक विशाल वृक्ष की जड़ से करके यों दिखाते हैं –

"धरती के नीचे फैली
विशाल वृक्ष की जड़ों की तरह
सोखना चाहती है दर्द
घर के हर प्राणी के अंतस का
सींचना चाहती है अपने प्यास से
जीवन की बेल को।"

भास्कर चौधरी की कविता है 'माँ'। माँ यह जानती है कि घर के सदस्य उससे क्या बताना चाहते हैं। बीमार पड़े गृहनाथ देखने में, पहचानने में और कुछ कहने में न समर्थ होने पर भी कुछ कहने के लिए होंठ हिलाने पर माँ उसे समझ लेती है –

"पिता बिस्तर पर हैं
शक्कर और बी. पी. की बीमारी ने उन्हें
बिस्तर से लगा दिया
दोनों पैर बेकार हो चुके हैं
लड़खड़ाने लगी है जुबान
आँखें पहचानना बंद कर चुकी कब की
लेकिन पिता जब भी होंठ हिलाते है।
बुदबुदाते हैं कुछ ... माँ समझ लेती हैं।"

'स्वाद' रामकुमार आत्रेय की कविता है। इसमें रोटी का स्वाद उसको बनाने वाले

हाथों और उसको पकाने वाली आँखों में निहित होता है। कहने का मतलब है कि पकाने वाली माँ की ममतापूर्ण मातृत्व की ओर यहाँ इशारा करते हैं। पंक्तियाँ यों हैं –

"रोटियों को
बेस्वाद कहकर फेंकने से पहले
सोच लो एक बार
अन्न कभी बेस्वाद नहीं होता
बेस्वाद होती है जुबाना
वैसे भी
स्वाद रोटी में नहीं
रोटी बनाने वाले हाथों में होता है
रोटी पकानेवाली आँखों में होता है।

ममतापूण माँ का स्नेह पहचान कर उनके छोड़े बिना स्वीकारने के लिए तैयार है। कवि आगे कहते हैं–

वे हाथ, वे आँख
तुम चाहकर भी फेंक नहीं पाओगे
जहाँ भी जाओगे
उन्हें हमेशा अपने साथ पाओगे।

डॉ. मधु धवन के 'अमृतमयी' काव्य की पहली कविता 'माँ–ज्योति पर्व' में मधु जी की माँ की स्तुति बिल्कुल समर्पण की मुद्रा में है। कविता की पंक्तियाँ यों हैं –

"माँ–ज्योति पर्व का भरा कलश
शुभ मंगल–मंगल–मंगल"

उक्त पंक्तियों में 'माँ ज्योति पर्व' का जो भरा कलश केवल शुभ मंगल अर्थात् सत्कार्यों के लिए प्रयुक्त है – जीवन के हर पल में उसकी जय हो, वह हमारे आंगन, गृहस्थ और जीवन में खुशहाली उसी की कामना से ही संभव है।

माँ का मातृत्व बच्चे को शिक्षा देता है जैसे कि पृथ्वी से ममता दिखाने एवं उससे पाठ सीखने जैसी शिक्षा। सुजाता चौधरी अपनी 'माँ और पृथ्वी' नामक कविता के ज़रिए एक ऐसा चित्र हमारे सम्मुख लाती हैं। पंक्तियाँ इस प्रकार हैं–

"माँ ने कहा था उस दिन
पृथ्वी की तरह सहनशील होने को
पृथ्वी से कुछ सीखने को
लेकिन मैं कहूँगी पृथ्वी को
माँ से कुछ सीखने को।"

माँ के जीवन में अनेकानेक बाधायें एवं तकलीफें होने पर भी उस पर अधिक बल न देकर अपने बच्चों के जीवन में आने वाली विपत्तियों से बचाने के लिए संचेत एवं सतर्क होकर रहने वाली ममत्व पूर्ण माँ के रूप आगे की पंक्तियों के ज़रिए कवयित्री दिखाती है। पंक्तियाँ हैं –

"आँसुओं का सागर, उसे घेरे रखने के बावजूद
बचाती है माँ अपने, बच्चों को
मगरमच्छ के मुँह से
बाँधे रखती है अपने आँचल में
वह लहरों को ढहाने नहीं देती
घरौंदा बच्चों का।"

स्मिता झा की 'माँ से कहना चाहती हूँ' कविता यहाँ ध्यातव्य है। दरसअल माँ का हृदय घर वालों की भलाई के लिए पिघलने वाला है। वह सुबह से लेकर रात तक अपना समय, तन्दुरुस्ती आदि पूर्णतया सौंपकर थके बिना काम करने वाली है। ये सारे दृश्य देखने वाली बेटी माँ से यों कहती है –

"माँ से कहना चाहती हूँ
कि मैं तुझ–सी नहीं होना चाहती
मुँह–अँधेरे झाड़ू लगा
चना–चेतना देती हमें
भोजन पकाती, मसाला कूटती
कुट्टी काटती, खेतों की ओर जाती
पहर–दोपहर, साँझ–सबेरे
काम–ही–काम।"

घर वालों को रौटी कमाने एवं भूख मिटाने की कोशिश में अनेक कामों में मग्न एक माँ का जीवन संघर्षमय एवं दुखपूर्ण है। प्रस्तुत कविता में मातृत्व पूर्ण स्त्री का चित्र यों हैं –

"पसीने की बूँदों की मीठी महक
पर बदले में मिलता तुझे
दुख और दुत्कार
अस्तित्वहीनता, तिरस्कार
तू प्रेम देती, तुझे घृणा मिलती
तू स्नेह बिछाती, तुझे अपमान ओढ़ना पड़ता"

घर में माँ को विवश देखकर अगली पंक्तियों में बेटी अपना निश्चय प्रकट कर माँ से कहती है –

"माँ सुन, मैं तुझ–सी नहीं होना चाहती।"

लेकिन माहौल बदलने पर, याने बेटी जब माँ का पद लेती है कालान्तर में तब वह भी जाने अनजाने एक ममतामयी माँ का रूप ही धारण करती है। पंक्तियाँ इस प्रकार हैं –

"फिर भी
क्यों लगता है ऐसे
बरस–दर–बरस बीतते–बीतते
मैं होती जा रही हूँ
तुझ–सी
धीरे धीरे ...।"

'माँ की थपकियाँ' नामक कविता में कवि श्याम सिंह चौहान अपने जीवन में अनुभूत माँ के मातृत्व भाव का एक अच्छा–सा चित्र प्रस्तुत करते हैं। वे लिखते हैं –

"सुबह–सबेरे
जब उत्तर दिशा का तारा
टिमटिमाता रहता था
चक्की पीसना शुरू कर देती थी तू
और मैं उठ कर पास आ जाता
तेरे घुटने में सिर रख देता
और तू थपक कर लोरी सुनाती।"

घर के परिपालन हेतु अपना जीवन पूर्ण रूप से सौंपकर, जीवन में आने वाले छोटे–बड़े संघर्षों एवं अभावों की परवाह किये बिना उत्तरदायित्व पूर्ण मातृत्व का चित्र समकालीन कविता के मुख्य विषयों में एक है। गृहस्थी सँभालने का दायित्व माँ के कंधों पर निर्भर है। समकालीन कविता में ममता के साथ बच्चों के परिपालन में मग्न माँ का विविध रूप विद्यमान है। बहुत सरल एवं सशक्त शब्दों में माँ की प्रेम–भावना की तीक्ष्णता का एहसास कराने की शक्ति समकालीन कवियों में है।

डॉ. सिस्टर रोस आन्टो
एसोसिएट प्रोफेसर,
सेंट जोसफ्स कॉलेज – इरिञालकुटा
तृश्शूर जिला, केरल

●

9

माँ और संतान के बीच बनते बिगड़ते परिवर्तित मूल्य ममता कालिया की कहानियों में

इक्कीसवीं सदी का समाज चतुर्दिक विकास का समाज है। आज के विकासोन्मुख समाज में सबसे चर्चित शब्द है 'मूल्य'। क्योंकि मूल्य मानव समाज की रीढ़ है। मूल्य ही मानव को सच्चे अर्थों में मानव बनाता है। समाज और मूल्य का सम्बन्ध बहुत गहरा है। आधुनिक युग मूल्य परिवर्तन का युग है। अतः आज के चर्चित विषयों में मूल्य की प्रासंगिकता को समझकर साठोत्तर महिला कहानीकार ममता कालिया ने अपनी कुछ कहानियों के ज़रिए माँ और संतान के बीच बनते–बिगड़ते परिवर्तित मूल्य का उल्लेख किया है।

परिवार समाज की सबसे श्रेष्ठतम इकाई है। हर एक व्यक्ति के व्यक्तित्व रूपायन की नींव परिवार ही है। यानि परिवार से ही व्यक्ति के चरित्र निर्माण का आरम्भ होता है। परिवार जैसे सुदृढ़ संस्था की स्थापना का आधार वैवाहिक जीवन है। वहाँ खामियाँ और खूबियाँ होती हैं। लेकिन परिवार के अंग ही उसे स्वर्गीय और नरकीय बनाते हैं। परिवार में हर एक अंग में आपसी एकता और सामंजस्य की आवश्यकता है। नहीं तो परिवार का संतुलन बिगड़ जाएगा।

एक समय माता–पिता और संतान का संबंध सभी सम्बन्धों में से सबसे ज्यादा श्रेष्ठ और दृढ़ माना जाता था लेकिन आज स्थिति बदल गई है। माता–पिता रूपी विशाल वृक्ष की छाया से सन्तानों की प्रगति होती है। ये सन्तानों के जीवनरूपी पाठशाला के पहले अध्यापक हैं। दोनों सन्तानों के प्रति सब कुछ करने को तैयार हैं। विशेषकर 'माँ' त्याग और समर्पण की साक्षात् देवी ही है। उनके अंतःस्थल में मानो वात्सल्य का अपूर्व प्रवाह निरन्तर बहता रहता है। माँ ममतामयी है, स्नेहमयी है। लेकिन परिवर्तन के इस युग में माता और सन्तान के बीच अन्तराल नज़र आता है।

ममता कालिया की बाल मनोविज्ञान पर आधारित एक सुन्दर कहानी है 'राजू'। पितृविहीन राजू का एकमात्र सहारा अर्थाभाव से पीड़ित माँ है। छोटा होने पर भी राजू अपनी माँ की मानसिक व्यथा को समझता है। जब वे दोनों खुशी से अपने ही परिवार की एक शादी में जाते हैं वहाँ दूसरे लोगों से, खुद अपनों से भी

राजू को अपमान सहना पड़ता है। औरों के कारण माँ क्रोध से उसे 'अपशकुनिया' कहती हैं लेकिन बाद में पश्चाताप एवं अपनी नियति पर रो पड़ती हैं। समझदार राजू जल्दी अपने और माँ के आँसू पोंछते हुए उसे दिलासा देते हुए कहता है 'अम्मा रोओ मत। चलो हम घर वापस चलें।' बेटे के ऐसे हृदयस्पर्शी और दिलासापूर्ण बात सुनकर माँ का हृदय पिघल जाता है। मातृस्नेह की ममताभरी भावना से वह बेटे को अपनी ओर खींच लेती है और लगातार चूमते हुए कहती है, "मेरा सवा लाख का बेटा, मेरा नौनिहाल मेरी जीभ चल जाये। मेरा राजू तू जुग जुग जिये।" दुनिया बदल गये, परिवर्तन का चकाचौंध रूप समाज में प्रतिफलति होने लगा लेकिन माँ के वात्सलय का शाश्वत मूल अब भी नष्ट नहीं हुआ है।

माँ की खुशी संतान की खुशहाली में है। कोई भी माँ/संतान को उदास नहीं देखना चाहती। 'जितना तुम्हारा है।' कहानी का बेटा रघु अपनी इच्छा से अपनी पसंद की एक बंगाली बहू को घर ले आता है। माँ पहले विचलित हो जाती है लेकिन बाद में उसे सोने की जंजीर पहनाकर स्वागत करती है। यहाँ माँ परम्परागत रीति–रिवाज़ के विरुद्ध व्यवहार करने वाले बेटे के सामने अपने दकियानूसी विचारों को परिवर्तित करके एक शांतिपूर्ण माहौल बनाना चाहती है। यह पुरानी पीढ़ी की व्यावहारिकता है। वे अपनी जिद छोड़कर अपनों के साथ समझौता कर लेते हैं।

आज के आधुनिक युग में वृद्धजनों के प्रति कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। भारतीय परम्परा के अनुसार माता–पिता वृद्धावस्था में बेटों के सहारे जीना पसन्द करते हैं। लेकिन 'आज़ादी' कहानी में एक बेटा नौकरी के स्थान से लौटकर आता है तो रोगग्रस्त माँ अपनी बीमारी भूल जाती है। बहू के रहते भी अपने ही हाथों से भोजन बनाकर खिलाती है। घर में पति के आधिपत्य में पीड़ित स्त्री भी अपने सन्तान के प्रति लगाव से व्यवहार करती है। माँ के नैसर्गिक स्वभाव को ममता कालिया ने यहाँ प्रस्तुत किया है। पुत्र स्नेह के सामने सभी माँ अपने दुःखों को भूलकर उनके प्रति अपने को अर्पित करती है। यह एक परम्परागत रीति है। आज के आधुनिक युग में मूल्यों में परिवर्तन तो हुआ है लेकिन संतान के प्रति माँ का प्रेम आज भी वैसे के तैसा है।

स्त्री का मातृत्व उसके जीवन की सार्थकता पूर्णता एवं सफलता का प्रतीक है। यह पद (मातृत्व का) स्त्री को आत्मतुष्टि, आत्मसुख, आत्मविश्वास, आत्म अस्तित्व आदि के साथ–साथ सामाजिक प्रतिष्ठा भी प्रदान करता है। यह सर्वविदित सत्य है कि मातृत्व की लालसा संसार की सभी पीड़ाओं को विस्तृत कर देती है। इस पीड़ा के पश्चात् पर जीवन में नई शक्ति का संचार पाती है। 'अर्द्धांगिनी' कहानी में 'रूपा' वक्ष कैन्सर से राहत पाकर एक बच्चे को जन्म देती है। खुशी एवं गर्व के साथ पति सौरभ बच्चे के लिए खिलौने और 'दूध' की बोतल भी लाता है उसे देखते हुए अचानक रूपा पूछ बैठती है – "इसका क्या काम।

रूपा मातृत्व से आत्मविश्वास के साथ कहती है "चिन्ता क्यों करते हो मैं इसकी माँ हूँ। इसका अमृत मेरे अंदर से बाहर आएगा" स्त्री के अस्तित्व की पूर्णता तभी होती है तब वह माँ बनकर अपने नवजात शिशु को स्तनपान करायें, तभी स्त्री अपने आपको सार्थक मानती है।

आज समाज में सब जगह उपभोक्ता संस्कृति का बोलबाला है यहाँ तक कि विवाह भी इससे मुक्त नहीं। विवाह भी आजकल एक बिज़िनस है। हर माता–पिता की तरह 'बिटिया' कहानी की माता भी बेटी की शादी में वरपक्ष के 'डिमान्ड' के अनुसार सब कुछ देने को तैयार हो जाती है। भूमण्डलीकरण और बाज़ारीकरण के प्रभाव के फलस्वरूप वरपक्ष की आवश्यकता भी निरन्तर बढ़ती जाती है। ऐसी दुरस्त हालत में उसको निभाने का प्रयत्न करने वाली आदर्श माँ का चित्रण ममता कालिया ने 'बिटिया' में प्रस्तुत किया है।

माँ त्याग, करुणा, वात्सल्य जैसे अनेक मानवीय भावों की संचय निधि है। माँ अपनी बेटी से कितना प्यार करती है, उसका पूरा ज्ञान 'इरादा' कहानी द्वारा व्यक्त होता है। 'इरादा' कहानी की बीमार माँ अपने विवाहित बेटी के आने से खुश हो जाती है। लेकिन दामाद का बुलावा पाकर एक आदर्श माँ की तरह कहती है, "शांति मैं बिल्कुल ठीक हूँ, तू जा, तू आ गई तुझे आँख भर देख लिया यही बहुत है।" यहाँ एक विवाहित बेटी की तकलीफ को माँ भली–भाँति समझती है। इसलिए उसको कोई शिकायत नहीं।

माँ सहनशीलता और सहनशक्ति की साक्षात् प्रतिभा होती है। महात्मा गाँधी ने भी नारी के आदर्श के विषय में कहा है कि 'नारी त्याग की मूर्ति है।' अपने संतान के लिए वह जान की बाजी भी लगा देती है। 'माँ' कहानी की माँ अपनी छोटी बच्ची को बन्दर के उठा भागने पर अत्यन्त दुखी है। जल्दी वहाँ उपस्थित दो अनजान लड़के अपने जीवन की परवाह किये बगैर बच्ची को बचाते हैं। कभी–कभी जीवन में ऐसी अवस्थाएँ आती है जब कोई अनजान हमारी रक्षा के लिए आता है। लेकिन कभी–कभी सन्दर्भ के विपरीत अपने ही लोग बात का बतंगड़ बना देते हैं। यहाँ इस कहानी में सास इस घटना को एक विकृत रूप देती है। लेकिन बहू अपनी बच्ची के प्रति सास की ऐसी कड़वी युक्ति को अनदेखा करती है यह एक तरह की बुद्धिमानी है।

सभ्यता और संस्कार होने के बावजूद भी आज भारतीय परिवारों में मनुष्यों का आधिपत्य है। 'सीमा' कहानी में पति के अधीन रहने वाली सीमा ससुराल के वातावरण में उसका मन बेचैन एवं पीड़ित है। स्त्री की नियति है कि ससुराल के विपरीत माहौल में भी उसे अपने आपको ढालना पड़ता है। इसी वजह से माँ बेटी को समझाती हुई कहती है "तो इसमें बुरा क्या है, अच्छी औरतों को हमेशा पति की मर्जी में ही अपनी मर्जी देखनी चाहिए।" यहाँ माता बेटी के सुनहरे भविष्य की खातिर बेटी को परिस्थितियों से समझौता करने को कहती है। जिसमें

एक हद तक व्यावहारिकता है क्योंकि दाम्पत्य जीवन समझौते पर टिका हुआ है। आधुनिक जीवन में इसकी कमी खूब देख सकते हैं इसी वजह दाम्पत्य जीवन ताश के पत्तों की तरह ढहढहा कर गिर पड़ते हैं।

माँ की व्यक्तित्व का मर्मस्पर्शी चित्र 'एक दिन अचानक' में व्यक्त हुआ है। माँ के रूप में स्त्री को सदा ही उच्च स्थान मिला है। माँ त्याग और समर्पण मनोभाव की यथार्थ तस्वीर है। उनके अन्तःस्थल में वात्सल्य की धारा प्रवाहित होती है। एक माँ के लिए उसके संतान ही उसकी अनमोल निधि होती है। संतान के लिए वह अपने सारे ऐश्वर्यों को समर्पित करती है। इस कहानी में 'कोमा' में पड़े पुत्र के प्रति माँ का समर्पण अद्वितीय है। लेकिन ढाई साल की सेवा–सुश्रुषा के अंत में पुत्र हमेशा के लिए इस दुनिया से विदा हो जाता है। तब माँ विलाप कर उठती है "हाय घर कैसा खाली, खाली लग रहा है, अब हम कैसे जियेंगे।"

ममता कालिया ने अपनी इस कहानियों में मूल्यों को बनाये रखने की कोशिश की है। साथ ही यह भी व्यक्त करती है कि मातृत्व स्त्री जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है। इसके बिना स्त्री अपूर्ण है। इसी आदर्श मातृत्व की झलक इन कहानियों में प्राप्त होती है। इस कहानियों में नारी अपना सब कुछ अपने बच्चों के लिए न्योछावर करने को तैयार है।

डॉ. लिसम्मा जौन
असोसिएट प्रोफेसर,
सेंट जोसफ्स कॉलेज,
इरिनांलक्कुडा, त्रिश्शूर

●

10

गुलाब जैसी एक माँ

साहित्य में विशेषकर समकालीन साहित्य में भाषा एवं भाषिक संरचना विशेष महत्त्वपूर्ण माना जाता है। सामाजिकता के सन्दर्भ में भाषा एवं साहित्य का अध्ययन आज विशेष रूप से हो रहा है। इतिहास की ओर यदि देखा जाए तो सामूहिक भाषा के उद्‌भव एवं विकास का इतिहास व्यक्तिनिष्ठ भाषा के विकास की ओर संकेत करता हुआ दिखाई पड़ता है। हर व्यक्तिनिष्ठ भाषा के पीछे एक परिवार है। विशेषकर एक पारिवारिक सदस्य है। उस सदस्य ने ही शायद अपने स्तन्य के साथ एक संस्कृति को भी पनपने दिया है उस ममता को हमने माँ की संज्ञा दी है।

माँ एक भाषिक संरचना है। व्यक्ति मन में समाज बोध का निर्माण करने वाली है वह। प्रत्येक व्यक्ति की सामाजिक अवधारणा के पीछे किसी न किसी प्रकार माँ होगी। क्योंकि दुनिया के प्रति पहली चेतावनी बच्चे को अपनी माँ से ही प्राप्त होती है। इस प्रकार भविष्य की संकल्पना के पीछे माँ एक जीवनदायिनी स्रोत के रूप में दिखाई देती है। साहित्य में विशेषकर समकालीन साहित्य में माँ को सामाजिक जीवन के विभिन्न संदर्भों में चित्रित किया गया है। नगर एवं ग्राम जीवन के विभिन्न पहलुओं का निर्धारण करने वाले प्रतीक रूप में माँ आज के साहित्य में सक्रिय है। मन्नू भंडारी की गुलाबी एक ऐसी माँ है जिसने निम्न सामाजिक सन्दर्भ में माँ को परिभाषित किया है।

रानी माँ का चबूतरा मन्नू भंडारी की बहुचर्चित कहानी है। दो बच्चों की माँ गुलाबी इस कहानी का मुख्य पात्र है। गली की सभी औरतें पूर्णिमा के दिन रानी माँ के चबूतरे पर दीया जलाने के लिए जाती हैं। केवल एक स्त्री उस गली में ऐसी है जो नहीं जाती उसका नाम है गुलाबी। शराबी पति को उसने घर से निकाल दिया। दो छोटे बच्चों के साथ अकेली रहती है वह अपनी कोठरी में। जब काम के लिए जाती है तो दोनों को कोठरी में बंद करके जाती है। गली में सब लोग मानते हैं कि वह एक गिरी हुई औरत है। छः साल की बेटी को वह स्कूल भेजती नहीं। हर वक्त गली के लोगों के साथ झगड़ा करती हुई एक अजनबी जिंदगी जी रही है वह। गली में सरकार द्वारा खोले गए शिशु सुरक्षा केन्द्र में बच्चों

को भेजने का सुझाव जब पड़ोसी लोग देते हैं तब गुलाबी उनको गालियाँ देती है। दिन भर नौकरी करने के बाद जब रात को भी गुलाबी कहीं जाने लगी तो लोगों ने कहा कि गुलाबी का कुछ न कुछ गुप्त कार्यवाही है। लेकिन गुलाबी से पूछने पर पीछे जाकर देखने का किसी में साहस नहीं था। कहानी के अंत में रास्ते पर बेहोश पड़ी गुलाबी को कुछ लोग उठाकर लाये तो उसकी अंगिया में से एक कागज़ की पुड़िया मिली। उसमें शिशु सुरक्षा केन्द्र की पाँच रुपये की रसीद थी।

विभिन्न साहित्यिक रचनाओं में वर्णित मातृत्व की छवियों की तुलना में गुलाबी भिन्न चरित्र की मालूम पड़ती है। गुलाबी का चरित्र केवल व्यक्तिगत आत्म निर्भरता का उदाहरण नहीं है। गुलाबी उन सभी स्त्रियों का प्रतीक है जो अपनी जिंदगी की कटुता को भविष्य के लिए भोग रही है। गुलाबी एक ऐसी माँ है जिन्होंने अपने स्वाभिमान को समाज के स्वाभिमान में बदल डाला हो। गुलाबी आत्मनिर्भर माँ है। समाज जिन तत्वों को सही या गलत माते हैं गुलाबी के लिए ऐसा होना ज़रूरी नहीं है। क्योंकि गुलाबी का अपना सही और गलत है। रात को बाहर जाने वाली गुलाबी को समाज गिरी हुई मानता है। लेकिन वास्तव में गुलाबी बच्चे को शिशु सुरक्षा केन्द्र में भेजने के लिए जो पाँच रुपये चाहिए थे उसके लिए रात में भी कहीं नौकरी के लिए जाती है। गुलाबी कभी भी यह सोचती नहीं है कि गली के लोगों की इस पर क्या प्रतिक्रिया है। अर्थात् यहाँ गुलाबी एक ऐसी माँ है जिन्होंने एक सौंदर्यशास्त्र का निर्माण अपने लिए किया है। वह सौंदर्य शास्त्र सक्रिय समाज बोध को संबोधित करने का एकनिष्ठ प्रयास है।

गुलाबी के चरित्र को संबोधित करते हुए भारतीय आम स्त्री जीवन पर नजर डाले तो निम्नलिखित निष्कर्षों पर हम पहुँच सकते हैं –

- भारतीय सन्दर्भ में माँ एक भाषा है, जिसकी अपनी संरचना होती है।
- माँ की भाषा चेतना की भाषा है।
- हर एक माँ एक इतिहास को रचती है, जिसमें कहीं भी उसका अपना नाम उल्लिखित नहीं हो।
- माँ एक संस्कृति है, प्रकृति है। जिसको मापने के लिए किसी भी सामाजिक नियम समर्थ नहीं है।
- वाणी के माधुर्य से सम्बन्धित सभी नियमों को माँ अपने लिए तोड़ लेती है। हर माँ अपने लिए वाणी का संचालन करती है।
- माँ केवल एक जैविक सम्बन्ध नहीं है एक भावात्मक सम्बन्ध भी है।
- माँ घर की संचालिका मात्र नहीं है, वह सामाजिकता के निर्माण का कारक भी है।

गुलाबी के माध्यम से मन्नू भंडारी ने एक ऐसी स्त्री ज़िंदगी को हमारे सामने प्रस्तुत की है जिसकी चर्चा इतिहास ने भी कहीं छोड़ दी हो। गुलाबी

सचमुच गुलाब की–सी पवित्रता से युक्त नारी है। लेकिन पितृसत्तात्मक भारतीय समाज गुलाब को स्वीकारने के लिए तैयार नहीं है। पति से अलग होकर निर्भय जीवन बिताने का साहस जब भारतीय नारी दिखाती है तब हम उसको चुड़ैल मानते हैं। मन्नू भंडारी की गुलाबी सहानुभूति नहीं चाहती है। केवल मनुष्य होकर समाज में जीने का अधिकार चाहती है। जिसको समझने का साहस आज भी भारतीय समाज को नहीं है।

डॉ. ए. एस. सुमेष
सहायक आचार्य एवं अध्यक्ष – हिंदी विभाग,
एम. इ. एस. महाविद्यालय,
जिला– इडुक्की, केरल – ६८५५५३

●

11

ब्लॉग कविताओं में माँ

"ऊपर जिसका अंत नहीं उसे आसमान कहते हैं
इस जहाँ में जिसका अंत नहीं उसे माँ कहते हैं"

'माँ' शब्द दुनिया का सबसे छोटा शब्द है, मात्र एक अक्षर का। परन्तु इस छोटे से शब्द की व्यापकता इतनी विशाल है कि समूची सृष्टि ही इसमें समायी हुई लगती है। कई भाषाओं में माँ के लिए प्रयुक्त शब्द 'म' से होता है और 'म' से आरम्भ होने वाले शब्दों में मिठास ही होती है इसलिए माँ बहुत मीठी होती है ... , महान होती है, मददगार होती है, मुसीबत की सलाहकार होती है और सबसे बड़ी बात कि वह हमारी मित्र भी होती है। सृष्टि के समस्त प्राणियों का अस्तिम्व माँ से ही है। माँ की व्याख्या करना शब्दों से परे हैं। समकालीन समाज के सशक्त माध्यम ब्लॉग के रचनाकार माँ के बारे में क्या लिखा है, यही का विचार करना अनिवार्य है।

माँ का एक विराट रूप हमें मालूम है; वह है धरती माँ। ऐसी ही कई माएँ ऐसी होती हैं जो केवल अपने जनम देने वाले बच्चों के लिए ही नहीं कई अनाथ अशरण बालक–बालिकाओं की माँ बन जाती हैं। जगीश व्योम जी की रचना माँ की पंक्तियाँ माँ की विराट रूप का परिचायक है –

माँ कबीर की साखी जैसी
तुलसी की चौपाई–सी
माँ मीरा की पदावली–सी
माँ है ललित रुबाई–सी।

माँ के लिए सबसे अहम् है उसकी ममता। जिस माँ में ममता नहीं वह माँ कहलाने के काबिल नहीं। केवल बच्चा पैदा करना माँ की योग्यता नहीं, अपितु ममता होना माँ कहलाने के लिए अनिवार्य है। माँ केवल अपने बच्चे को नहीं, बल्कि हर बच्चे को अपना बच्चा समझती है। यह जरूरी नहीं कि माँ बनने के लिए उसका बच्चा होना जरूरी है। बल्कि ममता होना जरूरी है। मदर टैरेसा की कोई संतान नहीं थी लेकिन वह पूरे संसार के बच्चों की माँ थी। शिशिर मधुकर जी ने अपनी माँ कविता में लिखा है –

"तुमने मुझको समझा है हर पल
मुझको ये विश्वास है पूरा
बिन माँ के लगता है मानो
जीवन का अध्याय अधूरा
यदि ईश्वर की इच्छा से मैं
फिर ये मानव जीवन पाऊँ
केवल इतना माँगूगा उससे
बन के बीज तेरी कोख में आऊँ"

बच्चे को जन्म देना, माँ के लिए दूसरे जीवन की तरह होता है। महीनों गर्भ का भार सहना और फिर घोर पीड़ा से गुजरने के बाद एक स्त्री, माँ बनती है। अपने शिशु को किलकते देखकर माँ का रोम–रोम खुशी से भर उठता है उसे दुनिया भर की खुशी प्रसन्न मुद्रा में अपने शिशु को किलकारी भरते देखकर मिल जाती है – रामनिवास पन्थ जी ने इस प्रकार लिखा –

शिशु किलके
लोट–पोट होती माँ
अभ्यन्तर में

बच्चा जब थोड़ा बड़ा हो जाता है और पाँव–पाँव चलना शुरू करता है तो प्रायः माएँ उसके पैरों में नन्हें–नन्हें घुँघरू बाजी पैंजनियाँ पैरों में बाँध देती हैं जिनके नूपुर बजते हैं तो बच्चा जिज्ञासावश चलने की कोशिश करता है और माँ इस दृश्य को देख अभिभूत होती रहती है। संतोष कुमार सिंह जी ने यों लिखा –

पैंजनी बजी
उमड़ पड़ा सिन्धु
ममता भरा

अपने बच्चे के मन में क्या है, वह क्या विचार कर रही है इसका सही ज्ञान माँ को ही सबसे पहले मिलता है। यह माँ के व्यक्तित्व की खूबी है जो उसके व्यक्तित्व की विराटता का परिचायक भी है। ईप्सा जी ने अपनी 'माँ' नामक रचना में लिखा है –

जान लेती है
बच्चे के मन को माँ
बिना बोले ही
कुछ छुपाना उनसे
हमरे बस की बात नहीं

इस अनोखे रिश्ते के बारे में माँ – अनूठा एहसास नामक रचना में राधा रातोड़ जी ने लिखा है –

ये रिश्ता बिल्कुल खास है,
यह है स्नेह का निर्झर झरना,
फिर भी बुझती नहीं प्यास है,
नहीं जी सकता कोई उस बिन,
वो तो आती जाती साँस है।

माँ अपने बच्चे को पाल–पोस कर बड़ा होते पल–पल देखती रहती है और खुश होती रहती है। परन्तु जैसे ही बच्चे बड़े होते हैं, वे अपनी माँ से धीरे–धीरे अलग होने लगते हैं। महेश चन्द्र सोनी ने माँ से दूर जा रहे बच्चों का चित्रण यों किया है –

उड़ना सीखे
बच्चे चिड़िया के
नीड़ न लौटे
बनाते हैं वे
अपने–अपने नीड़

जिस दुनिया में हम आज रह रहे हैं वो पहले की दुनिया से बहुत अलग है, हमारे जीने, काम करने और मनोरंजन करने के तरीकों में जबरदस्त बदलाव आया है। आज माँ भी बदल रही है। जब बच्चा होता है तो घर पर खुशियाँ मनाई जाती हैं लेकिन पैदा होते ही माँ की गोद उसे नसीब नहीं होती व उसे आया के हाथों सौंप दिया जाता है। यहाँ तक कि कुछ बच्चों को माँ का दूध भी नसीब नहीं होता, क्योंकि औरतें अपनी 'फिगर' का बच्चों से ज्यादा ख्याल रखना चाहती हैं। जबकि माँ का दूध ममता को जन्म देता है व बच्चे की सेहत के लिए संजीवनी माना जाता है। यहाँ तक कि कुछ औरतें बच्चे को अपनी गोद तक नसीब नहीं करवाती व जन्म देते ही उसे 'पालने' में या 'आया' की गोद में डाल देती हैं। इस प्रकार 'आया' ही बच्चे की माँ बन जाती है। बाद में वही बच्चा हॉस्टल में डाल दिया जाता है तथा उसका बचपन माता–पिता के साथ नहीं बल्कि हॉस्टल में दोस्तों के साथ बीतता है। परिणामस्वरूप उस बच्चे के दिल में माता–पिता के प्रति प्यार पनप नहीं पाता और यही कारण है कि जब वह बड़ा होकर अपने पैरों पर खड़ा हो जाता है तो माता–पिता उसे बोझ लगने लगते हैं वह अपनी पत्नी के साथ अलग रहने लगता है तथा माता–पिता को 'ओल्ड ऐज होम' में भर्ती करवा देता है और यही कुचक्र पीढ़ी–दर–पीढ़ी चलता रहता है।

"जन्म हुआ बच्चे का
घर में सभी हुए संतुष्ट
अगले दिन ही ढूँढ़ने लगा
इक 'आया' को जिन्हें और कोई चारा नहीं हो
मिल गयी एक ऐसी औरत

घर में फिर हुई दीवाली
माँ को कुछ न करना था
बच्चा रोता जो आया आती
बच्चा आया को माँ और
माँ को आया मानने लगा
माँ थी खुश ..... "

माता–पिता और बच्चों के रिश्ते वस्तुतः काफी जटिल हो चुके हैं और बच्चों का लालन– पोषण एक आसान काम नहीं रह गया है। काम–काजी माताएँ प्रायः अपने बच्चों को घर पर छोड़कर काम पर निकल जाती हैं, यह उनकी विवशता होती है। लेकिन जिनको ख़ास कुछ काम नहीं है वे भी ऐसा कर रही हैं। बच्चे को घर पर छोड़ कर जाने वाली माँ को बच्चे खिड़की से देखने का चित्रण पूर्णिमा वर्मा जी ने कैसी की है देखिये –

स्कूल जाती माँ
खिड़की से झाँकती
नन्हीं बिटिया

यहाँ सवाल ज़रूर उठेंगे कि क्या बच्चे को पालना सिर्फ माँ का काम है। माँ का प्यार और ममता जब तक बच्चे को चाहिए तब तक माँ को ही बच्चे को पालना है। बच्चे के मन में क्या है? वह क्या चाहता है? यह सब कुछ एक माँ बच्चे को देखते ही समझ जाती है, यह विशेषता हर माँ में होती है चाहे वह मनुष्य हो या फिर कोई अन्य प्राणी। जब एक और माँ बनती है तब वह सम्पूर्ण हो जाती है। माँ और बच्चे के बीच का रिश्ता दुनिया में अनमोल है। इसके बारे में अरुंधती आमडेकर जी ने लिखा है –

संबंध नहीं है माँ केवल सम्पर्क नहीं है
आदश है जीवन का केवल संबोधन नहीं है
जन्मदात्री है वो मात्र इंसान नहीं है
व्यक्तित्व बनाती है, केवल पहचान नहीं है।

पश्चिम के लोग साधन–सम्पन्न और आत्म–निर्भर है व संयुक्त परिवारों की अपेक्षा छोटे परिवारों को सम्पन्न करते हैं। उनके माँ–बाप उनके साथ नहीं रहते थे यथा 'मदर डे' व 'फादर'ज़ डे' जैसे दिन उन्हें अपने माता–पिता की स्मृति करवा देते हैं और इसी बहाने वे सम्पर्क में रहते हैं। हमारे यहाँ संयुक्त परिवार थे तो ऐसे दिनों की हमें भला क्या आवश्यकता होती? हाँ, आज के बदलते परिवेश जिसमें हम अपना लगभग सबकुछ विस्मृत कर चुके हैं तो हम भी 'मदर डे', 'फादर डे' इत्यादि वाले ढर्रे पर चलने को बाध्य हैं।

आज हमारे समाज का चलन और परिवेश दोनों ही तेजी से बदल रहे हैं, हर कोई स्वयं को अधिक कामकाजी और व्यस्त दिखाने की होड़ में लगा हुआ

है ... या फिर यह कहा जाए कि पहले की अपेक्षा लोग अपनों की जगह अपने आपको अधिक महत्त्व देने लगे हैं, मतलब मेरी पढ़ाई ... मेरा कैरिअर ... मेरी लाइफ ... मेरी प्राइवेसी ... आदि तो गलत नहीं होगा, और इसमें कोई खामी भी नहीं है, विकास की ओर अग्रसर होना एक अच्छी आदत है परन्तु इन सभी बातों ने जिस पर सबसे अधिक प्रहार किया है वह है ... रिश्तों की अहमियत।

कुछ बरस पहले तक 'मदर'ज़ डे' भारतीयों के लिए विशेष अर्थ नहीं रखता था चूँकि हमारे माता–पिता तो अधिकतर हमारे साथ ही रहा करते थे लेकिन नई सदी में सब कुछ जैसे परिवर्तित होता जा रहा है – हमारी सभ्यता, संस्कृति, मर्यादाएँ और परम्पराएँ सब हमसे दूर हो रहे हैं। जीवन के अन्य क्षेत्रों के समान भूमण्डलीकरण का प्रभाव रिश्तों में भी पड़ना शुरू किया है, इसका मिसाल है इस प्रकार के दिनों का आचरण। रिश्तों की अस्मिता को आधुनिकता की बलि चढ़ने से बचाना होगा और यह काम इतना मुश्किल नहीं है यदि हम अपने रिश्तों को प्रेम, विश्वास और ईमानदारी के साथ निभाएँ तो हमारे रिश्तों की डोर टूटने से बच जाएगी और हमारा जीवन खुशहाल बना रहेगा।

"दिल में रहने वाले दिल से नहीं निकलते,
बदले हजार मौसम, रिश्ते नहीं बदलते,
बदले हजार मौसम, रिश्ते नहीं बदलते ..."

माँ की भूमिका तो सदैव ही महत्त्वपूर्ण रही है परन्तु अंधाधुंध विकास एवं ग्लोबलाईजेशन की प्रक्रिया के बाद समाज का ढाँचा बदला है। उसके बाद परिवारों का, बिखरना, परिवेश में परिवर्तन व मनुष्य के आत्मकेन्द्रित होने से मानव के जीवन में माँ की भूमिका निःसंदेह पहले से बढ़ी है –

माँ संवेदना है, भावना है, अहसास है
माँ संवेदना है, भावना है, अहसास है
माँ अनुष्ठान है, साधना है, जीवन का हवन है
माँ ज़िंदगी के मुहल्ले में आत्मा का भवन है।

ओम व्यास की इन्हीं पंक्तियों में 'माँ' का संपूर्ण चित्र अंकित है।

डॉ. रंजित. एम.
सहायक आचार्य,
एम. ई. एस. कॉलेज, पोस्ट–वेम्बल्लूर

●

12

मातृत्व का सार्वभौमिक रूप : रतन की माँ

नाटक और रंगमंच में अभिनेता दर्शकों के सामने सीधे ही अभिनय प्रस्तुत करता है। इसमें फिल्मों की तरह रीटेक मुमकिन नहीं है। अतः अभिनेता को चतुरविधा अभिनय प्रक्रिया का सही और सक्त पालन करना होगा। चतुरिविधा में आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्त्विक अभिनय प्रक्रियाओं में से सात्त्विक अभिनय प्रक्रिया की प्रस्तुति सबसे कठिन होती है। इनमें अन्य प्रक्रियाओं के जैसे बाह्य साधनों या पदार्थों का प्रभाव नहीं होता। सात्त्विक अभिनय को पूर्णता में लाने के लिए स्वयं अभिनेता को उस पात्र की मानसिकता में रम जाना पड़ता है। जब अभिनेता उस पात्र के साथ तादात्म्य प्राप्त करता है तो मंच पर 'पात्र' का पूर्ण रूप जीवित होता है। इसी तरह ही एक स्त्री को माँ का किरदार अदा करने में बहुत लगन, श्रद्धा और सहनशीलता से प्रयत्न करना पड़ता है। तभी वह सही रूप में माँ बनती है। मातृत्व का संबंध इसी सात्त्विक अभिनय से जुड़ा हुआ है। जब यह सात्त्विक अभिनय अपने शिखर पर पहुँचता है तो 'पात्र' सभी बंधनों को तोड़कर, लांगकर प्रेक्षकों के दिलोदिमाग में अपना प्रभाव छोड़ता है। इससे उत्पन्न शक्ति देश, काल और वातावरण को पार कर एक सार्वभौमिक रूप धारण करती है। इसीलिए स्त्री शक्ति है और माँ की ममता कालातीत है।

प्रस्तुत नाटक 'जिस लाहौर नइ देख्याओ जम्याइनइ' का 'माँ' पात्र सार्वभौमिक है। हिंदी के प्रसिद्ध साहित्यकार असग़र वजाहत ने इस नाटक की रचना साम्प्रदायिकता के विरोध में किया था। उन्होंने सन् १९४७ के भारत–पाकिस्तान विभाजन के पृष्ठभूमि को इसका आधार बनाया है। विभाजन के समय देश में फैले साम्प्रदायिक तनाव और उससे पीड़ित साधारण जन की मानसिक एवं सामाजिक स्थिति का चित्रण बहुत बारीकी से इसमें किया है। इन तनावपूर्ण स्थितियों में किस तरह 'माँ' की ममता देश, धर्म, जाति आदि बंधनों एवं सीमाओं को तोड़ कर धार्मिक एकता और मुहब्बत का अनोखा मिसाल खड़ा करती है। यह नाटक द्वन्द्व है, घृणा व सद्भाव के बीच, मानवता व अमानवीयता के बीच, कुटिल राजनीति व मानवीय सम्बन्धों के बीच। प्रस्तुत नाटक दर्शाता है कि इन सब द्वन्द्वों के बीच मानवता सबसे ऊपर है। धर्म व्यक्ति का व्यक्तिगत मामला है। उसकी मर्जी वह

इसका कैसे पालन करता है। मगर एक दूसरे के धर्म में दखल देना सरासर गलती है। यह अफसोस की बात है कि भारत की वर्तमान स्थिति कुछ कम नहीं है।

नाटक का मुख्य पात्र है – रतन की अम्माँ (उम्र ६५–७० साल)। नाटक में सबसे चुनौतीपूर्ण किरदार 'रतन की माँ' का है, जिसके दिल में सारी दुनिया के प्रति करुणा है, प्रेम है, मगर जो बुरी ताकतों से निडर व बेपरवाह होकर अपने रास्ते में चलने का जज्बा भी रखती है। इस बूढ़ी माँ की मातृत्व पक्ष या सात्त्विक अभिनय ने धर्म, जाति, भाषा, देश, काल, साम्प्रदायिकता आदि सभी रुकावटों को या अड़चनों को भेदकर मातृत्व का सार्वभौमिक रूप प्रस्तुत किया है।

प्रस्तुत नाटक के अन्य पात्र हैं – सिकन्दर मिर्ज़ा, हमीदा बेगम (पत्नी), तनबीर बेगम (छोटी लड़की), जावेद (जवान लड़का), मौलवी इकरामनुद्दीन आदि। देश–विभाजन के समय लखनऊ से लाहौर आए सिकन्दर मिर्ज़ा और उनके परिवार को रहने के लिए रतन की हवेली एलॉट होती है। उस हवेली में रतन की माँ रहती हैं। जो अपने पुरखों की जायदाद और मिट्टी को छोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं। वह यहाँ अपने खोए हुए पुत्र 'रतन' का इंजतार में हैं।

नाटक के आरम्भ में सिकन्दर मिर्ज़ा और उनके परिवार को 'रतन की माँ' एक समस्या बनती हैं। लेकिन धीरे–धीरे उनमें अपनापन की भावना सीमाओं को लाँघ कर बढ़ने लगती है। रतन की माँ और सिकन्दर मिर्ज़ा के परिवार संबंध बावरचीखाना से शुरू होता है। यहाँ एक देखने वाली बात यह है कि घर का बावरचीखाना का संबंध औरतों से होती है। दोनों माताएँ या मातृत्व इस साम्प्रदायिक वातावरण में सभी बंधनों को तोड़कर धीरे–धीरे नजदीक आती हैं जिससे दोनों परिवार एक होते हैं। फिर रतन की माँ, सिकन्दर मिर्ज़ा के परिवार के लिए दादी, माँ जी और सिकन्दर मिर्ज़ा का परिवार रतन की माँ के लिए बेटा, पोती, बेटी आदि पारिवारिक रिश्तों में परिवर्तित होता है।

इतना ही नहीं 'रतन की माँ' लाहौर के उस मुहल्ले में सब लोगों के लिए माँ समान हैं। धर्म और जाति से परे लोग रतन की माँ को अपनी सगी माँ समझते थे और रतन की माँ के लिए मुहल्ले के सभी लोग किसी न किसी तरह अपने ही थे।

नाटक में अनोखे ऐसे घटनाएँ हैं जो यह संकेत देते हैं कि मातृत्व भाव के सामने सब कुछ फीका पड़ जाता है। 'रतन की माँ' के मातृत्व भाव के सामने सिकंदर मिर्ज़ा अपने को समर्पित करता है। उसे रतन की माँ को उस हवेली से निकालने का इरादा छोड़ना पड़ता है।

सिंकदर मिर्ज़ा – बेगम एक काँटा है जो निकल गया तो जिंदगी भर के लिए आराम ही आराम है।[१]

हमीदा बेगम – हाय मेरे अल्लाह, इतना बड़ा गुनाह ... जब हम किसी को जिंदगी दे नहीं सकते तो हमें छीनने का क्या हक़ है?[२]

रतन की माँ सहृदय की भावना का चित्रण नाटककार ने यहाँ किया है। वह उस गली या मुहल्ले में हर कहीं हैं –

सिंकदर मिर्ज़ा – रहते एक ही घर में हैं लेकिन आपसे मुलाकात इस तरह होती है जैसे अलग–अलग मोहल्ला में रहते हो।[३]

हमीदा बेगम – माई घर में रहती कहाँ हैं। तड़के रावी में नहाने चली जाती हैं। उसके बाद कभी सुबह अकील साहब के यहाँ बड़िया डाल रही हैं, तो कभी नफीसा को अस्पताल ले जा रही हैं, तो कभी बेगम आफताब के लड़के की तीमारदारी कर रही हैं तो शाम को सकीना को आचार–डालना सिखा रही हैं ... रात में दस बजे लौटती हैं। हम लोगों से मुलाकात हो तो कैसे हो ...[४]

यहाँ माँ की ममता ने हीं रतन की माँ को इन सब कार्य करने के लिए ऊर्जा प्रधान करती है। इसी ममता ने दीवाली के समय सिकंदर मिर्ज़ा का परिवार एवं पास–पड़ोस के लोगधर्म एवं जाति भेद के बिना सब एक होकर दीप जलाकर तथा मिठाई बाँट कर दिवाली मनाते हैं। माँ की ममता ने ही मुहल्ले के लोगों को गुण्डों से लड़ने की प्रेरणा दी। जब कुछ गुण्डे रतन की माँ को लाहौर छोड़ने की बात करती है तो मुहल्ले के सब जन एक साथ मिलकर उसे रोकते हैं। नासिर के संवादों में माँ के प्रति उनका प्रेम अभिव्यक्ति है।

नासिर : माई लाहौर छोड़कर मत जाओ ... तुम्हें लाहौर कहीं और नहीं मिलेगा ... उसी तरह जैसे मुझे अम्बाला कहीं और नहीं मिला, हिमायद भाई को लखनऊ कहीं नहीं मिला ... जिन्दो को मुर्दा न बनाओं ...[५]

नासिर : तुम हमारी माँ हो ... हमसे जो कहोगी करेंगे ... लेकिन ये मत कहो कि तुम हमारी माँ नहीं रहना चाहती ...[६]

नासिर : तुम अगर यहाँ न रहीं तो हम सब नंगे हो जायेंगे माई ... नंगा आदमी होता है, न हिंदू होता है और न मुसलमान ...[७]

इन संवादों में मुहल्लेवालों को रतन की माँ के प्रति जो स्नेह, प्यार एवं आदर हमें देखने को मिलता है और अंत में जब रतन की माँ की मृत्यु होती है तब मुहल्ले वाले उसे हिंदू रिवाजों में स्वर्गलोक में भेज देते हैं। मौलाना के शब्दों में –

मौलाना : आज वो औरत मर चुकी है जिसके तुम सब पर एहसानात हैं, तुम सबको उसे अपना बच्चा समझा था, आज जबकि वह मौत के आगोश में सो चुकी है, तुम उसे अपनी माँ मानने से इनकार कर दोगे ... और अगर वो तुम्हारी माँ है तो उसका मज़हब था ... उसका एहतेराम करना तुम्हारा फ़र्ज़ है।[८]

इस तरह नाटककार असगर वजाहत ने प्रस्तुत नाटक में रतन की माँ का चित्रण करके न केवल साम्प्रदायिक गुण्डों को मुँहतोड़ जवाब दिया है साथ ही वर्तमान

पीढ़ी को यह संदेश दिया है कि 'माँ' भारत की हो या अन्य किसी देश की हो, बस उसके लिए एक ही भाषा है और एक ही भाव होता है।

संदर्भ ग्रंथ :

१. असग़र वजाहज, 'जिस लाहौर नइदेख्या ओ जम्याइनइ', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, २००६, पृ. ३५
२. वही
३. वही, पृ. ५२
४. वही
५. वही, पृ. ६६
६. वही
७. वही
८. वही, पृ. ७६

डॉ. टी. ए. आनंद
सहायक आचार्य – हिंदी विभाग,
सरकारी आर्ट्स व साईंस कॉलेज – कोषिक्कोड

●

13

समकालीन हिंदी उपन्यास में पाश्चात्य माँ

नारी और संस्कृति का निकट का सम्बन्ध है। विशेषकर नारी के 'माँ' रूप का। 'नारी' शब्द का उच्चारण करते ही हमारे मन में यह बहुप्रचलित उक्ति स्मरण हो जाती है – "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता" अर्थात् जहाँ नारियों की पूजा होती है, वहाँ देवताओं का वास होता है। नारी के माँ रूप को केवल भारतीय सन्दर्भ में नहीं पाश्चात्य सन्दर्भ में आदर और संवेदना के साथ चित्रित किया गया है। विश्व साहित्य की प्रसिद्ध कृति गोर्की के 'मदर' में माँ का उदात्त रूप द्रष्टव्य है।

अंग्रेजी साहित्यकार रुडयार्ड किपलिंग ने कहा है 'God could not be every where, and therefore he made mothers' याने कि ईश्वर सभी जगह नहीं रह सकता था, इसीलिए उसने माँ को बनाया।

Rudyard Kipling की कविता – 'Mother O' Mine' की पंक्तियों पर गौर करें –

If I were hanged on the highest hill,
Mother O' mine, O Mother O' mine !
I know whose love would follow me still,
Mother O' mine, O Mother O' mine !
If I were drowned in the deepest sea,
Mother O' mine, O Mother O' mine !
I know whose tears would come down to me,
Mother O' mine, O Mother O' mine !
If I were damned of body and soul,
I Know whose prayers would make me whole,
Mother O' mine, O Mother O' mine !

समकालीन हिन्दी उपन्यास के कुछ चर्चित उपन्यासों में पाश्चात्य माँ को यहाँ अध्ययन के लिए चुन लिया है। योगेश कुमार के 'टूटते बिखरते लोग' की मिसेज़ टकर अमरीकी हैं। वह मिस्टर टकर की पत्नी हैं। मिस्टर टकर अमरीका

के अत्यधिक ख्याति प्राप्त एडवरटाइजिंग कम्पनी – मैसर्स निकलसन एण्ड निकलसन में सीनियर अकाउंट एक्सीक्यूटिव हैं। मिसेज़ टकर मेथोडिस्ट चर्च में वीमेन वेलफेयर सोसाइटी की प्रेसीडेंट हैं। अपने पति की तरक्की और कम्पनी का ख्याल रखते हुए वह अपनी नौ साल की बच्ची को बोर्डिंग स्कूल भेज देती हैं। अपने साथ रखने की इच्छुक होकर भी उसे अपने बच्चे से अलग होना पड़ता है। क्योंकि उसके समाज में ऐसी मान्यता थी कि पत्नी के पास फुर्सत हो, तभी वह अपने पति की तरक्की का कारण बन सकती है। पति की तरक्की और सफलता के लिए अपने ममत्व को दबाकर बलिदान देने वाली 'माँ' का यह स्वरूप भारतीय सन्दर्भ में शायद पचाऊ न हो।

प्रभा खेतान के 'आओ पेपे घर चलें' की हेल्गा बेरी इजराइल की रहने वाली है। द्वितीय विश्वयुद्ध में उसके पिता और भाई मारे गए। अस्पताल में डॉक्टर बेरी से हेल्गा की मुलाकात होती है और दोनों घर बसा लेते हैं। हेल्गा के चार बच्चे थे – दो लड़के, दो लड़कियाँ। हेल्गा पर विश्वयुद्ध का ऐसा प्रभाव पड़ा कि युद्ध ने उसके भावनात्मक कोमल तंतुओं को नष्ट कर दिया। हेल्गा सभी संबंधों के प्रति तटस्थ रहती है। उसे अपने परिवार और बच्चों से कोई लगाव या प्रेम नहीं था। हेल्गा अपने देश इजराइल जाना चाहती है। उसके अनुसार औरत महज भूमिकाओं का एक सिलसिला है और वह अपने देश के लिए कुछ कर एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाना चाहती है। वह अपनी जमा पूँजी से अपने देश के बच्चों का हित करना चाहती है। अपने बच्चों की उसे परवाह नहीं है। उन्हें गोद में उठाना भी उसे अच्छा नहीं लगता। बच्चों का रोना बिलकना उसे बकवास की भावुकता लगती है। उसका तर्क यह है कि वह अपने बाप के बिना, अपने भाई के बिना, अपने किसी खून के बिना जिंदा है। तब उसके बच्चे भी अपने अपने पैरों पर खड़े हो जायेंगे। वह कहती है – "मुझे मेरे बच्चों से प्यार नहीं। वे मरे, जीयें या कहीं भी जाएँ।" हेल्गा चाहती तो गृहस्थी में व्यस्त होकर अपने दुःख भुला सकती थी। पर वह दुखों को भूलना नहीं चाहती। वह नहीं चाहती कि उसके अन्दर की आग ठंडी पड़ जाए।

पाश्चात्य सन्दर्भ में स्त्री अपनी इच्छा एवं अतिच्छाओं का खुला प्रदर्शन कर रही है। वह अपने पति, अपनी इच्छाओं, अपनी अस्मिता के प्रति जागरुक है। 'आओ पेपे घर चले' की हेल्गा अपने बच्चों की माँ होने से कतराती तो है पर अपने पूरे देश के बच्चों के हित की चिंता उसे सताती है। विश्वयुद्ध के दौरान हुए मानसिक आघात से ही उसके 'माँ' रूप में यह बदलाव होता है।

चाहे स्त्री हो या पुरुष, भारतीय हो या विदेशी, सभी में संतान प्राप्ति की इच्छा विशेष बलवती होती है। संतान प्राप्ति स्त्री के स्त्रीत्व की सार्थकता है और पुरुष के पुरुषत्व की।

मृदुला गर्ग के 'कठगुलाब' की मारियान अमरीकी है। वह 'रिलीफ फॉर एब्यूजड वूमेन' 'रा' में काम करती हैं। मारियान को बच्चों की चाहत शुरू से थी। उसके पहले पति इर्विंग के कहने पर वह पहला गर्भ एबॉर्शन करा लेती है। इर्विंग बच्चा पैदा करने के खिलाफ था। वह मारियान को समझाता है कि बच्चा पैदा करके कुछ हासिल नहीं होगा। आदिम समाज, स्त्री को शिशु की रचना में व्यस्त रखकर उसे पुरुष की सुरक्षा पर निर्भर बनाना चाहता है, इसीलिए यह ढकोसला फैलाया था कि औरत को बच्चे की सृष्टि करके परिपूर्णता मिल जाती है। उसका कहना था – "एक महान साहित्यिक रचना के सामने, बच्चा क्या चीज़ है; एकदम तुच्छ, नगण्य, डिस्पेंसबल।" मारियान के गर्भ धारण करने पर इर्विंग अपने तर्कों से मारियान को एबॉर्शन के लिए राज़ी कर लेता है। इर्विंग की बातों में आकर अपना बच्चा पैदा करने की चाहत मारियान दमन करती है। जब भी मन में चाहत उठती वह शोध के भारी–भरकम किताबों के बीच अपनी चाहत दबा देती।

इर्विंग मारियान के शोध सामग्री से 'वुमन ऑफ़ द एर्थ' उपन्यास की रचना करता है। उपन्यास के छपने तक वह मारियान से कहता है – "यह उपन्यास हमारा मानस पुत्र है। तुम्हारे और हमारे विश्वास भरे अनुराग से निर्मित, हमारी साँझी चेतना में जन्म लेने वाला, एक अद्वितीय रचना– शिशु।" लेकिन उपन्यास इर्विंग सिर्फ अपने नाम से छपवाता है और मारियान से तर्क करता है – "शिशु बाप के नाम से ही जाना जाता है।" मारियान पर विश्वासघात का कहर टूट पड़ता है।

गैरी से दूसरी शादी के बाद पहले पाँच सालों में वह तीन बार गर्भवती हुई पर तीनों बार गर्भपात हो गया। फिर मारियान बच्चा गोद लेने की ठानती है पर गैरी उसके आग्रह–अनुरोध को ठुकरा देता है। अपनी माँ बनने की इच्छा को वह स्मिता के सामने प्रकट करती है – "हाँ, मैं एकदम पारम्परिक, जाहिल, गँवार, प्राकृत औरत हूँ। औरत हूँ मैं। औरत हूँ। मैं पालना पोसना, सहेजना सँवारना चाहती हूँ। मैं सर्जक होना चाहती हूँ। मुझे खुद का अपना बच्चा चाहिए"। मैं उसे अपने आँगन में खेलता–बढ़ता देखना चाहती हूँ। ... मैं उसका पहला शब्द सुनना चाहती हूँ। पहला कदम सँभालना चाहती हूँ। उसे आत्मनिर्भर बनाने में इन्वेस्ट करना चाहती हूँ। मैं पालना पोसना, सहेजना सँवारना चाहती हूँ। मैं सर्जक होना चाहती हूँ।" पश्चिम में अकेली औरत को बच्चा गोद लेने की इजाज़त कानून नहीं देता। मारियान अपना बच्चा गोद न ले सकने की मजबूरी पर रोती है "यही तो विडम्बना है। तलाक के पहले चाहे जितना पैदा करो, बाद में नहीं कर सकते।" माँ बनने की चाहत को उसे फिर दबानी पड़ती है।

मारियान सच को स्वीकार कर लेती है और वह सर्जक होने का दूसरा मार्ग अपनाती है। वह अपनी पीड़ा बच्चों में नहीं शब्दों में बाँटना चाहती है। स्मिता की दर्दभरी कहानी के कथ्य को लेकर 'द फीमेल जेस्ट' तथा अन्य चार उपन्यासों

की रचना करके मारियान हाशिए से ऊपर उठ जाती है। उसका आत्मविश्वास पुनः जाग उठता है। अपने माँ बनने की चाहत की तीव्रता को वह साहित्यिक रूप देकर पूर्ण करती है। मृदुला जी ने मारियान के जरिए एक संवेदनशील सचेत नारी की प्रतिमा स्थापित की है जो तूफानों से टकराने की हिम्मत रखती है, समस्याओं से जूझने की ताकत है, प्रतिकूल स्थिति में मुकाबला करने की शक्ति है।

राजी सेठ के 'निष्कवच' की मार्था अमरीकन है। वह पार्टनरशिप में फोटो स्टूडियो चलाती है। मार्था भारतीय बासू से विवाह करती है। मार्था पाश्चात्य नारी है जो अपनी स्वतंत्रता और अधिकारों के प्रति जागरुक है। गर्भवती होने पर वह अपने पति को बताये बिना गर्भपात करा लेती है। उसके पति को उसका यह निर्णय असंगत, एकांगी और गोपनीय लगता है। मार्था से जवाब तलब करने पर वह उससे कहती है – "यह तुम क्या बक रहे हो? यह मेरी देह है। मेरा निजी मसला है। मेरा ही परमाधिकार है।"

पूरे पुरुष जाति के प्रति उसमें आक्रोश है। मार्था ने अमिनोसेंटेसिस करके यह पता लगाया था कि गर्भ का शिशु लड़का है। यह जानने पर उसके लिए फैसला करना आसान हो गया। वह पुरुष वर्ग के प्रति विद्वेष से कहती है – "भला मैं क्यों उनकी नस्ल को बढ़ाना चाहूँगी – दीज़ ब्रूटस। इन्होंने सदियों से हमें कुचल कर रखा है।" मार्था को अपनी निजी स्वतंत्रता का पूरा ख्याल था। मार्था 'माँ' बनने की चाहत का गला घोट देती है। पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था पर वह प्रहार करती है। उसका पुरुष विरोध ही उससे गर्भपात कराता है। यदि गर्भ का शिशु लड़का न होता तो वह उसे निश्चय ही स्वीकार कर लेती।

भारतीय और पाश्चातय सन्दर्भ में माँ के महत्त्व पर 'निष्कवच' के बासु और रोबर्ट्स चर्चा करते हैं। बासू के लिए माँ की संकल्पना भारतीय दृष्टि से महान है। उसके अनुसार संसार की ऐसी कोई किताब नहीं होगी जहाँ माँ दरज न हुई हो। क्योंकि माँ व्यक्ति नहीं, सनातनता है। माँ सबको प्यारी होती है। इसी उपन्यास के रोबर्ट्स की विचारधारा इससे पूर्णता भिन्न है। रोबर्ट्स अमरीकी है। माँ की संकल्पना का भारतीय स्वरूप उसे खटकता है क्योंकि पाश्चात्य जीवन में मानवीय रिश्तों का कोई स्थायी मूल्य नहीं। वह यह नहीं मानता कि व्यक्ति के जीवन में सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका माँ की है। वह कहता है – "तुम इंडियन्स हर बात को कुछ ज्यादा ही रोमांटिसाइज़ करते हो। ठीक है, माँ बचपन में गाइडिंग स्टार होती है पर देखा नहीं, हमारे लोग कितनी जल्दी वयस्क हो जाते हैं। माँ की गोद से छूट भागने को उतावले रहते हैं।" भारतीय मूल्यों में उसकी कोई आस्था नहीं है।

उषा प्रियंवदा के 'अंतर्वंशी' की अंजुमन बांग्लादेश की है। अंजुमन अमरीका के अपने पति असलम के साथ रहती थी। अंजी साहसी और धैर्यशील

नारी है। उसके पति असलम डॉक्टर हैं। अपने अस्पताल की किसी नर्स से सम्बन्ध जुड़ने पर अंजी और असलम का तलाक हो जाता है। अपने दो बेटों – मार्क और जैसन का पालन–पोषण वह करती है। अपने देश से दूर प्रतिकूल परिस्थितियों में नया साहस जुटाकर वह स्वावलंबी बनती है।

मानवीय संबंधों में दरार आती जा रही है। सम्बन्धों का विघटन समाज के सभी स्तरों पर द्रष्टव्य है। स्त्री के किसी भूमिका में बँधकर न जीने की चेष्टा से माँ जैसी पवित्र भावना भी संवेदन शून्य हो गयी है। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि पाश्चात्य 'माँ' के संवेदनात्मक रूप का जो चित्रण साहित्य में मिलता है उससे हमें पूरा विश्वास है कि 'माँ' जैसी भावना कभी संबंधों में शिथिल नहीं होती। बाहरी तौर पर गौर करने पर 'आओ पेपे घर चले' की हेल्गा, 'निष्कवच' की मार्था यद्यपि नकारात्मक लगते हैं, लेकिन लेखिका का उद्देश्य नकारात्मक की ओर सूचित करता कदापि नहीं है। संचार क्रांति ने इस युग में स्त्री के सजग एवं जागरुक पक्ष को लेखिकाएँ सामने ला रही है। उन्होंने नारी जीवन से सम्बन्धित रूढ़ियों एवं पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था पर साहित्यिक प्रहार किया है। पाश्चात्य सन्दर्भ में स्त्री 'माँ' की भूमिका निभाते हुए भी स्वावलंबी, कर्मठ और सचेत है। अपनी इच्छाओं अनिच्छाओं का वह खुला प्रदर्शन करती है, अपनी अस्मिता के प्रति जागरुक है। 'पाश्चात्य माँ' सभी आत्मसंघर्षों से गुजरती हुई अपने स्वप्नों, अपने विचारों, अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को संजोती है और उसे चरमोत्कर्ष तक पहुँचाती है।

डॉ. सुप्रिया. पी.
सहायक आचार्य
हिन्दी विभाग,
केन्द्रीय विश्वविद्यालय, पेरिया
केरल

●

14

समकालीन हिंदी कविता में मातृत्व का भाव

समकालीन कविता वैविध्यमय जीवन के प्रति आत्मचेतस की भाषागत संवेदनात्मक प्रतिक्रिया है जिसमें मानव समूह के रागात्मक व जीवन संघर्षी अनुभूतियों का प्रतिफलन पाया जा सकता है।

माँ शब्द में सम्पूर्ण सृष्टि का बोध होता है। माँ के शब्द में वह आत्मीयता एवं मिठास छिपी हुई होती है, जो अन्य किसी शब्द में नहीं होती। माँ नाम है संवेदना, भावना और अहसास का। माँ के आगे सभी रिश्ते बौने पड़ जाते हैं। मातृत्व की छाया में माँ न केवल बच्चों को सहेजती है बल्कि आवश्यकता पड़ने पर उसका सहारा बन जाती है। समाज में माँ के ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है। जिन्होंने अकेले ही अपने बच्चों की ज़िम्मेदारी निभाई। समूची पृथ्वी पर बस यही एक पावन रिश्ता है छलछलाता ममता का सागर। माँ की ममता और करुणाशीलता तो जगजाहिर हैं, लेकिन कई बार पिता की अनकहे शब्द और जता न पाने की आदत से बेटी उनके भावों को ठीक तरह से अभिव्यक्त नहीं कर पाती। माँ की चिंता हर पल अपने संतान के प्रति है, उसमें आए हुए विकास के प्रति है। अंजना बख्शी की **'बिटिया बड़ी हो गयी'** शीर्षक कविता इस प्रकार है –

"देख रही थी, उस रोज़ बेटी को
सजते–सँवरते
शीरो में अपनी
आकृति घंटों निहारते
नयनों में आस का
काजल लगाता।
उसके दुपट्टे को
बार–बार सरकते
और फिर अपनी उलझी
लटों को सुलझाती, हम उम्र लड़कियों के
साथ हँसते–खिलखिलाते।"

माँ का सफर जन्म होने के दिन से शुरू हो जाता है। सभी को यह लगता

है कि एक बेटी ने जन्म लिया है इसका मतलब है उसे अपनी ज़िंदगी में सीढ़ी–दर–सीढ़ी काम करते ही चले जाना है। पहले एक बेटी फिर एक युवती, फिर एक बहू और पत्नी, फिर आता है माँ बनने का सफर। जब माँ रहती है अपने संतान की हर इच्छा और आकांक्षा की पूर्ति करने में वो अपने जीवन को भी न्योछावर कर देती है। लेकिन उस समय उसकी संतान उस ममता की गहराई तक पहुँच नहीं पाती है किन्तु जब उनक अनुपस्थिति में उसकी ममता को मापने की कोशिश में लगी रहती है – कात्यायनी की एक कविता हैं – 'माँ के लिए एक कविता'। इस कविता में इस प्रकार अभिव्यक्त करती हैं कि–

"वहाँ अभी भी सन्नाटा गाता रहता है
उदास, फीकी धुनों पर पराजित आत्माओं का गीत
पीली धूप में, पत्ते झड़ते रहते हैं
जूठे बरतन इन्तजार करते रहते हैं नल के नीचे
शाम होने का
इंतजार आँखों में उतर आता है, उम्मीदों की तरह।"

हिंदी की समकालीन कविता में अशोक वाजपेयी का नाम आदर के साथ लिया जाता है। उनका पहला कविता संग्रह 'शहर अब भी संभावना है' में माँ पर लिखी गयी बेजोड़, लाजवाब कविताएँ हैं। उनके अनुसार 'माँ का दूध अमूल्य है। इस दूध का ऋण हिन्दुस्थान को बेचकर भी नहीं चुकाया जा सकता है। ऐसी माँ किसी मुनि महात्मा से कम पूज्यनीय नहीं हैं। इन पंक्तियों द्वारा माँ के प्रति प्रेम की सार्थक अनुभूति हमें कराती है।

'काँच के टुकड़े' नामक कविता में माँ को एक काँच के समान सुरक्षित बताया है। जैसे सूर्य की करुणा होती है, उसी तरह माँ की करुणा और रोशनी आज सुरक्षित है। यहाँ कवि ने काँच के टुकड़े को प्रतीक के रूप में लिया है। कवि यह कहना चाहता है कि माँ की पीड़ा और करुणा में काँच के टुकड़ों सी क्षण भंगुरता और सूर्य की सनातनता दोनों निहित है। दूसरी कविता 'जीवित जल' संवाद शैली में है। कवि ने अपनी आसन्नप्रसवा माँ और प्रकृति की तुलना की है इस कविता में। माँ को प्रकृति की तरह स्वस्थ, सुन्दर और ताज़गीपूर्ण बताया है। वह धूप से तप्त और झरने के मीठे कलरव के समान हैं। कवि उस भरी–पूरी प्रकृति की पृष्ठभूमि में अपनी ही पूर्णता देखता है और देखकर संतुष्ट होता है। उनका कहना है कि – 'तुम्हारी बाँहें ऋतुओं की तरह युवा हैं'। 'जन्मकथा' नामक कविता में कवि कहता है कि माँ तुम्हारे होठों पर अपने शिशु के कंधे का हल्का–सा प्रभाव महसूस होता है और उँगलियों के पास उसकी छोटी उँगली का स्पर्श है। हे माँ जिस तरह बीज अपने आपसे उगकर बड़ा होता जाता है, उसी तरह तुम स्वयं बार–बार उगती हो। इसलिए माँ मैं तुम्हारी कोख से जन्मा हूँ। उक्त तीनों कविताओं में कवि ने तटस्थ भाव से अपनी आसन्नप्रसवा माँ का गौरव किया है।

'माँ' कविता में कवि ने माँ के मातृप्रेम को व्यक्त किया है। कवि कहता है कि कितनी भी भयावह रात हो, अपमान और भय माँ भले रखती हो, किन्तु अपने बच्चे है। अपने बच्चे की सहारा बन जाती हैं। उसे देखकर अपने जीवन को सार्थक और सम्पूर्ण समझती है।

पंक्तियाँ इस प्रकार हैं –

"और तुम्हारा हृदय
एक प्रार्थना सा उनकी ओर बढ़ने लगता है
भोर होने के बहुत पहले
तुम्हारी दैनिक भोर होती है।"

माँ शब्द जितना आसान और छोटा है उसकी गुणवत्ता, महत्त्वता उतना ही बड़ी और सरल। आप समझोगे तो समझ पाओगे मातृत्व क्या होता है। माँ के बारे में लिखना आसान होता है पर जब माँ को शब्दों में बाँटना हो तो यह मुश्किल हो जाता है। माँ वह स्वरूप होती है जिसमें बच्चा उनसे अपने जन्म से पहले जुड़ा होता है यानी की माँ को भगवान का साथी या उनका रूप भी कहा जा सकता है। माँ अमूल्यवान और ज़िन्दगी की अहम् कड़ी होती है जो अपने बच्चों की खातिर कुछ भी करने को तैयार है। सारी विषम परिस्थितियों को झेलती है। माँ ममता का प्रतीक होती है। महेन्द्र सेठिया की कविता की पंक्तियों में इस प्रकार अभिव्यक्त करती है –

"कब ज़रूरत हो मेरी बच्चों को ऐसा सोचकर
जागती रहती हैं आँखें, और सो जाती है माँ
घर से परदेश जब जाता है नूरे नज़र, हाथ।"

दीपक शर्मा ने लिखा है – "आओ सब मिलकर अपनी जननी के चरण स्पर्श करें और प्रभु से विनती है कि हे परमपिता, हमें हर जन्म में इसी माँ की कोख से पैदा करना। हमारा जीवन इसी गोद में सार्थक है, हमारा बचपन इसी ममता का प्यासा है और जन्म–जन्मान्तर तक हम इसी ममत्व का नेहपान करते रहें .. . माँ आप हमारा प्रणाम स्वीकार करो और हमें आशीर्वाद दो।"

श्यामल सुमन की 'माँ' शीर्षक कविता में –

"तू न होती तो फिर मेरी दुनिया कहाँ?
तेरे होने से मैं ने ये देखा जहाँ।
कष्ट लाखों सहे तुमने मेरे लिए
और सिखाया कला जी सकूँ मैं यहीं
प्यार की झिरकियाँ और कभी दिल्लगी
क्या करूँ माँ तेरी बन्दगी।"

माँ का स्थान बहुत ही ऊँचा होता है चाहे समयानुकूल सामाजिक और

पारिवारिक संबंधों में कितने परिवर्तन क्यों नहीं हुए हों उनसे संबंधित मान्यताएँ भी समयानुकूल परिवर्तित होती रही, तब भी माता का रूप कभी भी नहीं बदलता है। स्थूल रूप में कहीं–कहीं माँ और संतान के बीच के संबंध में दरारें पड़ी भी हों तथापि सूक्ष्म रूप से देखें ये सब दरारें सिर्फ उथली हैं। लेकिन अपनी गहराई में उसका मजबूत रूप देखा जा सकता है। यह कभी–भी अलग नहीं किया जा सकता।

आज के व्यस्त जीवन में माँ के प्रति संतान के मन में संबंधों की डोरी तो शिथिल हो जाती है, फिर भी माँ की ममता कालातीत होकर एक ही बहाव में बहती रहती।

डॉ. मिमी माणी पनक्कल
सहायक आचार्य–हिंदी विभाग,
विमला कॉलेज–तृश्शुर, केरल

●

15

कृष्णा सोबती के उपन्यासों में मातृत्व की अभिव्यक्ति

स्त्री विधाता की अद्वितीय रचना है, प्रकृति का सुन्दरतम उपहार। वह समाज, संस्कृति और साहित्य का महत्त्वपूर्ण अंग है। बीसवीं शती के अंतिम दशकों में स्त्री–विमर्श चर्चा का मुख्य विषय रहा है। स्त्री–जीवन के कई पहलुओं को महिला उपन्यासकारों ने स्पर्श किया है। उन पहलुओं की सार्वजनिक रूप से चर्चा करने के लिए मातृत्व की परिकल्पना अपने आप में अनूठी है। क्योंकि मातृत्व नारी सुलभ भावनाओं में सबसे कोमल है। इससे वंचित रहना नारी के लिए पीड़ादायक हो सकता है। यहाँ तक कि मातृत्व विहीन नारी समाज में सम्मान प्राप्त नहीं कर सकती। मातृत्व के बिना स्त्री का अस्तित्व निरर्थक माना गया है। उसके लिए मातृत्व सुख ही सच्चा सुख है।

भारतीय समाज में स्त्री का जो भी स्थान रहा, उसमें माँ का स्वरूप सर्वाधिक प्रभावशाली और महत्त्वपूर्ण रहा है। एक ओर वह मानव की जन्मदात्री होने के हक़ की आधिकारिणी है तो दूसरी ओर मातृत्व की सार्वजनिक उदारता से संतुष्ट भी। इसलिए हमारे यहाँ मातृ–पद की प्रतिष्ठा निर्विवाद रही। स्वामी विवेकानन्द जैसे महानों का मानना है कि पश्चिम की नारी पहले प्रेयसी है, फिर पत्नी, फिर माँ, जबकि भारत की नारी पहले माँ है, फिर पत्नी, इसके बाद प्रेयसी।

हिंदी साहित्य में माँ को केन्द्र बनाकर अनेक उपन्यासों का सृजन किया है। इनमें कृष्णा सोबती का उपन्यास 'ऐ लड़की' का स्थान सर्वोपरि है। इस उपन्यास का केन्द्र पात्र वृद्धा अम्मू अपना समूचा जीवन–दर्शन या कहें स्त्रीत्व के विषय में सारी सोच, जीवन की अनुभव–राशि, स्त्रीत्व की मर्यादा, महत्त्व और दायित्व के माध्यम से तमाम नारी – वर्ग को प्रेरणा देकर जागृति उत्पन्न करने की कोशिश करती है। अपने अनुभवों के आधार पर मातृ–चरित्र का जो रूप कृष्णा सोबती ने उतारा है, वह अन्य लेखिकाएँ नहीं कर पायी। इस उपन्यास से यह संकेत मिलता है कि एक माँ अपने परिवार के लिए 'स्व' की चिंता किये बिना किस तरह से परिवार के लिए सब कुछ न्योछावर कर देती है। मानव जीवन से जुड़े हर पहलू को यह उपन्यास पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करता है। इसकी कथावस्तु

इतनी सजीव–सी लगती है मानो यह कथा हर घर में माँ–बेटी में दोहराई जा रही हो। उपन्यास का केन्द्र पात्र वृद्धा अम्मू है जो अपने अंतिम समय में जीवन और मृत्यु की एक धुरी पर घूम रही है। वृद्धा के जीवन–जगत, उसकी अनुभूतियों और संवेदनाओं का प्रतिबिम्ब उसके अतीत के स्मृति पटल के माध्यम से साकार होता है। उस बूढ़ी माँ ने पूरा जीवन हर्ष एवं उल्लास के साथ जिया है। अब वह मृत्यु का सहज इंतजार कर रही है। वह मृत्यु का भी उसी प्रकार इंतजार कर रही है जिस प्रकार उसने अपने पूरे जीवन में खुशियों और सुखों का इंतजार किया है। अपने जीवन के अंतिम क्षणों में वह भयभीत नहीं है, बल्कि विगत की स्मृतियों को वह अपनी बेटी के साथ अपने आपसे बात करके बिताती है। वह अतीत की यादों को अपने जीवन की स्थायी निधि मानती हैं।

वृद्धा के भीतर न तो जीवन के प्रति अस्वीकृति है, और न ही मृत्यु के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण। उसकी नजरों में दोनों समान हैं। उसने अपने जीवन में खाने, पीने, ओढ़ने, पहनने आदि सभी छोटी चीजों को महत्त्व दिया है। इसलिए उसे जीवन कभी बोझ नहीं लगा। शादी–ब्याह, पति–बच्चे, घर–परिवार आदि का वृद्धा के जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। वह अपनी यादों के सहारे एक बार फिर अपने अतीत को ताज़ा कर रही है।

इस उपन्यास में कई जगह अम्मू की छोटी से छोटी खूबियों का पता चलता है, जैसे कि चाय जैसी रोज़मर्रा की मामूली चीज़ का भी वृद्धा के जीवन में अत्यधिक महत्त्व है। खाने–पीने के साथ–साथ वृद्धा नहाने–पहनने को लेकर उत्साहित रहती है। अम्मू की यह प्रकृति उसके स्वाद या भूख की नहीं है, बल्कि यह उसके जीवन का सच्चा दृष्टिकोण है। क्योंकि वृद्धा ने ही जीवन का सच्चा सुख भोगा है। अम्मू की बेटी का अभी विवाह नहीं हुआ है और वह विवाह करना भी नहीं चाहती। अम्मू चाहती है कि उसके मरने से पहले उसकी बेटी घर बसा लें। वह रात–दिन इसी चिंता में रहती है कि उसके बाद बेटी का क्या होगा।

अम्मू की इस चिंता के दो पहलू हैं। एक, अविवाहित बेटी का माँ के मरने के उपरांत की चिंता। वृद्धा की चिंता का दूसरा पहलू है कि हमारे भारतीय परिवारों तथा समाज में एक अकेली स्त्री की परिकल्पना स्वीकार्य नहीं है और वृद्धा भी किसी हद तक इस बात से असहमत है। उसका मत यही है कि नारी ही घर की शोभा है और विवाह के बाद भी यह शोभा उसे समाज से प्राप्त होती है। विवाहित स्त्री ही सौभाग्यवती और पुत्रवती कहलाती है।

वृद्धा कहती है कि संसार का सबसे बड़ा सुख है माँ बनना। माँ बनने पर औरत को समाज में मान–सम्मान प्राप्त होता है। लेकिन एक अविवाहित स्त्री को समाज शक की दृष्टि से देखता है तथा उस पर दोषारोपण करता है। वृद्धा अम्मू को यही चिन्ता है कि उसकी बेटी दुनिया के अमूल्य सुखों से वंचित है।

उसने हमें सामाजिक मान–मर्यादा और प्रतिष्ठा के साथ–साथ जीवन की बड़ी वास्तविकता से भी अवगत कराया है।

वृद्धा कहती है कि औरत का पत्नी और माँ होने का रूप केवल पारिवारिक और सामाजिक नहीं है। वह बेटी से कहती है – बेटी के पैदा होते ही माँ सदाजीवी हो जाती है, वह कभी नहीं मरती। हो उठती है वह निरंतरा। वह आज है, कल भी रहेगी, वह अगली से भी अगली। वह सृष्टि का स्रोत है। (ऐ लड़की, कृष्णा सोबती, पृ. ४६)

एक समय ऐसा भी था जब बुढ़ापा सम्मान और इज्जत का प्रतीक समझा जाता था। उस समय के वृद्ध अपने अनुभवों के कारण सर्वोच्च स्थान के अधिकारी समझे जाते थे। जीवन में उनके निर्देशों की एक खास आवश्यकता महसूस की जाती है। लेकिन आज परिस्थितियाँ बदल गयी हैं। वृद्धावस्था की सबसे पहली और सबसे बड़ी कठिनाई है कि व्यक्ति का वृद्ध होते ही अपने परिवार के लिए अनुपयोगी हो जाना। वृद्ध अपने ही परिवार में अपने ही बच्चों में पराये और अजनबी हो जाते हैं, जिसका अंकन इस उपन्यास में किया गया है।

हमारे भारतीय परिवारों में स्त्री की दुर्दशा पर प्रकाश डालकर अम्मू कहती हैं – लड़कियों को तैयार ही जानमारी के लिए किया जाता है। (ऐ लड़की, कृष्णा सोबती, पृ. ६१) वृद्धा का विचार यह है कि स्त्री बनी ही पुरुष की सेवा के लिए है। स्त्री समाज में उपेक्षित–सी नज़र आती है। उसका दुःख यह है कि भारतीय समाज में लड़के–लड़कियों में अंतर रखा जाता है। अपने ही परिवार में लड़कियों को शोषित जीवन बिताना पड़ता है। उसकी स्थिति तभी सुधरेगी जब वह स्वयं अपनी अस्मिता के प्रति सजग होगी। साथ ही स्त्री के समाज से मान–मर्यादा और प्रतिष्ठा चाहिए तो उसे विवाह के बंधन में बँधना ही होगा। इससे स्त्री सुरक्षित रह सकती है।

वृद्धा मातृत्व को जीवन की सबसे बड़ी खुशी और उपलब्धि मानती है। वह कहती है – बच्चा है गोद में तो समझो तीनों लोक एक मिश्री के कूजे में। (ऐ लड़की, कृष्णा सोबती, पृ. १३) एक जगह वह कहती है – बच्चे को जन्म देकर इंसान मौत को ललकारता है। (ऐ लड़की, कृष्णा सोबती, पृ. ३५) माँ बनने का महत्त्व अपनी बेटी को समझाते हुए वृद्धा कहती है कि औरत माँ बनकर ही जीवन का सर्वश्रेष्ठ सुख प्राप्त करती है। साथ ही वह कहती है कि नारी को नारी के नाम से ही जाना जाए, न किसी और नाम से। इसलिए वह अपनी बेटी से कहती है कि औरत का वक्त तभी सुधरेगा जब वह अपनी जीविका अपने आप कमाने लगेगी।

वह अपनी बेटी को परिवार चलाने तथा उसे सजाने–सँवारने के गुण सिखलाती है। औरत ही परिवार को बनाये रख सकती है। उसके अनुसार गृहस्थी चलाना कोई आसान काम नहीं है। गृहस्थ स्त्री को सही माप–तौल सिखाती है। परिवार में माँ को घर की व्यवस्था करने वाली कहा गया है और माँ की भूमिका केवल इतनी ही है। वह अपना पूरा जीवन परिवार को समर्पित कर देती है। ऐसा माना जाता है कि वह हर हाल में पति और घरवालों की सेवा करे। बस यही उसके जीवन का मुख्य ध्येय है। इस सेवा–भाव के कारण बाहर के कार्यों से उसका बहिष्कार होने लगा।

कृष्णा सोबती ने 'ऐ लड़की' में वृद्धा के माध्यम से अपनी ही जीवन दृष्टि को अभिव्यक्त किया है। प्रबल इच्छाशक्ति वाली माँ का ऐसा जीवन–दर्शन किसी भी पुस्तकीय ज्ञान से प्राप्त नहीं कर सकते। यह उपन्यास समय और समाज की परिस्थितियों के फलस्वरूप मानवीय संबंधों की नयी परिभाषायें, मूल्य और अर्थवत्ता का साक्षात्कार कराता है।

कृष्णा सोबती का एक और उपन्यास है 'दिलो–दानिश'। यह वकील कृपा नारायण और उनके संयुक्त परिवार के माध्यम से बदलते सामाजिक संदर्भों में स्त्री के अस्तित्व की माँग को प्रतिष्ठित करता है। इसका पात्र महकबानो मातृत्व के अधिकार से वंचित है। वह वकील कृपा नारायण की अविवाहिता पत्नी है। ऐसे रिश्ते के तहत वह कृपा नारायण से न किसी बात की ज्यादती कर सकती है और न ही कोई शिकायत। वकील के हर निर्णय को चुपचाप स्वीकार करना ही उसकी नियति है। महक की बेटी मासूमा की शादी किसी कुलीन परिवार में तय किया जाता है और उसके बदले महक के मातृत्व का हनन हो जाता है। वकील साहब और उसकी पत्नी कुटुंब प्यारी महक के सामने यह प्रस्ताव रख देते हैं कि शादी के बाद मासूमा को अपनी माँ से मिलने की इजाजत नहीं दी जायेगी। महक बानो को ऐसा लगता है कि इस प्रस्ताव से उसेस अपने बच्चों से अलग कर एक कोने मे फेंका जा रहा है। इस सन्दर्भ में महक बानो के इस कथन का खास मतलब ही है कि कोई कानून तो माँ के लिए भी बना होगा। उसके बच्चे उसे अकेला छोड़कर अपने पिता के धन–दौलत से भरे–पूरे परिवार में चले जाते हैं। वह अपने मातृत्व के लिए लड़ती है, लेकिन उससे मातृत्व का बलिदान करने की माँग की जाती है। अपने सुखद भविष्य की कामना में वह माँ की ममता को तोड़ने का निश्चय करती है। माँ बेटी के संबंधों में स्वार्थ के चित्रण द्वारा यह उपन्यास सामाजिक वास्तविकता की ओर इशारा करता है।

माँ के प्रति क्रूर होते समाज की निष्ठुरता का सच्चा चित्रण 'समय सरगम' उपन्यास से प्राप्त होता है। बच्चे माँ–बाप से सम्पत्ति हड़पने के लिए कुछ भी करने को नहीं हिचकते। अक्सर माँ–बाप बच्चों के हाथ की कठपुतली बन जाते हैं। इसका ज्वलंत प्रमाण है दमयंती और कामिनी जैसे पात्र। उनसे बच्चों को कोई

ममता या प्यार नहीं है। ये नितान्त अकेले रहकर अपनी ज़िंदगी को अपने ही कंधो पर जीने के लिए अभिशप्त हैं। ये पात्र समकालीन संरचना के विभाजित बुजुर्ग पात्र हैं, जो आधुनिक जीवन शैली सम्पन्न परिवार की देन है। वहाँ वे परिवार के सम्मानित बुजुर्ग एवं मात्र पात्र न होकर मात्र वरिष्ठ नागरिक के रूप में स्थान पा रहे हैं।

ममता की मंदाकिनी, स्नेह की अक्षय–राशि, दया और वात्सल्य का प्रतीक, त्याग और तपस्या की साकार प्रतिमा माँ सदा से ही व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की श्रद्धा और आदर की पात्र रही। मातृ–पात्र के रूप में नारी के निश्छल, निस्वार्थ एवं उदात्त रूप कृष्णा सोबती के उपन्यासों में देखी जा सकता है। उन्होंने अपने अनुभवों एवं समय और समाज की संवेदनाओं के आधार पर मातृत्व का जो चित्र खींचा है, वह अन्य लेखिकाएँ नहीं कर पायी। माँ पात्र के जीवन से जुड़ी अलग–अलग सच्चाइयों का अंकन युगीन यथार्थ के साथ प्रस्तुत करने में उनको सफलता मिली है।

डॉ. सिबी. एम. एम.
सहायक आचार्य
एम. ए. कॉलेज – कोतमंगलम

●

16

उत्तराधुनिक हिंदी कथा साहित्य में मातृत्व की परिकल्पना

माँ व्यक्ति के जीवन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं मधुरतम शब्द है। प्राचीन काल से ही विश्व भर में यह मान्यता प्रचलित है कि स्त्री मातृत्व के साथ पूर्ण होती है। इसीलिए स्त्री की तुलना को हमेशा प्रकृति से किया जाता है। क्योंकि इन दोनों के पास ही प्रजनन की क्षमता है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था स्त्रियों के जन्म देने के अधिकार के कारण उसके प्रति आभारी है और उसे नियंत्रण में रखना चाहता है। स्त्री प्रकृति के समान ही स्वत्वबोध विहीन है। आधुनिकता ने जिस प्रकार प्रकृति का शोषण करके उसे विनाश के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है, उसी प्रकार स्त्री को सर्वम् सहाःरूप का भी शोषण करते हुए हाशिएकृत बनाए रखा। जिसमें मातृत्व भी शामिल है। माँ द्वारा जीवन भर पति एवं बच्चों के प्रति समर्पित रहने पर भी उसे वृद्धावस्था में घर का कोई अँधेरा कोना, आँगन या शरणालय में नज़ीब होता है। लेकिन उत्तराधुनिकता के आविर्भाव के साथ समाज एवं साहित्य में स्त्री अपने हाशिएकृत स्थिति से उभरकर मुख्य धारा में पहुँच चुकी है और वह समाज से व्यक्ति के हैसियत की कामना कर रही है। इसके अनुरूप स्त्री को मातृत्व संबंधी परिकल्पना में भी समयानुसार बदलाव आया है और इक्कीसवीं शती के रचनाकारों ने से अपने कथा साहित्य में बखूबी शब्दबद्ध भी किया है। उत्तराधुनिकता की संतति 'फेमिनिज़म' या 'स्त्रीवाद' ने इनकी चिंताधाराओं को प्रभावित किया है।

पितृसत्तात्मक व्यवस्था में एक स्त्री को पहले अपने पति का स्वामित्व ग्रहण करना पड़ता है, बाद में अपने पुत्रों का। मनु ने कहा था –

"पिता रक्षति कौमार्यो
भर्ता रक्षति यौवने
पुत्रो रक्षति वार्धक्ये
न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति।"

पर जब रक्षा करने के लिए उत्तरदायी पुरुष उसका शोषण ही नहीं, बल्कि सर्वनाश करने पर तुला हो तो एक साधनहीन औरत; वह भी तीन बच्चियों की माँ अखिर

क्या कर सकती है? वह ज़रूर अज़गर वजाहत की सुन्दर कहानी 'ड्रेन में रहने वाली लड़कियाँ' की सरला की तरह ही व्यवहार करेगी। लड़कियों के विरुद्ध विभिन्न अत्याचार एवं भ्रूणहत्या के दर में निरन्तर बढ़ोत्तरी दर्ज होने वाले इस कालखण्ड में सरला तय करती है कि अपनी तीसरी बच्ची को इस दुनिया में जीने की ज़रूरत नहीं है। क्योंकि सरला के ससुरालवाले लड़कियों को पसंद नहीं करते। सरला के अनुसार बच्ची को मारने के माध्यम से वह बच्ची के भविष्य को सुरक्षित कर रही है। इसीलिए वह अपनी नवजात शिशु को अस्पताल के टॉयलट में डालकर फ्लश कर देती है। सरला जैसी साधनहीन महिला और कर भी क्या सकती थी। बाद में दहेज के लिए वह स्वयं भी मारी जाती है।

मातृत्व जैसी पवित्र अधिकार के लिए अपना सब कुछ बलि चढ़ाकर अपने रक्त से सींचकर बड़ा करने पर मनु की अंतिम पंक्ति के अनुसार माँ की रक्षा करने के लिए नियुक्त पुत्र जब अपने उत्तरदायित्व से मुँह मोडता है तो भी माँ सब कुछ सहकर अपने बेटे की खुशहाली की कामना ही करती रहती है। पुत्र गाली देता है, तिरस्कार करता है, मृत्यु की कामना करता है, फिर भी माँ अपने वात्सल्यमयी रूप को त्यागती नहीं है; पुत्र को आशीर्वाद देती रहती है। उत्तराधुनिक समाज में साधनहीन माताएँ आलंबहीन और पुत्रों द्वारा तिरस्कृत होती हैं इसका चित्रण भीष्म साहनी की कहानी 'चीफ की दावत' एवं सूर्यबाला के उपन्यास 'अग्निपंखी' में हुआ है। 'चीफ की दावत' में वृद्धा माँ को घर के एक कोने में रखा जाता है; क्योंकि पुत्र नहीं चाहता कि उसके सामाजिक संबंधों में माँ के कारण कोई समस्या उत्पन्न हो। फिर भी जब वृद्धावस्था में भी माँ के कारण उसे लाभ नज़र आता है तो माँ की रोगातुरता के बावजूद उसे काम करने के लिए भी प्रेरित करता है। 'अग्निपंखी' में बेटा जयशंकर अपनी माँ की ज़िद के कारण शहर में अपने साथ रहने के लिए ले आता है। पर शहर में माँ का दिल नहीं रमता और माँ वापस जाना चाहती है। एक तरफ उन्हें पुत्र मोह शहर की तरफ खीचंती है तो दूसरी ओर वह अपनी मिट्टी को त्यागना नहीं चाहता। जयशंकर माँ की मानसिक स्थिति को पहचान नहीं पाता, और उन्हें शहर में ले जाकर बिना देखभाल करते हुए उनकी मृत्यु की कामना करता है।

उत्तराधुनिक समय में नारीवाद के आविर्भाव के साथ स्त्री की स्थिति में भारी परिवर्तन आया है। स्त्री–शिक्षा ने इस दिशा में बहुत बड़ा योगदान भी दिया है। उत्तराधुनिक समय में स्त्री सशक्तीकरण के सफल प्रयास सर्वप्रथम पाश्चात्य देशों में दिखाई देते है। विर्जीनिया वुल्फ, सिमोन द बुआ, बेट्टी फीदान जैसी महिलाओं के योगदान इस दिशा में महत्त्वपूर्ण हैं। इसी के अनुरूप भारतीय साहित्य में भी स्त्री चेतना एवं अस्मिता के विभिन्न प्रसंगों को साहित्यकार उकेरने लगे। इसमें मातृत्व संबंधी अवधारणाएँ भी महत्त्वपूर्ण हैं। हिंदी साहित्य में मन्नू

भंडारी से लेकर आज के युवा साहित्यकारों तक ने इन परिवर्तनों को अपने साहित्य में अंकित करने का प्रयास किया है।

नारीवादियों ने स्त्री के व्यक्तित्व की या स्वत्व बोध की पुनःस्थापना की दिशा में सबसे ज्यादा महत्त्व उसकी आर्थिक स्वतंत्रता को दिया है। इसीलिए उत्तराधुनिक नारी अपने हर संबंध में महत्त्वपूर्ण उसकी आर्थिक स्वतंत्रता एवं अस्तित्व को मानती है। आधुनिकता ने कभी भी परिवार के लिए स्त्री द्वारा अर्पित कठिन परिश्रम एवं त्याग को श्रम के क्षेत्र में उसके योगदान के रूप में माना नहीं था। इसीलिए आज वह परिवार संबंधी अपने उत्तरदायित्वों को निभाते हुए भी परिवार के बाहर अपनी एक नई पहचान के लिए आतुर है। सुव्यवस्थित रूप से हिंदी कथा साहित्य में इसका श्रीगणेश हम मन्नू के उपन्यास 'आपका बंटी' और 'बंद दराजों का साथ' में देख सकते हैं। पत्नी होने पर भी भारतीय सामाजिक व्यवस्था में औरत को स्वीकृति तभी मिलती है जब वह एक लड़के को जन्म देती है। समाज में पुरुषाधिपत्य के अधिकार चिन्ह के रूप में उसको उभारकर लाना ही उसका दायित्व है। पर 'आपका बंटी' की शकुन एक बेटे की माँ होने के बावजूद अपनी आर्थिक स्वतंत्रता को महत्त्व देती है और पति की सत्ता पर प्रश्न चिन्ह लगाती है। वह मातृत्व को कभी अपने स्वातंत्र्य का हनन करने का अवसर प्रदान नहीं करती है। इसलिए वह बंटी के होने के बावजूद दूसरी शादी करने से हिचकिचाती भी नहीं है। यह उत्तराधुनिक स्त्री अपनी परम्परागत लक्ष्मण रेखा का लाँघ रही है। शकुन के समान ही 'बंद दराजों का साथ' की नायिका भी दूसरे पति और पहली शादी के पुत्र के बीच स्वयं को बाँटती है, फिर भी पुत्रमोह के कारण 'सर्वम सहाः' का रूप अपनाने के लिए तैयार नहीं थी।

इसी प्रकार युवा साहित्यकार नीलाक्षी सिंह की कहानी 'रंगमहल में नाची राधा' में नायिका दीवान बाई वृद्धावस्था में अपने पति एवं बच्चों को छोड़कर अपनी युवावस्था के प्रेमी के पास जाना चाहती है। अपने निर्णय के समर्थन में वह कहती है कि उसने माँ–बाप द्वारा उस पर थोपे गये सारे संबंधों का निर्वाह कर लिया है। बच्चों के भी अपने–अपने परिवार हो गये हैं। अब जीवन के सायंकाल में कुछ समय उसे अपने लिए जीना है। पहला प्यार अब उसे तड़पा रहा है। इस प्रकार वह अपनी मुक्ति का एलान करती है।

नीलाक्षी सिंह की 'प्रतियोगी' कहानी की दुलारी अनपढ़ होते हुए भी अपनी आर्थिक स्वतंत्रता के लिए उत्सुक है। एक भरापूरा परिवार और अपने बच्चों के भविष्य के लिए परिश्रम करने वाला पति छक्कन प्रसाद के होते हुए भी वह अपने गृहस्थ जीवन को खाली पाती है। इसीलिए वह खुद का व्यापार शुरू करती है और पति से भी उच्च उद्योगपति बनती है। चार बच्चों की माँ दुलारी केवल अपने पत्नीत्व एवं मातृत्व से संतुष्ट होकर घर में बैठने के लिए तैयार नहीं थी।

पुरुषाधिपत्य संस्था के रूप में विवाह कई बार स्त्री को स्वतंत्रता नहीं देती। लेकिन रूढ़िवादी समाज में विवाह के प्रति अनिच्छा प्रकट करने वाली स्त्री को समाज बहिष्कृत करता है। लेकिन उत्तराधुनिक नारी विवाह जैसी संस्था को नकारते हुए भी माँ बनने की अपनी प्राकृतिक धर्म को निभाना चाहती है। जीवन के सहारे के रूप में वे अपने संतान को मानती है। उत्तराधुनिक कथाकारों ने मातृत्व को स्त्री की एक सहज अनुभूति के रूप में स्वागत किया है और उसके प्रति इच्छा भी प्रकट की है। अविवाहित लड़कियाँ भी मातृत्व की अनुभूति प्राप्त करना चाहती हैं। लेकिन रूढ़िग्रस्त समाज में विवाह का तिरस्कार करने वाली स्त्री के सामने मातृत्व का भी निषेध होता है। 'उस बरस के मौसम' की अंतरा शादी न करने की इच्छा रखने वाली स्वावलंबी औरतों का प्रतीक है। वह अधेड़ उम्र के एक डॉक्टर से प्यार भी करती है। पर वह उनसे शादी नहीं करना चाहती है। वह अपने प्रेम की निशानी के रूप में एक बच्ची को गोद लेती है और शिष्ट जीवन उसके पालन–पोषण में व्यतीत करना चाहती है। चित्रा मुद्गल के 'एक ज़मीन अपनी' में अंकिता माँ बनना चाहती थी, पर पति के साथ उत्पन्न वैमनस्य एवं तलाक के कारण उसकी इच्छा अपूर्ण रह जाती है। उसकी सहेली नीता 'लिव इन' संबंध में माँ बनती है, पर सुधीर की उपेक्षा के कारण अपनी बच्ची के प्रति अपने कर्तव्य का पालन न करते हुए आत्महत्या करती है। पर वह अंकिता के लिए एक चिट्ठी छोड़ जाती है, जिसमें लिखा होता है, तुम्हारे लिए मैं तुम्हारी बेटी को छोड़ कर जा रही हूँ। अंकिता उस बच्ची को अपनाती है, शिष्ट जीवन की खुशी के रूप में।

सुषमा जगमोहन की कहानी 'कोई मेरा अपना' उत्तराधुनिक समय के त्रासद स्थितियों का चित्रण करती है। नारीवाद में जब स्त्री अपनी अस्मिता की तलाश में, अपनी आर्थिक स्वतंत्रता की तलाश में जब बाहर निकलेगी, तब बदली हुई परिस्थिति में जीवित बच्चों के प्रति ममता एवं वात्सल्य का भाव कौन दिखाएगा? दादी–नानी ही एक हद तक यह काम करती थी, पर आज वह भी बच्चों के लिए अन्य हो रहे हैं। 'कोई मेरा अपना' की कहानी २०१५ की है जहाँ अपनी बेटी की देखभाल के लिए पिता एक कम्प्यूटर और रोबोट का निर्माण करता है। लेकिन ममता एवं वात्सल्य के लिए भूखी ईवा बड़ी होकर अपने लिए कम्प्यूटर की सहायता से पुराने समय की एक दादी का ही निर्माण कर डालती है। विवाह एवं मातृत्व में विश्वास खो चुकी ईवा को दादी के साथ के कारण इन सबमें विश्वास उत्पन्न होता है और वह प्राकृतिक रूप से माँ बनना चाहती है। उसका मित्र अनंत पूछता है कि इसकी क्या ज़रूरत है? वह हॉस्पिटल के बैंक से उसके स्पेर्म को ले सकती है कहने पर ईवा कहती है कि वह असली रूप से माँ बनना चाहती है, उससे शादी करके साथ रहकर ही माँ बनना चाहती है। इस प्रकार

दादी के प्रभाव के कारण मातृत्व संबंधी अंतरा की उत्तराधुनिक विचारधारा में परिवर्तन आ जाता है।

इन कहानियों का विश्लेषण करने पर हमें पता चलता है कि स्त्री शिक्षा एवं परिवर्तित विचारधारा के कारण स्त्री के मातृत्व संबंधी दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आ रहे हैं। पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था को चुनौती देने के उद्देश्य से एवं स्वयं की हाशिएकृत स्थिति से उभरकर मुख्य धारा में पहुँचने की स्त्री के प्रयासों से उत्पन्न स्थितियों के कारण परम्परागत मातृत्व संबंधी अवधारणाएँ नष्ट हो रही हैं। आज स्त्री और पुरुष एक गाड़ी के दो पहियों के समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। जिस प्रकार पुरुष के सभी कार्यों में पत्नी समर्थन देती है, उसी प्रकार पुरुष भी स्त्री की मानसिकता को समझते हुए उसे भी व्यक्ति की हैसियत प्रदान करेंगे तो मातृत्व के उच्च आदर्श आगे भी इस संसार में कायम रहेंगे और बंटी जैसे संतान एक प्रश्नचिन्ह बनकर समाज में उपस्थित नहीं होगें।

डॉ. लेखा एम.
सहायक आचार्य,
पोस्ट ग्रेजुएट एण्ड रिसर्च डिपार्टमेंट आफ हिन्दी,
एन. एस. एस. हिन्दु कॉलेज,
पेरुन्नम, चांगनाचेरी

●

17

माँ की आशाएँ और आशंकाएँ कथा सतीसर के विशेष संदर्भ में

"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" अर्थात जननी और जन्मभूमि की महिमा स्वर्ग से बढ़कर है। वैदिक काल से लेकर माता का पद अत्यंत प्रशंसनीय थी। कुटुंब की स्त्रियो में माता स्नेह और दुःख का निधान समझती थी। वीर पुत्रों को जन्म देने वाली माता अत्यंत गौरवपूर्ण मानी जाती थी। समाज में उनका आदर होता था। आगे चलकर उत्तर वैदिक काल में माता गुरू से अधिक श्रेष्ठ मानी जाती थी। वरिष्ठ धर्म सूत्र में माता को अत्याज्य बताया है। मध्यकाल में भारतीय समाज में स्त्री का माता रूप सर्वाधिक प्रतिष्ठित एवं सम्माननीय था। माता गुरू के समान पूजनीय मानी जाती थी। उनकी सेवा से स्वर्ग की प्राप्ति होती है ऐसी मान्यता थी। आज भी भारतीय समाज में स्त्रियों की विशेषकर माता एवं पत्नी के रूप में सदैव सम्मान और प्रतिष्ठा कम नहीं हुई है।

माता के हृदय में जो कोमल भावनाएँ हैं जो दुनिया में सबसे बढ़कर है। उनके मन की करुणा, ममता, दया, प्रेम आदि भावनाओं में कई महानों को जन्म दिया है। इन कोमल भावनाओं को वहन करने वाला ही सच्चा महान बन सकता है। माँ का मन हमेशा अपने बच्चों के लिए (तड़पता) है। उनकी मन की आशंकाएँ दुनिया की सबसे बड़ी आशंकाएँ हैं। आशंका भरी मन की अकुलाहट की झलक परिवारवालों पर विशेषकर बच्चों पर पड़ता है। ऐसे तंग भरे वातावरण में पलनेवाले बच्चे कभी भी समाज में संतोष पैदा नहीं कर सकते। ऐसी हालत हमारे देश की प्रगति के लिए भी खतरनाक है। एक अच्छे परिवार से अच्छा समाज और अच्छे समाज से अच्छा देश बन सकता है। आज हम ऐसे समाज में जी रहे हैं जहाँ दंगे–फसाद, लूटमार, हत्या एवं हत्याकांड पहले से ज्यादा है। एक माँ कभी भी नहीं चाहती है कि उसके बच्चे ऐसे अंसतुष्ट एवं तंग भरे वातावरण में जन्म लें । लेकिन दुख की बात यह है कि कभी–कभी उन्हें मज़बूर होकर ऐसे आतंक भरे वातावरण में बच्चों को जन्म देना पड़ता है।

कथा सतीसर खुद लेखिका के लिए अपनी आशंकाओं को उतरने वाली सृष्टि है। हिन्दी के मशहूर लेखिका चन्द्रकांता का कथा सतीसर उपन्यास के जरिए आतंक से ग्रस्त माताओं के दुःख भरे जीवन का आख्यान करने का प्रयास किया है। उसके साथ–साथ अपने बच्चों के प्रति उनकी आशंकाओं और कामयाबियों पर भी प्रकाश डाला गया है।

'कथा सतीसर' कश्मीर की पृष्ठभूमि पर आधारित उपन्यास है। लेखिका का जन्म भी कश्मीर में हुआ था। इस उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि खुद लेखिका द्वारा देखे और भोगे यथार्थ को इसमें वाणी दी है। उनका जन्म कश्मीर के एक सनातन हिन्दू परिवार में हुआ था। उनके पिता एक कश्मीरी पंडित थे। वह अपनी माँ से बहुत प्यार करती थी। अपनी संपत्ति को हमेशा घर के संभ्रान्त अनुशासनी और दायित्वों से बाँधनेवाली माँ, लीक तोड़कर चलने वाली अपनी कलंदर बेटी की चिंता में लगी रहती थी। इसी चिंता में ही माँ घूमती जा रही थी। उनकी सात वर्ष की आयु में उसकी माँ उसे छोड़कर हमेशा के लिए चली गई। माँ के वियोग ने उसे अंतर्मुख बना दिया। वे भीतर से अकेली हो गयी।

चन्द्रकांता के पिताजी प्रो. रामचन्द्र पंडित भी साहित्य सृजन किया करते थे। इस विरासत से प्रेरणा पाकर चन्द्रकांता ने भी साहित्य सृजन का कार्य आगे बढ़ाया। छोटी आयु में हुई माँ की मृत्यु ने उसके स्वभाव को भावुक बना दिया। बाद में लेखन के दौरान कश्मीरी आतंक ने उन्हें अधिक संवेदनशील बनाया। परिणामतः कथा सतीसर, उपन्यास और कालीबर्फ, पोशनूल की वापसी आदि कहानियों में हृदय पसीजनेवाली संवेदनशीलता पाई जाती है।

कथा सतीसर में चन्द्रकांता ने कश्मीर के संदर्भ में आतंक से प्रभावित लोगों की व्यथा कथाओं को तटस्थ होकर अभिव्यक्त किया है। इसमें सन् १९३१ से सन् २००० तक के बीच बनते बिगड़ते कश्मीर का आख्यान मिलता है। खुद लेखिका की नज़रों में, कथा सतीसर, मेरी जन्मभूमि कश्मीर के ज्वलंत प्रश्नों के उत्तर ढूँढ़ता, एक बृहद उपन्यास है।

खुद लेखिका भी एक माँ है। ऐसे आतंक भरे वातावरण में पलने के कारण उसके मन में भी बच्चों को लेकर, उनके भविष्य को लेकर आशंकाएँ होना स्वाभाविक है। हिन्दू मुस्लिम दंगों के कारण कई हिन्दू पंडितों को वादी से निष्कासित किया गया। उन्हें वादी छोड़कर दिल्ली में अभय लेना पड़ा। चन्द्रकांता का परिवार भी इसका शिकार बन जाता है। एक भुक्तभोगी ही इस दर्द को सही ढंग से अभिव्यक्त कर सकती है। इसलिए चन्द्रकांता ने अपने उपन्यास में शरणार्थियों की समस्या विशेषकर माँ बच्चों की जो दर्दभरी ज़िंदगी को वाणी देने का प्रयास किया है।

जब एक बच्चा गोद में जन्म लेते ही माँ के मन में उसको लेकर कई इच्छाएँ होती हैं। बड़े होकर ऐसा बनना है, वैसा बनना है। उनकी हर कामनाएँ पूरी करते वक्त माता के मन में एक तारा चमकती है। वह सोचती है कि यह उनकी जो पहली सीढ़ी है जो उनकी आशाओं की पूर्तियों को आसान बना देती है। लेकिन कुछ घटनाएँ यह सिद्ध करती हैं कि माँ की कोमलताओं के वहन करने से कोई अच्छा नहीं बन सकता। इसके लिए एक अनुकूल वातावरण का होना भी जरूरी है। कथा सतीसर में चन्द्रकांता ने कश्मीर के दिग्भ्रमित युवकों को दर्शाया है। डॉ. कात्या उन्हें आतंकवादी सिद्धान्तों से परावृत्त करना चाहती है। लेकिन वह खींज उठता है, "हथियार डालूँगा मैं उन दरिंदों के सामने जिन्होंने मेरे बेकसूर माँ–बाप को बेरहमी से पीटा उनका क्या कसूर था? परिवारवालों के ऊपर होने वाले हरकत विशेषकर माँ के ऊपर होने वाले हमलें कभी भी सहन नहीं कर पाती। और कई ऐसी घटनाएँ हैं जिससे कश्मीरी युवक सेना के प्रति अविश्वास दिखा रहा है। इससे तंग होकर वह आतंकवादी गुण्डों में शामिल होते हैं। फरयाज की माँ भी कई बार उसे रोकने की कोशिश करती है। लेकिन वह सुनने के लिए तैयार नहीं थे। जब आतंकवादियों ने अपने मासूम बेटा असलम को जबरदस्ती उठाकर ले जाते देखकर उनकी निस्सहाय माँ कुछ भी नहीं कर सकती। वह जानते थे कि चूहा मारने का भी शक्ति अपने बेटे में नहीं है। सरहद पार ट्रेनिंग के लिए भेजते हैं, जो बी.एस.एफ. के साथ हुई मुड़भेड़ में मारा जाता है। वह अभागी माँ यह कभी भी सह नहीं पाती थी ऐसी आतंक भरे वातावरण में बच्चों को जन्म देने वाले और उसे पालने वाले माताओं के मन में आशाओं से ज्यादा आशंकाएँ पैदा होना स्वाभामिक है। कलहण्ण ने जिस वादी को भूमि का स्वर्ग कहा है आज वही वादी आतंक से ग्रस्त है। लेखिका की बचपन से लेकर यौवन तक की कई यादें इस प्रदेश से जुड़ी है। वह भी उन परिवारवालों की कोटि में है जिन्हें वादी छोड़कर जाना पड़ा था। इसलिए वादी छोड़कर चलने वाली माताओं एवं बच्चों की दर्दभरी ज़िन्दगी का आख्यान उनके लिए आसान था। शरणार्थियों को शिविरों पर शरण लेना पड़ता है। इसमें सबसे ज्यादा नुकसान माँ बच्चों को हुआ था। यह सब देखकर उनकी ममतामयी हृदय तड़प रही है और हमसे पूछती है और देश के सत्ताधारियों को सचेत करती हुई कहती है, "इधर देखो अपने आस–पास। न्याय में अलबमरदारों, ज़रा सोचो, इन निष्काषित बच्चों को तुम कौन–सा भविष्य, दे रहे हो?" उनका मन हमेशा बच्चों के भविष्य को लेकर व्यस्त था।

इसमें चन्द्रकांता ने कई माताओं को दर्शाया है जो कि अपने बच्चों के प्रति अपनी आशंकाएँ प्रकट करती हैं। कृष्णज्यू कौल इसका एक ज्वलंत उदाहरण है। कृष्णज्यू अपनी बेटी लल्ली को रही रस्म के लिए दंगों के बीच में भी ससुराल भेजने के लिए मज़बूर होती है। उस समय पूरा भारत साम्प्रदायिकता की आग

में जल रहा था। रास्ते में दंगे वाले उसके बेटे माधव की हत्या करते हैं। वह एक अभागी माँ है जिसने जीते जी अपने बेटे को खो दिया है। उनकी बेटी लल्ली तांगेवाले रहमान की सहायता से बच जाती है। कथा सतीसर में ऐसी कई माताओं का चित्रण मिलता है जिन्होंने दंगे–फसाद तथा आतंकवादी हमलों में अपने बच्चों को खो दिया। कभी–कभी अपनी बेटियों को अपने ही आँखों के सामने बलात्कार का शिकार बनने हुए देखना पड़ता है। एक बार कबाईलों ने डॉ. कात्या को बंधक बनाते हैं। उसकी माँ लल्ली बहुत परेशान हो जाती है। कई बार उसकी माँ ने कात्या को चेतावनी भी दी थी। फिर भी वह नहीं मानी थी। आतंकी आक्रमणों से पीड़ित लोगों की सेवा करना वह अपना दायित्व समझती थी। इसीलिए वह भी आतंकवादियों के हाथों से बच नहीं पाती। कात्या को बंद करके जिस घर में रखा था वहाँ की मालकिन भी आतंकवादियों के हाथ से बच नहीं पाती। एक दिन उसके घर में भी आतंकवादियों ने कब्जा कर लिया।

उस घर में लड़कियों को उठाकर लाते थे। वह भी एक माँ थी। इसलिए कभी भी वह ऐसी हरकते सह नहीं पाती थी। एक बार वह एक लड़की को वहाँ से भगा देती है तो उन कबाइलों ने उस बूढ़ी को ही नंगा कर दिया। वे लोग उसकी चौदह साल की बेटी पर भी अत्याचार करते हैं। इसी प्रकार अपने बच्चों के लिए माताओं को क्या कुछ सहना नहीं पड़ता। माताएँ कभी–कभी उनके बच्चों को जन्म देना भी नहीं चाहती हैं। वह चाहती हैं कि मिलिटेंटों से होने वाले बच्चे उनके नाम से न जाने जाएं। लोग उनको उनके नाम से पहचाने।

इन कबाइलियों ने कात्या की सहेली तुलसी के सभी परिवार वालों की हत्या की। तुलसी भी इन अत्याचारों से बच न सकी। उसकी माँ कहती है, इसकी तो दुनिया ही उजड़ गई। ... जवान बहू बेटियाँ। सब खत्म हो गया ... फूल से बच्चे काट डाले यह अभागी इस नन्ही जान को लेकर भाग आई। धर्म नष्ट हो गया लड़की का। कैसे मुँह दिखाएगी।"[१]

हब्बाकदल में भी अजय वली को दिन–दहाड़े फल के बीचों–बीच गोलियों से मार डाला। रोती हुई अजय की माँ उनसे स्वयं के लिए भी एक गोली चाहती है।

कथा सतीसर में नसीम एक माता है उसे बुर्का न पहनने के कारण आतंकवादी आक्रमण से पीड़ित दिखाई देती है। नसीम के न मानने पर आतंकवादी उसे उठाकर ले जाते हैं उससे बलात्कार करते हैं। कई बार वहाँ से भागने की कोशिश करती है। जब वह बच्ची को जन्म देती है। तब उस बच्ची को मार देना चाहते हैं। उन्हें डर है कि इस बच्ची की आवाज़ से कबाइल और भी क्रुद्ध हो जाए। वह अपनी बच्ची को लेकर वहाँ से भागती है।

इसी प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने ऐसी कई घटनाओं को दर्शाया है जिसमें हमें माँ का प्यार, आशाएँ, आशंकाएँ और कामनाएँ प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देती हैं। इन सारी घटनाओं के आधार में रखकर हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि एक माँ की आशंका ही दुनिया की सबसे बड़ी आशंका है। एक राष्ट्र की प्रगति की नींव भी माँ की ममतामयी हृदय ही डाल सकती है।

संदर्भ ग्रंथ :

१. कथा सतीसर, पृ. २१२

डॉ. मेय फ्लवर
विभागाध्यक्षा,
सेन्ट मेरीस कॉलेज – त्रिश्शूर
केरल

●

18

समकालीन लेखिका चित्रा मुद्गल की कहानियों में मातृत्व का चित्रण

समकालीन लेखिका चित्रा मुद्गल की कहानियों का कैनवास बहुत ही विशाल एवं बहुवर्णी है। जनवादी लेखिका चित्रा मुद्गल समाज को अपनी पारखी नज़र से देखकर अपनी रचनाओं में उसकी सजीव एवं ईमानदार अभिव्यक्ति करती है। इसलिए ही उनकी रचनाएँ अनुभव वैविध्य और अनुभूति विस्तार की ओर संकेत करती हैं। सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में निर्मित अनुभव बोध एवं संवेदना उनकी रचनाओं की पृष्ठभूमि बनी है। इसलिए केवल एक रचनाकार के रूप में ही नहीं एक समाज सेविका के रूप में खासतौर से झोपड़–पट्टी के श्रमिक लोगों में चेतना पैदा करने की दृष्टि से उनका खास महत्त्व है।

निम्न एवं मध्यवर्गीय परिवेश को स्तब्ध कर देने वाली तस्वीर उनकी रचनाओं में हार्दिक सहानुभूति के साथ देखने को मिलती है और समाज में शोषित, पीड़ित, पददलित श्रमिकों और स्त्री की शोषित स्थिति, अभावग्रस्त भूखे बच्चों और उनकी माताओं की मानसिकता, उनकी बेबसी एवं दर्द आदि उनकी अधिकतर रचनाओं के विषय रहे। चित्रा मुद्गल हमेशा यही चाहती रही कि इन लोगों के जीवन उसकी समग्रता के साथ समाज के सामने प्रस्तुत हो। इसलिए चित्रा मुद्गल ने ऐसी सशक्त कहानियाँ लिखी हैं जिनमें दलित, अभावग्रस्त, आत्मसंघर्ष से भरे मातृत्व रचना का फॉकस में आए हैं।

पाठकीय संवेदना को जगाने और झकझोरने वाली चित्रा मुद्गल की सशक्त कहानी 'भूख' का सरोकार भी इस तरह के दीन, दलित, दरिद्र निम्न वर्ग की जिंदगी से है। 'भूख' की विकरालता ही कहानी का केन्द्रबिन्दु है और कहानी उस बिन्दु के चारों ओर घूम रही है लक्ष्मा और उसके तीन बच्चों की जिंदगी। कहानी में बच्चों के पेट भरने के लिए लक्ष्मा द्वारा किया गया संघर्ष दिल दहलाने वाला है। लक्ष्मा जैसी औरतों के संघर्ष के सामने 'गरीबी हटाओ' जैसे नारों से पैर लड़खड़ाने लगते हैं। योजनाएँ केवल योजना मात्र रह जाती हैं। दो जून रोटी के लिए तरसती 'आम जनता' जनतंत्र भारत की असली तस्वीर बन जाती है और उस

तस्वीर को पूरी प्रामाणिकता और ईमानदारी के साथ चित्रा मुद्गल कहानी में उभारती हैं।

कहानी में लक्ष्मा पति के मर जाने के बाद अपने बच्चों के पेट भरने के लिए संघर्ष करती है। लेकिन बच्चे छोटे होने की वजह से कोई उसे काम पर रखने के लिए तैयार नहीं होता। कम पैसे में आने वाले 'राशन' की भी हकदार वह नहीं बन पाती क्योंकि उसके पास 'राशन कार्ड' नहीं है। हाशिएकृत, वोट बैंक की दृष्टि से कम महत्त्वपूर्ण वर्ग की मूलभूत आवश्यकताएँ सत्ता और समाज के सामने नगण्य हैं। इसलिए राशनकार्ड बनवाने के लिए लक्ष्मा संघर्ष करती वर्ग विषमता की ओर संकेत अवश्य करती है।

कहानी की दूसरी विडंबनात्मक स्थिति है काम की खोज में लक्ष्मा द्वारा किया गया संघर्ष। अभाव और भूख से त्रस्त लक्ष्मा नौकरी की तलाश में हर कहीं भटकती है। भूख से पीड़ित बच्चों की कराह मातृ हृदय को भेदती है। अंत में सबसे छोटे बच्चे 'बच्चू' को वह एक भिखारिन के हाथ में सौपनें के लिए तैयार होती है। भिखारिन दो रुपये और बच्चू के लिए बिस्कुट दूध की एवज़ी में लक्ष्मा के हाथ से बच्चू को लेती है। भिखारिन लोगों के सामने अपनी निस्सहायता की प्रदर्शिनी के लिए 'बच्चू' को दिन में गोद लेती है। बच्चे को भूखे रखकर वह अपने धंधे के लिए निकलती है। भूख से रोते बच्चे को देखकर लोग उसे भीख देते हैं। लक्ष्मा कभी भी यह पहचान नहीं कर पाती कि रात को बच्चू भूखे ही लेटता है। रात में उठकर बच्चू का रोना उसकी शरारत और ज़िद्द समझी जाती है। भूख से उसकी अँतड़ियाँ सूख जाती हैं। अंत में बीमार होकर वह मर जाता है। कहानी की ट्रेजडी को तीव्र करते हुए बच्चू का मर जाना कहानी की संवेदना को और तीव्र बनाती है। निम्न वर्गीय मातृत्व की निस्सहाय स्थिति बेबसी को उभारने में कहानी बहुत ही सफल सिद्ध हुई है।

इसी तरह 'गिल्टी रोज़ेस' कहानी भी एक अलग तरीके से मातृत्व को जाँचने की कोशिश करती है। जब हमारी लड़कियाँ घर और समाज में सुरक्षित नहीं हैं तो उनकी माताएँ प्रतिरोध का रुख अपनाकर कभी–कभार कुछ ऐसे कदम उठाने के लिए मजबूर हो जाती है जिनसे उनके मातृत्व का गला वह खुद घोट लेती है। प्रस्तुत कहानी के ज़रिए चित्रा मुद्गल नागपुर केन्द्रीय कारगर की कैदी 'दुखना' और 'गुनाबाई' की जिंदगी हमारे सामने रखकर स्त्री के शारीरिक शोषण जैसे महत्त्वपूर्ण मुद्दे को उठाने की कोशिश करती है।

गुनाबाई की कहानी बहुत ही दर्दनाक है। लेखिका पहली बार गुनाबाई को सुर्ख गुलाबों की लहलहायी क्यारियों में खुरपी लिए खाद्य छींटती देखी थी। उन गुलाबों के नाम है 'गिल्टी रोज़ेस'। उन गुलाबों की देखभाल गुनाबाई करती है। 'गुनाबाई' पाठकों के सामने एक दर्दनाक कहानी बिखेरती है। गुनाबाई अपनी बच्चियों के खातिर शराबी पति को सहती है। लेकिन जब रक्षक भक्षक का रूप

धारण करता है तो स्त्री का मातृत्व सहन नहीं कर पाता। गुनाबाई का पति अपनी बड़ी बेटी के शरीर को काम लेालुपों के सामने रखकर उसकी देह की कमाई खाता है। गुनाबाई स्त्रीत्व और मातृत्व का अपमान सहन नहीं कर पाती। उस नरक से मुक्ति दिलाने के लिए बचाने के लिए अपनी तीन बेटियों पर मिट्टी का तेल उड़ेलकर जला देती है और अपनी तीन बेटियों के कत्ल के जुर्म में सजा काटती है। बेटियों को उस नरक से बचाने के बाद भी पश्चाताप और दुःख के कारण वह जलती है। इसलिए वह सुर्ख गुलाब उगाने लगती है। क्योंकि टहनियों पर फ़िर–फ़िर खिलते सूर्ख गुलाब से उसकी स्वर्गवासी बेटियाँ उसके मन में जन्म लेने लगती हैं। पश्चाताप की अग्नि में तिल–तिल जलती छटपटाती गुनाबाई आत्महत्या के कगार से जीवन की ओर लौटकर अपने हाथों बेटियों की आत्मा को सँजने सँवारने लगती है। परिस्थितियों एवं परिवेश के कारण अचानक जुर्म की दुनिया में आ फँसी एक माँ की जिंदगी और कहानी की पृष्ठों से बाहर आ रहे एक माँ के हृदय की तड़प वास्तव में मानवीय संवेदना को झकझोरती है।

चित्र मुद्गल की कहानियाँ सामाजिक विमर्श की पृष्ठभूमि पर खड़ी होकर विषय विस्तार की ओर अग्रसर होती है। 'भूख' और 'गिल्टी रोज़स' कहानियों में चित्रित मातृत्व भी कुछ सामाजिक विसंगतियों की ओर इशारा करके मातृ हृदय की बेबसियों और निस्सहाय अवस्थाओं को चित्रित करता है और कहानी इस संदर्भ में सफल भी सिद्ध हुई है।

डॉ. विजयश्री के. वी.
सहायक आचार्य,
श्रीकृष्णपुरम वी.टी.बी. कॉलेज – पालाक्काट

●

19

मधु धवन की साईबर माँ उपन्यास में चित्रित माँ का मूल्य

स्वामी विवेकानन्द की उक्ति है – ''तुम मुझे सौ अच्छी माताएँ दो, मैं देश का नक्शा बदल कर रख दूँगा''। माँ शब्द से कितनी ममता झलकती है, वह कहते नहीं बनता। चाहे कितने भी महत व्यक्तियों को गिने, उनकी महत्ता के पीछे माँ का हाथ ज़रूर होगा। हमारे भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ. अब्दुल कलाम का कथन है कि – मेरी सफलताओं के पीछे की प्रेरक शक्ति नारी; मेरी माँ है। विश्व प्रसिद्ध अद्वैताचार्य शंकराचार्य ने माँ की महत्ता को दर्शाने का खूब प्रयत्न किया है। ठीक माँ की मृत्यु के समय वे माँ के पदारविन्दों में उपस्थित थे। इसलिए ही तो शंकराचार्य की जन्मस्थली को कालड़ी (पांव तले) नाम मिला है। कितना सार्थक नाम। यहाँ बच्चों के जीवन में माँ का क्या मूल्य होता है; इसका गहरा पैठ हमारे मन मस्तिष्क में हो जाता है।

साईबर युग में माँ की भूमिका कितना अहम् है; इसका ज्ञान हमें है। इस युग में बच्चों की परवरिश कैसे होनी चाहिए, इस बात को लेकर चर्चा करें; तो वाद–विवाद की स्थिति उपस्थित हो जायेगी। यहाँ मधु धवन जी का 'साईबर माँ' नामक उपन्यास एक नमूना सिद्ध होता है। इसमें कई माओं का चित्रण हुआ है। इन माओं का एक सिंहावलोकन हमारी पीढ़ी की आँखें खोलने में सक्षम है। अतः आगे साईबर माओं के व्यवहार पर प्रकाश डालना समीचीन है।

साईबर माँ उपन्यास की एक सशक्त माँ डॉ. महक है। वह बाल चिकित्सक (pediatrician) और बाल मनोवैज्ञानिक है। उसके पति डॉ. रजत भी phychiatrist हैं। निधि और विशाल उनके बच्चे हैं। दोनों ही होनहार और सुचरित्र हैं। डॉ. महक की विचारधारा सम्पूर्ण उपन्यास को आलोकित करता है। पग–पग में आत्मविश्वास नष्ट होती खुशबू नामक लड़की का हौसला बढ़ाने के लिए महक उससे कहती है कि – किसी भी विफलता को अपनी पूर्ण पराजय मान लेना बहुत बड़ी भूल है। समझदार बच्चे किसी भी स्थिति को हार–जीत के तराजू में नहीं तौलते। प्रतियोगिता में सब जी जान से लगे होते हैं किन्तु जीत तो उसी की होती है जो प्रथम आये। विचारणीय पहलू यह है कि इस प्रतियोगिता के

दौरान सबकी प्रतिभा का अपने–अपने ढंग से विकास होने लगता है। साइबर युग के लड़के–लड़कियों का बॉयफ्रेंड के बारे में अलग–अलग विचार हैं। ज्यादातर युवक–युवतियाँ बॉयफ्रेंड रखते हैं। डॉ. महक की बेटी निधि अपनी सहेली रीना की बातें माँ से कहती है। रीना जितना पढ़ने में मन लगाना चाहती है; उतना उसका बॉयफ्रेंड उसे तंग करता रहता है। कहीं न कहीं घूमने की बात को लेकर एम.एम.एस. भेजता रहता है, या फोन करता रहता है। बच्चों को माता–पिता कितनी ही महत्त्वाकांक्षा के साथ पढ़ने भेजते हैं। लेकिन यौवन के माँगों के सामने कभी–कभी उनकी पूरी ज़िन्दगी ही बर्बाद हो जाती है। निधि इस बारे में अपनी राय प्रकट करते हुए कहती है कि ... हाँ, माँ, कितनी अटपटी सी बात है, जिसका कोई बॉयफ्रेंड नहीं होता, उसे सभी हीन दृष्टि से देखते हैं और यदि होता है तो भविष्य का पलड़ा डगमगाता दिखाई देता है। इस बॉयफ्रेंड के चक्कर में व्यक्ति घनचक्कर हो जाता है। महक की दृष्टि में रीना का फैसला सही है। आज की शिक्षित होती नारी जागरुक है। रीना चाहती तो अपने बॉयफ्रेंड के साथ घूम सकती थी। लेकिन वह नहीं जाती। अपने कमरे में जाकर पढ़ने लगती है। उसके विचारों–भावों को अपनाने के लिए उदार रूप अपनाना होगा। रीना के बारे में डॉ. महक का विचार है ... रीना न तो मध्ययुगीन रमणियों के समान परदे में बंद रहना चाहती है और न विदेशी तितलियों की तरह फुदकना चाहती है। वह अनियंत्रित होने का प्रयास नहीं करती है। उसे अपने लक्ष्य का ज्ञान है। इस तरह लक्ष्य को मन में रखकर आगे बढ़नेवाली युवतियों की कभी हार नहीं होती। उसका जीवन सदा पतवार वाली नाव के समान संतुलित रहता है।

मम्मी–पापा के झगड़े के कारण रीना को उनसे घृणा है। वह मेडिकल की डिग्री हासिल करके अपने पैरों पर खड़ा होना चाहती है। रीना का मन हमेशा इस समस्या से उलझता रहता है। इसके बारे में डॉ. महक निधि से कहती है कि – तुम उसका साथ दो। उलझन और समस्या बाहरी दुनिया में नहीं होती, मन में होती है।

मौसी के रूप में डॉ. महक को देखा जाय, तो वह अपनी बहन की बेटी को सही राह बताते दीख पड़ती है। नैना के उल्टे–सीधे सवाल पर उसकी माँ हमेशा यही कहती है कि इन सब सवालों का सही जवाब तेरी मौसी ही दे सकती है। नैना को अपनी माँ और मौसी का रूप सार्थक लगने लगता है। माँ ही बच्चों की सबसे जिगरी दोस्त होनी चाहिए। माँ जितनी अच्छी दोस्त बन सकती है, उतना और कोई नहीं हो सकता। नैना बॉयफ्रेंड बनाने के बारे में मौसी से पूछ रही है। महक के ज़ेहन में आया कि नौंवी कक्षा की लड़की को भी बॉयफ्रेंड लटकाने की नौबत आ गयी है। महक ने सरल भाषा में नैना से कहा – फ्रेंड बनाना बुरी

बात नहीं है। वह चाहे लड़की हो या लड़का ... लेकिन अगर तुम उसे मित्र मानो तो अच्छी बात है।

बच्चों के बर्ताव में अल्हड़पन क्यों आता है, वे दूसरों के साथ बुरा व्यवहार क्यों करते हैं। इसके पीछे की मानसिकता क्या है? आदि बातों पर विचार किया जाय, तो कई हृदय विदारक बातें हमारे सामने आ जायेंगी। निधि एक बाल भवन में काम करती थी। वहाँ के क्रैच में उसे कई तरह के बच्चे देखने को मिलते थे। वह खिड़की से एक बच्चे को देखती है जो माँ–बाप के इंतजार में खड़ा था। माता–पिता उसे लेने आते हैं, माँ बच्चे से पूछती है कि, मानस ! खाना खाया था ...? तो बच्चा सिर हिलाकर हामी भरता है। तभी पिता शिकायती लहजे में पूछता है कि – ओये ... उल्लू के पट्ठे, तू सर क्यों हिलाता है, मुँह से क्यों नहीं बोलता? खाना खाया था ...? बच्चा हुंकारी भरता है। फिर पिता कहता है कि – चल, झूठा कहीं का ... यही बच्चा कल किसी को झूठा कहीं का कहेगा तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। एक दूसरा बच्चा है – अभिषेक। माता–पिता के इंतजार में वह बहुत देर से आतुर खड़ा है। निधि के सवालों का वह बहुत ही घटिया ढंग से जवाब देता है। किसी तरह अभिषेक को मनाकर डॉ. महक उसके साथ खेलती रहती है। तभी उसका पिता आकर पूछता है कि – यह आपको तंग तो नहीं कर रहा था? यह सुनकर अभिषेक के चेहरे पर मायूसी छा जाती है। अभिषेक को निधि के साथ बैठाकर डॉ. महक अभिषेक के पिता से कहती हैं कि – आपने बार–बार यह वाक्य दोहराया है, इसने आपको तंग तो नहीं किया? इस वाक्य से उस पर ऐसा प्रभाव पड़ा है कि वह किसी से बोलने की इच्छा ही नहीं रखता है। आपका यह भी कहना है कि दूसरे बच्चों की तरह तो यह है ही नहीं, यह उसे और विद्रोही बना रहा है, जिससे वह हर काम उल्टा करता है। डॉ. महक के समयानुसार उपदेशों ने कई लोगों के सही दिशा निर्देशन में सफल साबित हुआ है।

आज बच्चों की दुनिया बदल रही है। उन्हें कितनी ही निराली चीज़ें या खिलौनें मिल जाय, वे थोड़ी देर में ही उससे ऊब कर उसे छोड़ देते हैं। उनके पसंदीदार खिलौने टी. वी. का 'रिमोट' और कम्प्यूटर का 'माऊस' बनता जा रहा है। आज उन्हें कम्प्यूटर पर क्रिकेट, कार–रेस खेलना ज्यादा पसंद है। इसका एक बुरा पहलू यह भी है कि बच्चे टी. वी. से जुड़कर अधिक झगड़ालू, आक्रामक और बेकाबू हो जाते हैं। जो बच्चा खिलौने से खेलना नहीं चाहता, वह ज्यादा जिद्दी और गुस्सैल हो जाता है। वह गुस्से में खिलौना पटक कर गुस्सा निकाल लेता है। अभिभावकों को नयी परिस्थितियों के बारे में समझकर बच्चों से पेश आना होगा। तभी बच्चों का स्वाभाविक विकास हो सकता है।

सुधा राव उपन्यास में चित्रित दूसरी कामकाजी माँ है। वह विकास खण्ड अधिकारी के पद पर विराजमान है। उसकी बेटी प्रकृति स्कूल के बाद क्रैच में

रहती है। प्रकृति को हमेशा सिर दर्द होता रहता है। इसी के इलाज के लिए सुधा बच्ची को डॉ. महक के पास लाती है। डॉ. महक उसे समझाती हैं कि माँ–बाप के प्यार और ध्यान के अभाव के कारण ही बच्ची का सर दुखता है। यह बात समझ कर सुधा राव घर के सिस्टम को बदलने का दृढ़ निश्चय करती है। सुधा का निर्णय इस प्रकार है .... सुबह छह से सात बजे तक प्रकृति के साथ खेलना, उसे पढ़ाना, उससे बतियाना – ये काम पिता करेंगे। दोपहर एक से दो हमारा लंच ब्रेक होता है। हम में से एक आकर बच्ची के साथ खाना खायेगा। रात का खाना खाने के बाद का सारा समय मैं केवल बच्ची को दूँगी। वह पति अनंत को भी बातें समझाती है। इस तरह कामकाजी रहकर बच्ची का ठीक तरह से देखभाल करने का तरीका बच्चों के भविष्य के लिए बेशक शुभकारी सिद्ध होगा।

तीसरी माँ प्रमिला है। वह अपने बच्चे मानसी और मनु को ज़रूरती छूट देती है। लेकिन उनके पापा प्रवीण को यह पसन्द नहीं। पति की नकारात्मकता के बारे में प्रमिला का विचार इस प्रकार है ... बच्चों को प्यार दो, दुलार दो ... बच्चों के नज़रिए से देखो ... परन्तु ... जी नहीं; तानाशाह बनकर हुक्म देंगे, जैसे हम सब गुलाम हैं। आप कमाते हैं तो यह अर्थ नहीं कि पत्थर दिल हो जायेंगे। कितने उत्साह से बच्चे पिता के पास आये थे, अनुमति माँगने, किन्तु क्या मजाल उसी वक्त हाँ कर दें। प्रमिला की राय में कोमलता, करुणा और सौहार्द की मनोवृत्ति से बच्चों का मानसिक विकास अच्छी तरह से होता है। प्रवीण हमेशा बेटी मानसी पर शक करता है। किसी लड़के के साथ उसका बात करना प्रवीण बड़ा अपराध मानता हैं। डॉ. महक के घर की पार्टी में मानसी की खाना खिलाने की ड्यूटी थी। उसने ताज़ी रोटियाँ गौरव और साथियों को प्लेटों में दी। इस पर प्रवीण के आग बबूले हो गए। उसने वहीं मानसी को डाँटा कि, तुम्हें ज़रूरी है लड़कों के बीच जाना, गर्म रोटियाँ खिलाना ... बदचलन ... और कोई नहीं था। यह सुनकर मानसी को बहुत दुःख होता है। वह अन्दर जाकर डॉ. महक से पूरी बातें कहती है और रोने लगती है। डॉ. महक के कहने पर डॉ. रजत सभी लड़के– लड़कियों को संबोधित करके समझाते हैं कि ... यही अवसर होते हैं जब हम अपनी जान–पहचान बढ़ाते हैं। अपने सामर्थ्य को समझते हैं, अपने ज्ञान को बढ़ाते हैं, सामाजिक नैतिकता, व्यवहार कुशलता सीखते हैं ... मैंने इतना बड़ा जश्न इसलिए बनाया कि आपके उम्र वाले समस्त किशोर– किशोरियों की झिझक दूर हो सके ... सह–शिक्षा ही इसलिए दी जाती है कि लड़के–लड़कियों के बीच सामंजस्य हो। वे एक दूसरे की शक्ति और कमजोरियों के बारे में जाने। भविष्य की ज़िन्दगी के लिए वह उपयोगी सिद्ध होगा। इसलिए डॉ. रजत उपर्युक्त आदेश देते हैं। नेतृत्व गुण बनाने में भी यह असरदार है।

चौथी माँ श्रीमती शर्मा हैं। डॉ. महक की घर की पार्टी में हुए लड़के–लड़कियों के मेलजोल सेशन के बारे में कहती हुई श्रीमती शर्मा जी आती हैं। वह कहती

हैं कि उनके बच्चे लड़के–लड़कियों को घर नहीं लाते। डॉ. महक को मालूम हो जाता है कि, यही औरत मानसी के चरित्र पर हमेशा छींटे डालती है। जैसे ही डॉ. महक को मालूम हो जाता है कि यह चाँदनी की माँ है। वह श्रीमती शर्मा से कहती है ... बड़ी–बड़ी खोखली डींगों की अपेक्षा यह देखिए कि वह कम्प्यूटर पर बैठी कितने लड़कों के साथ बातचीत कर रही है ... कितनों के साथ आपके आँखों के सामने इश्क़–विश्क़ लड़ा रही है। डॉ. महक श्रीमती शर्मा को चेतावनी देती हैं – यदि आपके बच्चों को घर–घर जाने की आदत नहीं है, किन्तु अगर वह इन्टरनेट पर चैट करते रहते है तो आपको सावधान होना पड़ेगा कि वह कितना, किससे और क्यों चैट कर रहे हैं। चैट की बीमारी ड्रग्स से भी खतरनाक हो सकती है। घर जाकर श्रीमती शर्मा को मालूम हो जाता है कि चाँदनी सचमुच गलत रास्ते पर जा रही है। वह कॉलेज की प्रधानाचार्या से शिकायत करने जाती है। वहाँ जाकर कम्प्यूटर पर हो रहे अध्ययन और शिक्षण संस्थान को अनुशासन कड़ा करने की ज़रूरत आदि बातों पर तर्क करने में लग जाती है। कॉलेज की प्रधानाचार्य डॉ. जयलक्ष्मी सुब्रह्मणयम माओं की कम्प्यूटर की जानकारी होना कितना आवश्यक है, इसके बारे में श्रीमती शर्मा को समझाती हैं। उनकी राय में इन्टरनेट का अध्ययन हर एक के लिए ज़रूरी है। वह कहती है – आज की माँग है। आज साइबर युग में माँ को सतर्क, सावधान और शिक्षित होना ज़रूरी है, अन्यथा चाँदनी जैसे काम सब बच्चे करेंगे। आज कड़े अनुशासन का मतलब है बच्चों को कठपुतली बनाना। व्यवहारिक तौर पर यह बच्चों पर लागू करना आजकुल मुमकिन है। यह सब बातें श्रीमती शर्मा को प्रधानाचार्या जी समझाती हैं।

पाँचवीं माँ रेवती हैं। वह बच्चों को जर्मनी से भारत पढ़ाने लाती हैं। भारतीय संस्कार और शील–गुण बच्चों को देने के लिए ही वह ऐसा करती हैं। दोनों लड़के कॉलेज जाने के लिए बाइक माँग रहे हैं, ताकि गर्लफ्रेंड को बिठाकर घूमे। यह सुनकर रेवती सकते में आ जाती है।

इस उपन्यास में पाँच माओं को हम देख सकते हैं। इनमें डॉ. महक और प्रमिला बच्चों को सही राह दिखाने में सशक्त साबित होती हैं। सुधा राव और श्रीमती शर्मा अपनी गलती को महसूस कर ज़िन्दगी में सुधार लाने की भरसक कोशिश करती हुई नज़र आती है। रेवती एक ऐसी माँ है; जो खुद आधुनिक लहजे की है। लेकिन बच्चों को भारतीय संस्कार देना चाहती है। इन सभी माँओं के अनुभवों से हमें कई ज्ञान प्राप्त होते हैं। आजकल के अभिभावकों को अधिक उदार, अधिक सहनशील, क्षमाशील, सहानुभूतिपूर्ण होना चाहिए। बच्चों को कम उपदेश और अधिक स्वतंत्रता देनी चाहिए, फिर भी उन पर से ध्यान नहीं हटना चाहिए। कामकाजी माओं को हर कदम अत्यन्त सूक्ष्मदर्शी तथा दूरदर्शी होकर उठाना चाहिए। जो भी बच्चे जिस किसी भी क्षेत्र में नाम कमाते हैं, उसमें उनके

माता–पिता या विशेषकर माँ की विशेष भूमिका होती है। डॉ. रजत ने डॉ. महक की तारीफ करते हुए जो वाक्य कहा है, वह अभिभावकों के लिए आप्तवाक्य होना चाहिए। उसी को उस लेख की अन्तिम उक्ति बनाना समीचीन होगा। वह इस प्रकार है – महक, आज जो तुमने भूमिका निभाई है, वह काबिले तारीफ़ है। साइबर युग में माँ की सतर्कता, माँ का वाक्चातुर्य, बुद्धि कौशल, ग्राह्य शक्ति सबके चलते ही हमारे बच्चे सफल हो पाए हैं। ये ही साइबर माँ के मूल्य होना चाहिए।

डॉ. सूर्या बोस
अतिथि सहायक आचार्य,
एम. ई. एस. अस्माबी कॉलेज
प. ओ.– पी वेम्बल्लूर
कोदुन्गल्लूर
त्रिश्शूर जिला,
केरल

●

20

भीष्म साहनी की कहानियों में मातृत्व का चित्रण

नर और नारी प्रकृति की सबसे सुन्दरतम सृष्टि है। इसके युग्म से ही प्रकृति सृष्टि के विकासक्रम को स्थिर रखती है। स्त्रियों का आदि शक्ति के रूप में मानने की परम्परा धर्मग्रन्थों में प्राचीनकाल से ही है।

नारी को जीवन में कई रूपों का धारण करना पड़ता है, 'वह किसी की पत्नी है तो किसी की पुत्र वधू किसी की भगिनी है तो किसी की भाभी, किसी की माँ है तो किसी की सास; कहीं शिक्षिका है, तो कहीं स्वयं सेविका; कहीं प्रेयसी है तो वही परित्यक्ता तो कहीं वीरांगना है तो कहीं वैधव्य–संतप्त।' इन सभी रूपों में उसको अपने कर्तव्य निभाने पड़ते हैं। अपने विविध रूपों में स्त्री ने पुरुष को संवर्धन, प्रोत्साहन और शक्ति दी है।

वैदिक काल से आज तक स्त्री के रूप में जो पद सर्वाधिक सम्मानित एवं गौरवान्वित रहा है वह स्त्री का मातृ रूप है। नारीत्व की पहचान मातृत्व से ही होती है। महाभारतकार ने माँ की महिमा का वर्णन करते हुए लिखा है –

"नास्ति मातृसमा छाया नास्ति मातृसमा गति
..... नास्ति मातृसमा प्रिया।

अर्थात् माता जैसी शीतल छाया, आश्रय स्थान, रक्षा स्थान या प्रियवस्तु नहीं है। सन्तान को जन्म देने से वह जननी, उसके अंगों के पुष्टि वर्द्धन से अम्बा, कहलाती है। उसके रहने से सब सनाथ और न रहने पर अनाथ हो जाते हैं। याज्ञवल्क्य 'माता का स्थान पिता और गुरू से भी श्रेष्ठ माना है।' एक सन्यासी होने पर भी माता का अन्तिम संस्कार करने वाले शंकराचार्य ने माँ के बारे में जो शब्द कहे हैं वे महत्त्वपूर्ण हैं – "प्रसूति के समय की असह्य वेदना, शरीर का सूखना, साल भर तक मूल–मूत्र से भरी खाट पर सोने का कष्ट उठाना मामूली बात नहीं है।' जो कुछ भी हो नारी में ममता, वात्सल्य की भावना आदि सहज, स्वाभाविक और प्राकृतिक है। दया, ममता, प्यार, करुणा के रूप बनकर खड़े रहे माँ का चित्रण भीष्म साहनी ने अपनी कहानियों में किया है।

'चीफ की दावत' इसमें विशेष उल्लेखनीय है। संतान के लिए माता जो भी प्रयत्न करती है, उसकी देख–रेख, उसकी मंगल कामना और अपनी स्नेहमयी

वृद्धि के अनुसार उसे अच्छे पथ पर स्थिर रखने का कार्य, माँ अपने जीवन भर करती रहती है। लेकिन बदले में उसे सिर्फ घृणा, नफरत और अवमानना ही मिलती है। कहानी में चीफ से माँ को छुपाने के लिए बेटा शामनाथ भरसक प्रयत्न करता है। माँ को फालतू चीज़ की तरह यहाँ वहाँ छुपाने की कोशिश करते हैं। जब चीफ़ न उसे देखा तब शामनाथ क्रुद्ध हो जाता है और माँ को धक्का देकर उठाना चाहता है। बेटे का यह व्यवहार हमारे नैतिक मूल्यों के पतन का स्पष्ट दस्तावेज़ है। भारत में माँ का स्थान ईश्वर तुल्य है। वर्तमान समाज में फैली पाश्चात्यवादी संस्कृति और अर्थ एवं पदोन्नति हासिल करने की लालसा ने व्यक्ति को हृदय शून्य और पिपासु बना दिया है। माँ का व्यक्तित्व और उनकी बनायी कलाकृति से चीफ बहुत प्रभावित होता है। बेचारी माँ अपने बेटे का उज्ज्वल भविष्य और तरक्की मिलने के लिए फुलकारी बनाने को तैयार हो जाती है। यहाँ माँ बेटे के सारे अपमानजनक व्यवहार को भूलकर उनकी उन्नति और सफलता की कामना करती है। दूसरी तरफ शामनाथ प्रतिष्ठा और पद के लिए अपनी माँ की ममता और प्यार का शोषण करता है। मातृहृदय की ममता को वो नकारता है।

'गंगो का जाय' नामक कहानी में एक गर्भवती माँ का चित्रण किया है। आर्थिक विषमता और बेकारी की समस्या ने गंगो और घीसू को अपने छह वर्ष के बेटे रीसा को जूता पालिश करने के काम के लिए भेजने को मजबूर कर देते हैं। रीसा की उम्र खेलने–कूदने की है फिर भी बेटे को घर चलाने के काम के लिए भेजनेवाली गर्भवती माँ के मन की पीड़ा और वेदना का चित्र इसमें दर्शाया है। आधी रात हो जाने पर भी रीसा लौटकर नहीं आता है। कहानी की अंतिम पंक्तियाँ सबकी आँखों को आर्द्र बना देती हैं। "गंगो झोपड़े की बालिश्त भर ऊँची छत को ताकती हुई चुपचाप लेटी रही। उसी वक्त गंगों के पेट में उसके दूसरे बच्चे ने करवट ली। जैसे संसार का नवागंतुक संसार का द्वार खटखटाने लगा हो और गंगो ने सोचा – यह क्यों जन्म लेने के लिए इतना बेचैन हो रहा है? गंगों का हाथ कभी पेट के चपल बच्चे को सहलाता, कभी आँखों में आँसू पोंछने लगता।" माँ की ममता प्यार, बच्चा नष्ट हो जाने की व्यथा, पीड़ा, निराशा सबका यथार्थ अंकन कहानी में हुआ है।

माँ जननी कहलाती है। बेटा या बेटी को जनम देने से ही वह माँ कहलाती है। हर स्त्री के अन्दर जन्म से ही मातृत्व की भावना निहित है। 'फूलाँ' नामक कहानी के माध्यम से साहनी जी ने मातृत्व का एक अलग रूप हमारे सामने लाते हैं। फूलाँ को खुद के बच्चे नहीं हैं लेकिन वह एक बिल्ली 'माणो' को खुद के बच्चे की तरह पालन–पोषण करती है। माणो के प्रति उसका प्यार गहरा और दृढ़ था। माणों के बारे में यों कहता है – "मैं उसके कौन–कौन से गुण गिनाऊँ बहिन जी, मैं उसे छाती से लगाकर सोती थी। रात को वह रोज अपना बिस्तर

छोड़कर चुपके से मेरे पाँयते आ घुसती, मैं उसे खींचकर छाती से लगा लेती। कभी उसने मुझे तंग नहीं किया। मैं जो कहूँ नीचे बैठ तो नीचे बैठती ...। दूध सामने पड़ा रहता, जब तक मैं न कहूँ मुँह न लगाती।" एक माँ और बच्चे के बीच किस तरह का व्यवहार चलता है उसी तरह फूलाँ और माणो के बीच में भी वही प्यार, दुलार, ममता, वात्सल्य, हँसना, रोना आदि का भाव देखने को मिलता है। खुद के बच्चे को जितना प्यार स्त्री को दे सकता है उतना ही प्यार प्रकृति के सभी जीव–जन्तुओं को देने की शक्ति स्त्री के अन्दर निहित है; फूलाँ इसका एक उज्ज्वल उदाहरण है। निसंतान फूलाँ ने माणो को प्यार करके यह भूल गया कि वह निःसंतान है। नारी की असीम ममता का एक अलग रूप यहाँ साहनी जी ने अभिव्यक्त किया है।

भीष्म साहनी जी की एक बहुचर्चित कहानी है 'माता–विमाता'। इसके लेखक एक ऐसी समस्या हमारे सामने रखते हैं कि सन्तान पर अधिकार जन्म देने वाली माँ का है या पालन–पोषण करने वाली माँ का है? एक रेलवे प्लेटफॉर्म पर दो औरतें बच्चे को लेकर झगड़ रही हैं। माँ ने बच्चे को दूसरी औरत को इसलिए दिया है कि उसके पास कुछ भी नहीं है। न पैसा, न घर, न परिवार। किसी आदमी ने उसे गर्भवती बनाकर छोड़ दिया है। अब वो औरत बच्चे को किसी अनजान जगह पर जाने की बात सुनकर बच्चे की माँ टूट जाती है रो–रोकर बच्चे को वापस माँगती है। एक तरफ बच्चे को जन्म देते ही माँ को हालातों की वजह से मजबूरन अपनी ममता और प्यार को अन्दर छिपाकार बच्चे से अलग रहना पड़ता है तो दूसरी बच्चे को जन्म न देने पर भी बच्चे को उतना प्यार और स्नेह देती है जितना कि जन्मदात्री माँ देती है। कहानी का अन्तिम प्रसंग इतना मर्मस्पर्शी बन जाता है कि बच्चे के लिए आपस में खूब झगड़ती औरतें अन्त में बच्चे को पालने पोसने की ओर ध्यान देकर बैठ जाता है – "बनजारन अपनी गोद में बच्चे को लिटाये, उसे अपने आँचल से ढके, दूध पिला रही थी और पास बैठी बच्चे की माँ धीरे–धीरे अपने लाड़ले के बाल सहला रही थी।" अन्त में दोनों माँ बच्चे के साथ वात्सल्य सूत्र में बाँधी जाती है।

इस तरह भीष्म साहनी जी की कहानियों में माँ, मातृत्व का आदर्श रूप बनकर खड़ी रहती है। माँ के अन्दर असीम शक्ति है। बच्चे की शिक्षा की शुरुआत माता के उदर से ही शुरू हो जाती है। बच्चे को प्यार और वात्सल्य देने के साथ–साथ सुविचारों की शिक्षा और अच्छे संस्कार देने में माँ का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आज के इस उत्तराधुनिक युग में शिक्षा सम्पन्न नवयुवतियों में मातृत्व के प्रति उदासीनता के भाव देखने को मिलता है। माँ बनना अपने स्वतंत्र जीवन में बाधा समझती हैं। यह पाश्चात्यवादी संस्कृति का परिणाम है।

भारत में नारी का महत्त्वपूर्ण स्थान है माता के रूप में पूजनीय होने से उसे महिषा कहा जाता है। माँ आद्य गुरू है। हर व्यक्ति की उन्नति के पीछे एक माँ का त्याग, ममता, वेदना, पीड़ा और कठिनाइयों का समय जरूर होगा। बच्चे को अच्छे संस्कार, अच्छे मूल्य, अच्छे व्यक्ति और उत्तम नागरिक बनने में माँ की अहम् भूमिका है। कुरान की यह सुन्दर उक्ति है कि स्वर्ग तुम्हारी माता के चरणों में स्थित है। यदि ईश्वर ने धरती पर जन्म लिया है तो सिर्फ और सिर्फ माँ के रूप में ही है।

डॉ. ह्रद्या. एम. पी.
शोध छात्र – हिन्दी विभाग,
कालीकट विश्वविद्यालय

●

21

'अर्थ' और मातृत्व

माँ, इस दुनिया की सबसे अनमोल अनुभूति। माँ की ममता के आगे, दुनिया की हर ताकत फीकी होती है और शायद इसकी जगह भगवान भी नहीं ले सकता। उस ममता की छाँव में पलकर उसकी उँगली पकड़कर हम अपना कदम आगे बढ़ाना सीखते हैं। गिरने पर वह सँभालती है। वह अपने बेटे को लाड़–प्यार देकर, डाँटकर, दुलारकर उसे सही मायने में एक मनुष्य बनाती है। ऐसे बच्चे जब बड़े हो जाते हैं और समाज में कामयाबी हासिल हो जाती है, तब वे अपनी माँ से दूर–दूर जाते हैं। उसके लिए एक समय ऐसा भी था जो माँ को देखे बिना एक पल भी नहीं रह सकता था और उसकी लोरी सुने बिना सो नहीं सकता था। माँ हमेशा अपने बच्चों के उज्ज्वल भविष्य को गढ़ने में आतुर रहती है। लेकिन आधुनिक मानव पल भर में रिश्ते को तोड़ने में कोई कसर नहीं छोड़ता। शशिप्रभा शास्त्री की 'अर्थ' नामक कहानी, मातृत्व के प्रति जो निषेध भाव हे, उस पर विचार करने के लिए हमें बाध्य करते हैं।

युवा पीढ़ी जब अर्थ के पीछे भागते हैं, तब एक माँ का अर्थ कहीं खो जाता है। जीवन की साँझ बेला में उसे अकेलापन भी भोगना पड़ता है। 'अर्थ' नामक कहानी में परिवार में बढ़ती संवादहीनता के कारण, अपने अंदर की घुटती रहती एक माँ की वेदना का वर्णन है। यह संवादहीनता किस प्रकार एक माँ को 'पैरालिसिस' (Paralysis) की स्थिति में पहुँचाया है इसकी ओर कहानीकार हमारा ध्यान खींचती है। यह सिर्फ एक माँ की कहानी नहीं है, आजकल ऐसी अनेक माँ हैं जो भीतर ही भीतर घुटती, सुबकती हैं और अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए तड़पती रहती हैं।

'अर्थ' कहानी में एक माँ है जो बीस साल पहले भारत से अपने पति और बच्चों के साथ नाइजीरिया आकर बस गयी है। घर में पति और बच्चों का ध्यान रखते हुए वह खुशी–खुशी रहने लगी थी। उसे हमेशा भारत के अपने पास–पड़ोस की याद आया करती थी। उसके हृदय में एक बेनामी टीस जागती पर वह अपने पति और बच्चों के साथ सब कुछ झेलती आ रही थी। वहाँ पर उसके एक बेटे रोशन की मृत्यु हुई थी। इसकी टीस भरी याद उस माँ को भीतर गहरे तक छेदने

लगती थी, बाद में वह अपने दुःख में ही मुब्तिला होकर खुद से ही अपने को समझा लिया था और धीरे–धीरे बच्चों और घर के बीच वह फिर रमने लगी थी। उन्होंने दोनों बेटियों की शादियाँ भारत में ही करवा दी। तब उसका बेटा विजय इंग्लैण्ड में पढ़ रहा था। उसके बीच उसके पति का भी मृत्यु हुई। उसके बाद वह अपनी लड़कियों के साथ भारत में ही रहती थी। विजय की पढ़ाई के बाद वह माँ को इंग्लैण्ड ले गया। माँ बेटियों के साथ रहना विजय के लिए प्रतिष्ठा का प्रश्न था। वह कहता है, "माँ जहाँ मैं रहूँगा, वहीं तुम रहोगी। रीमा या रानी किसी के साथ भी तुम्हारा रहना मैं बर्दाश्त नहीं करूँगा। पापा के बाद ज़िम्मेदारी अब मुझ पर है, किसी दूसरे पर नहीं। इसे मैं अच्छी तरह समझता हूँ, आप भी समझ लीजिए।"[१] यहाँ एक बेटे की प्रतिष्ठा के सामने एक माँ की पसन्द या उसकी इच्छा–अनिच्छा कोई मूल्य ही नहीं रहती है।

विजय के इंग्लैण्ड में ही जन्मी–पली अपने भारतीय मैनेजर की बेटी मोना से शादी किया। भारत की बोली–बानी उसके लिए अपरिचित थी। सास के साथ भारत की बोली–बानी में बातचीत करने का उसे न अभ्यास था, न उस बोली से उसका परिचय। इसलिए सारा–सारा दिन वह गूँगी सी बैठी रहती। अधिकतर काम भी मोना ही करती सँभालती, उसके लिए कोई दूसरा काम भी नहीं रह गया था। पति की याद तब उसे बेहतर सताने लगी। विजय से उन दिनों भारत जाकर चाचा–चाची से मिल आने की बात करने लगी थी। जब विजय ने कहा – "माँ तुम्हें भी क्या होता है, यहाँ अच्छी–खासी रह रही हो, पर कभी–कभी ज़्यादा मिठाई भी आदमी का उबा देती है, है न यही बात?"[२] यहाँ बेटे ने माँ को अधिक सुखी कहने का प्रयास किया है। लेकिन माँ की बात उल्टी थी। दिल ही दिल में वह घंटों मथती रहती, पर देश लौटने के कोई अवसर नज़र नहीं आते थे। बेटा और बहू दोनों घर में अंग्रेज़ी में बातें करते थे। तब उसे उन दिनों की याद आने लगी, जब बचपन में विजय उससे चिपटकर अपने स्कूल की बातें सुनाता था। अपनी भाषा में अपनी ही बोली बानी में। अब ये बेगानी भाषा उसे कितना कष्ट पहुँचाती है। माँ भी यह सोचती थी बहू–बेटी अपनी मनपसंद भाषा में बोलते–बतियाते हैं, तो उसे परेशानी क्यों होनी चाहिए? एक दिन माँ ने बेटे से कहा – "भाषा मुझे सबसे बुरी तरह काटती हैं।"[३] बेटे का जबाव यह था – "माँ तुम अपने काम से काम रखो। तुम्हें किसी के बोलने से क्या मतलब?"[४]

यहाँ बेटे ने कभी भी अपनी माँ की भावना को समझने की कोशिश नहीं की। ज़िन्दगी की निरंतरता में ऊबकर, किसी के कुछ कहने के अधिकार से वंचित माँ एक दिन 'पैरालिसिस' की चंगुल में फँस जाती हैं। उसके हाथ–पैर ऐंठते चले जा रहे थे, और वह समूची टेढ़ी होती जा रही थी। माँ सिर्फ अपनी बहू के होठों से निकले वही शब्द पहचानती थी जो 'पैरालिसिस'। सिर्फ उसी शब्द के अर्थ को ही वह समझ सकी। आगे उन शब्दों को चौहद्दी में ही फँसे रहना होगा उसे अब।

आज ऐसे, अनेक माँ पैरालिसिस की स्थिति में है, सब कुछ सुनते हुए, सब कुछ देखते हुए, लेकिन कुछ भी नहीं बोल सकती। जिसके लिए वह अभी तक जी रही थी, उसी से नज़र अंदाज़ की भावना की भावना को भी भोगना पड़ती है। पैगम्बर मुहम्मद ने कहा था, माँ के चरण में ही स्वर्ग बसते हैं। जिस माँ के चरण में स्वर्ग बसते हैं, उसी माँ को बच्चे अपने चरणों से किसी बंद कमरे की ओर ढकेलते हैं। भीष्म साहनी जी की कहानी 'चीफ की दावत' के शामनाथ अपने माँ के प्रति ऐसी मानसिकता रखनेवाले मध्यवर्ग का प्रतीक है। आज मानव ब्रह्मराक्षस की तरह पैडी के अँधेरी सीढ़ियों पर चढ़ कर 'अच्छे व उससे अच्छे' को प्राप्त करने के लिए व्यस्त है। तब वे अपने परिवार को भी ध्यान नहीं देते हैं। मातृत्व के प्रति निषेध भावना भी बढ़ाते रहते हैं। तब एक साहित्यकार का दायित्व होता है कि पारिवारिक रिश्तों में लगी इस काई को मिटाने के लिए नयी पीढ़ी को जागृत करना। इस दृष्टि से शशिप्रभा शास्त्री की 'अर्थ' कहानी बहुत सक्षम हुई है।

संदर्भ ग्रंथ :

१. चर्चित कहानियाँ, शशिप्रभा शास्त्री, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. ६०
२. वही, पृ. ६१
३. वही, पृ. ६४
४. वही, पृ. ६४

शहला के. पी.
शोध छात्रा,
कालिकट विश्वविद्यालय

●

22

सशक्त मातृत्व का अंकन : कस्तूरी कुंडल बसै के सन्दर्भ में

जन्म से मृत्यु तक इंसान को अपने प्रेम, त्याग, आकांक्षाओं से प्रभावित करने वाली एक ही व्यक्ति अपनी माँ ही है। मातृत्व का वह अनमोल भाव बच्चों पर सदा निस्वार्थ प्रेम के रूप में बरसता है। स्त्री जीवन का अर्थपूर्ण पक्ष होता है मातृत्व। माँ का सहन, प्रेम की अजस्रधारा के सामने दुनिया का सब कुछ फीका पड़ जाता है। नयी पीढ़ी को सही दिशा दिखाने में माँ का योगदान अमूल्य है।

साहित्य मानव जीवन पर केन्द्रित है। इसलिए ही मातृत्व का भाव अपने में खींचने का प्रयास साहित्य में होता है। हिन्दी साहित्य की सारी विधाओं में इस पक्ष का उद्घाटन हम देख सकते हैं। मातृत्व का कोमल भाव, दया, त्याग, आकुलताएँ, आकांक्षाएँ, सार पक्षों को अभिव्यक्त करने का प्रयास साहित्य में होता है। माँ सिर्फ कोमल भाव ही नहीं सशक्त स्त्रीत्व का प्रतीक भी है। इस सशक्त स्त्री पक्ष का भी उद्घाटन साहित्य में हुआ है।

मैत्रेयी पुष्पा सशक्त समकालीन महिला साहित्यकारों में एक हैं। उनकी रचनाओं में जीवन के सभी पहलुओं को यथार्थ दृष्टि से प्रस्तुत करने का महत्त्वपूर्ण प्रयास मिलता है। स्त्री के आन्तरिक एवं बाह्य संघर्षों को उन्होंने अपने उपन्यासों में वाणी दी है। मैत्रेयी पुष्पा के बहुचर्चित उपन्यास है – 'कस्तूरी कुंडल बसै।' उपन्यास कस्तूरी की कहानी है पुत्रि मैत्रेयी की भी। मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी माँ के जीवन का प्रस्तुत करते हुए एक सशक्त नारी के साथ–साथ प्रभावशाली माँ का परिचय दिया है।

मैत्रेयी पुष्पा के इस उपन्यास माँ–बेटी की आपसी आत्मीय संबंधों का एक नया अध्याय बनकर हमारे सामने सम्मुख प्रस्तुत होता है। मैत्रेयी पुष्पा के शब्दों में – "यही है हमारी कहानी। मेरी और मेरी माँ की कहानी। आपसी प्रेम, घृणा, लगाव और दुराव की अनुभूतियों से रची कथा में बहुत सी बाते ऐसी हैं, जो मेरे जन्म से पहले घटित हो चुकी थीं, मगर उन बातों को टुकड़ों–टुकड़ों में माताजी ने जब तक बता डाला, जब–जब उन्हें अपनी बेटी को स्त्री जीवन के बारे में नए सिरे से समझाना पड़ा।"[१] मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यास में कस्तूरी देवी की

ज़िन्दगी के माध्यम से एक ग्रामीण माँ का परिचय दिया है जिसने अपने जीवन संघर्षों का पूरी ताकत के साथ सामना किया है। विधवा होने के बाद ही कस्तूरी शिक्षा प्राप्त करके अपनी बेटी मैत्रेयी की पढ़ाई एवं नौकरी के लिए प्रयत्न करती है। सामाजिक बन्धनों, मर्यादाओं से संघर्ष करके जीवन में आत्मनिर्भर होने वाली कस्तूरी में स्त्री का आत्मसम्मान एवं प्रतिरोध करने की हिम्मत दिखाई देती है। पति के मरने के बाद जब कस्तूरी ने पढ़ने के लिए किताब, झोला उठाया तो सभी लोग उसे पागल मान लिया। उपन्यास कहता है – "आशाएँ ढकेलती रहीं, सपने द्वार खोलकर सामने खड़े थे। दुविधाओं में अब क्या सार? मुगज में लगी हुई सुई घेरे में अटककर एक ही स्वर पर लग गई है – आओ, आओ आगे बढ़ो। फैसला अपना था, फैसला लिया। स्कूल जाने वाली झोला लटकाए औरत को भौंचक होकर सबने देखा। वह इस कदर परेशान हुई किसी को तो क्या, रास्ते के कंकड़–पत्थर और चढ़ाव–उतार तक न देख पाती। ठोकर लगी मुँह के बल गिरी। झेंपती हुई स्त्री चोट और दर्द भूलकर चुपके से उठती, धूल झाड़कर धीमे से खड़ी होती। आस–पास तामशागीर होते। हँसते, मुस्काते, बूढ़े, जवान और बच्चे। औरतें घूँघट में कैसा चेहरा लिये रहतीं, पता न चलते। बस इतना पता चल गया कि उसे लोगों ने पागल मान लिया है।"[२] इस तत्काल प्रतिकूल परिस्थिति में हिम्मत न तोड़नेवाली संघर्षरत एक विधवा माँ का चित्र प्रस्तुत करते हुए तत्कालीन समाज ने स्त्री संघर्ष का चित्र लेखिका ने हमारे सामने सम्मुख रख दिया। जीवन को आगे बढ़ाने के लिए, अपनी बेटी के पालन–पोषण के लिए, समाज से संघर्ष करनेवाली, विधवा माँ का चित्र मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी माँ के माध्यम से खींचा है जो स्त्री–जीवन का यथार्थ है।

उपन्यास की कस्तूरी देवी स्त्री जीवन की सार्थकता आत्मनिर्भरता में देखती है। शादी करके पुरुष के पैरों के नीचे अपना जीवन दबाकर रखना वह नहीं चाहती थी। कस्तूरी के मन में विवाह के लिए व्यापार से अधिक कोई स्थान नहीं था। उपन्यास में मैत्रेयी से कस्तूरी का कथन है – 'तू मुझे गलत समझ रही है। मेरा मतलब यह नहीं कि विवाह बुरी चीज़ है। यह औरत के लिए ऐसा बन्धन पैदा करता है, जो जीवन भर करते रहते हैं। पति के रहने पर भी और न रहने पर भी। पति का पसन्द और नापसन्द दोनों औरत पर ही भारी पड़ती है। तूने किसी विधुर को विधवा की तरह रहते देखा है? किसी छोड़ी हुई औरत की तरह पुरुष का अपमान होता है?"[३] इस प्रकार माँ बेटी मैत्रेयी को सामाजिक यथार्थताओं से परिचित कराने की कोशिश करती हुई दिखाई देती है। पुरुष वर्चस्व समाज में स्त्रियों की दुःस्थिति की ओर मैत्रेयी का ध्यान आकर्षित करते हुए जीवन में शिक्षा के सहारे आत्मनिर्भर बनाने की प्रेरणा बनकर खड़ी होती है, उसकी माँ कस्तूरी देवी। माँ के अनुसार घर के चार दीवारों के बीच कैद होने की चीज़ नहीं है, स्त्रियों की ज़िन्दगी।

प्रतिकूल परिस्थिति में संघर्ष करके कस्तूरी समाज की मुख्यधारा की ओर आगे बढ़ने का चित्र उपन्यास में प्रस्तुत हुआ है। कस्तूरी ग्रामसेविका बन गयी। नौकरी पाकर आत्मनिर्भर होना उसके लिए गुलामी से मुक्ति ही थी। उसने स्त्री समाज की प्रगति के लिए शिक्षा का प्रचार किया। उपन्यास में नम्बरदास मैत्रेयी को समझाता है – "तेरी माँ सदा से समय की पाबन्द है। कोताह करना आता नहीं। फिर अब तो नई नौकरी का जोश है जिसे बीसियों वर्षों के अँधेरे के बाद उसने कोई नया उगता सूरज देखा हो। ऐसी आज़ादी, जैसे देश आज़ाद हुआ। हमने जश्न मनाया था। गाँधी नेहरू की जय बोलते हुए चेहरे चमकने लगते थे। ऐसा ही उत्सव तेरी माँ के मन में रचा है, जिसकी रोशनी वह हर कहीं बिखरे देना चाहती है।"[४] मैत्रेयी की माँ मात्र अपनी बेटी की जीवन की रोशनी थी, बल्कि समाज के दीन, असहाय स्त्रियों की भी।

स्त्री को लेकर समाज में जिन मर्यादाओं की प्रतीक्षा है, उनका लंघन धिक्कार के रूप में माना जाता है। कस्तूरी ने जब पति के मौत पर रुदन नहीं किया तो लोगों ने उसको आश्चर्य की दृष्टि से देखा जैसे उसने कोई अनर्थ किया है। कस्तूरी अपनी माँ से कहती है – "यह मेरा बस का नहीं चाची, क्योंकि अब मैं अपनी ज़िन्दगी और बेटी की नन्हीं जान को लेकर ही सोच पाती हूँ। मुझे लोग धिक्कार रहे हैं जानती हूँ। धिक्कार किसे अच्छी लगती है? पर कैसे समझाऊँ कि मेरे सामने आने वाले दिन बाघ की तरह मुँह फोड़ खड़े हैं। मैं आने वाली घड़ियों से छुटकारा पाकर बच जाऊँगी? हर हाल में सामना करना होगा।"[५] कस्तूरी ने जीवन को व्यावहारिक तौर पर देखने की कोशिश की थी। समाज की परम्परागत मर्यादाओं से मुँह मोड़नेवाली सशक्त स्त्री का परिचय कस्तूरी के माध्यम से होता है। अपनी बेटी के लिए, सारे बन्धनों को तोड़कर संघर्ष करके आगे बढ़नेवाली विधवा माँ का परिचय मिलता है।

मैत्रेयी स्त्री की सुरक्षा एवं सुख पति के हाथों में मानती थी। शादी के लिए जब मैत्रेयी ने ज़िद्द की तब माँ की आकांक्षाएँ टूटीं। फिर भी बेटी के लिए वर ढूँढ़ने निकली। विधवा माँ की सीमाएँ भूलकर अपनी बेटी की इच्छा के लिए निकली कस्तूरी पुरुषवर्चस्व समाज की मर्यादाओं के सामने अपने को कई बार अपमानित महसूस की। बेटी की शादी के सन्दर्भ में घर में कोई पुरुष न होने की वजह से कस्तूरी अपमानित हो जाती है। उपन्यासकार कहता है – "यह है उनका समाज। इस समाज में मनुष्य तो क्या औरत भी नहीं सिर्फ राँड़ है, विधवा बस! ऊपर से निपूती। साख के लिए कोई रूख तो क्या, कोंपल तक नहीं। पुरुषों जैसे काम करने से पुरुष की ज़रूरत होती है, भले वह पाँच या दो साल का हो पति और बेटा कहाँ से लाए कस्तूरी?[६] अपनी बेटी के लिए सामाजिक रूढ़ियों से संघर्ष करने वाली, अपना आक्रोश एवं बेबसी प्रकट करनेवाली विधवा माँ के शब्दों का परिचय यहाँ होता है।

उपन्यास में मैत्रेयी पहले तो अपनी माँ को सही ढंग से पहचान नहीं लेती। मातृत्व का कोमल भाव मैत्रेयी अपनी माँ में कभी नहीं देखी। बच्ची मैत्रेयी इसकी शिकायत करती रहती थी। मैत्रेयी जब माँ बनती है और पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन की यथार्थताओं से परिचित होती है, तब अपनी माँ कस्तूरी की जीवन दृष्टि को समझ पाती है। पहले तो मैत्रेयी शादी करके पति के साथ सुखमय जीवन बिताना ही सबसे ऊपरी बात समझती थी। संघर्षों से मुँह मोड़कर चिन्तनहीन स्त्री के रूप में मैत्रेयी प्रकट होती है। जीवन के प्रति उनकी भावुक आकांक्षाएँ जब टूट जाती हैं तब अपनी माँ के विचारों से सहमत हो पाती है। जीवन की कटु यथार्थताओं का सामना करने के बाद मैत्रेयी समझ लेती है कि कस्तूरी अपने ही अंदर बसै है। अब तक पहचान नहीं पाया।

इस प्रकार कस्तूरी देवी के व्यक्तित्व एवं जीवन का प्रभाव बेटी मैत्रेयी पर गहराई तक पड़ा है। कस्तूरी देवी का जीवन तत्कालीन समाज की सजग ग्रामीण स्त्री का इतिहास ही बन जाता है जो समाज के परम्परागत बन्धनों को तोड़कर, अन्यायों के विरुद्ध आवाज़ उठाकर समाज की मुख्यधारा की ओर अग्रसर थी। कस्तूरी देवी ने, जीवन को नये सिरे से देखने समझने की दृष्टि अपनी बेटी को प्रदान की है। इस उपन्यास में ऐसी एक माँ का चित्र खींचा है जो अपने परिवेश से संघर्ष करके अपनी बेटी एवं दूसरी स्त्रियों को रोशनी दी है। मैत्रेयी के लिए माँ सिर्फ मातृत्व का कोमलभाव नहीं, एक त्यागमयी मार्गदर्शा है, प्रेरणा स्रोत है, जिन्होंने अपने प्यार को अन्दर समेटकर जीवन से संघर्ष करने की ताकत प्रदान की है।

संदर्भ ग्रंथ :

१. मैत्रेयी पुष्पा, कस्तूरी कुंडल बसै, पृ.
२. वही, पृ. ३२–३३
३. वही, पृ. ६४
४. वही, पृ. ५०
५. वही, पृ. २६
६. वही, पृ.

संध्या. इ. एन.
अतिथि आचार्य,
पारमेक्कावु आर्ट्स एण्ड साईंस कॉलेज,
तृश्शूर

●

23

अलका सरावगी के कथा-साहित्य में मातृत्व

भारतीय समाज में स्त्री का जो भी स्थान रहा है उसमें माँ का सवरूप सर्वाधिक प्रभावशाली रहा है। मानव की जन्मदात्री होने के नाते ही नहीं, मातृत्व की सार्वजनीन उदारता के कारण भी हमारे समाज में हर युग में मातृपद की प्रतिष्ठा निर्विवाद रहीं। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था – "पश्चिम की नारी पहले प्रेयसी है, फिर पत्नी, फिर माँ जबकि भारत की नारी पहले माँ है, फिर पत्नी इसके बाद प्रेयसी। यह एक बुनियाद अन्तर है।"[१] माँ के रूप में इतनी प्रतिष्ठित होने के बावजूद भी भारतीय समाज में नारी अबला ही रही। मातृपद हर एक नारी के लिए महिमा मंडित है। वह संतानों के संरक्षण में आने के बाद आश्रित व असहाय हो जाती है।

"समाज में स्त्री की जो भूमिका रही उसमें माँ का दर्जा सर्वाधिक मान्य व प्रभावशाली रहा। इसके बावजूद स्त्री को दूसरे दर्जे का इंसान माना गया। उसका दर्जा पुरुष से हीन या नीचे है, जो शारीरिक रूप से दुर्बल है, मानसिक रूप से अस्थिर है, बौद्धिक रूप से कम अक्ल और सृजन के ऊँचे कार्यों के लिए अक्षम है।"[२] स्त्री एक शरीर धारी प्राणी होते हुए भी वर्तमान युग में भोग्य की वस्तु बन गयी है। प्रत्येक व्यक्ति उसके साथ सिर्फ औरत जैसा व्यवहार करता है। लेकिन वह सिर्फ एक औरत नहीं बल्कि समाज की वह धुरी है जिस पर परिवाररूपी समुदाय के निर्माण की जिम्मेदारी है। 'विराट पुरुष' की 'एकोडहं बृहुस्याम' की इच्छा माता द्वारा ही क्रियान्वित होती है। मरणप्राय वेदना सहकर शिशु को जन्म देने वाली माता अपने बच्चे के रूप में मानो चारों धाम पाती है। मशहूर आलोचक मैंग्डुगल के अनुसार – "मनोवैज्ञानिक दृष्टि से पुरुष की अपेक्षा स्त्री में वात्सल्य भाव अधिक मात्रा में होता है।"[३]

इस प्रकार संसार में स्त्री का 'माँ' रूप सबसे विराट होता है। बदलते समाज में नारी विषम परिस्थितियों को झेलकर भी आगे बढ़ती है। लेकिन नारी के मातृत्व की शोभा सदा समय अक्षुण्ण बनी रही है। स्वातंत्र्योत्तर कथा–साहित्य में नारी के इस रूप को अनेक कथा लेखिकाओं ने प्रस्तुत किया है। हिंदी कथा–साहित्य में संतानों के लिए चिंतित माँ के विभिन्न रूप पाये जाते हैं। जैसे भावनाशील माँ विद्रोही माँ आदि।

अलका सरावगी के कथा–साहित्य में माँ के विभिन्न रूप पाये जाते हैं। जैसे – 'मिसेज डिसूजा के नाम' कहानी की (वंदिता की माँ) 'बीज' की (अविनाश की पत्नी की माँ) 'दूसरी कहानी' की (अर्पणा), 'कोई बात नहीं' की (शशांक की माँ) आदि। इनमें उनके प्रमुख उपन्यास 'कोई बात नहीं' और प्रमुख कहानी संग्रह 'दूसरी कहानी' में अपने अपंग बच्चे को सक्षम बनाने के लिए सतत प्रयत्न करनेवाली 'माँ' का सुन्दर चित्रण मिलता है। इसमें अपंग बच्चे के लिए भावनाशील बनी माँ के मन की व्यथा को चित्रित किया गया है।

'कोई बात नहीं' उपन्यास शारीरिक रूप से अक्षम एक ऐसे बच्चे के जीवन का सारांश है, जो कि ज़िन्दगी के संघर्षों को झेलता हुआ अपनी दुनिया में होने का आँसू खोजता है। उसके इस संघर्ष में माँ उसकी ऊर्जा, शक्ति और हिम्मत बनती है जो उसके जीवन का आधार और सम्बल भी है।

शशांक सत्रह साल का एक लड़का है जो दूसरों से अलग है क्योंकि वह दूसरों की तरह चल और बोल नहीं सकता। कलकत्ता के एक नामी मिशनरी स्कूल में पढ़ते वकत अपनी गैरबराबरी के जीते हुए उसका संबंध तरह–तरह की दूसरी गैरबराबरियों से भी होता है जो हमारे समाज में आस– पास कुलबुलाती रहती है। स्कूल में उसका एकमात्र दोस्त आर्थर सरकार है। "शशांक का जीवन चारों तरफ से तरह–तरह के कथा–किस्सों से घिरा है। एक तरफ उसकी आरती मौसी है, जिसकी प्रायः खेदपूर्वक वापस लौट आने वाली कहानियों का अन्त और आरम्भ शशांक को कभी समझ में नहीं आता। दूसरी तरफ उसकी दादी की कहानियाँ हैं – दादी के अपने मुहावरों में दोहराई जाती कहानियाँ, जिनका कोई शब्द कभी अपनी जगह नहीं बदलता। लेकिन सबसे विचित्र कहानियाँ उस तक पहुँचती हैं। जतीन दा के मार्फत, जिनसे वह बिना किसी और को जाने, हर शनिवार विक्टोरिया मेमोरियल केक मैदान में मिलता है। ये सभी कहानियाँ आतंक और हिंसा के जीवन से जुड़ी कहानियाँ हैं जिनके बारे में हर–बार शशांक को संदेह होता है कि वे आत्मकथात्मक हैं पर इस संदेह के निराकरण का उसके पास कोई रास्ता नहीं है।"[४] इसी दौरान शशांक के जीवन में एक भयानक घटना घटती है, जिससे उसके जीवन में भूचाल आ जाता है। ऐसे समय में ये कथाएँ उसके लिए संजीवनी का काम करती हैं।

'कोई बात नहीं' उपन्यास में अपने अपाहिज बच्चे को सुधारने के प्रयास में लगी माँ के मन की व्यथा को चित्रित किया गया है। विवेच्य उपन्यास में शशांक की माँ कहती है, "अब हद हो गई है। मेरी यह हालत बना दी है तुम लोगों ने। क्या–क्या टोने–टोटके करवाए मुझसे। कितनी पूजा– पाठ करवाई मुझसे। कौन–कौन से पितरों की मन्नतें नहीं मनवाईं। कहीं भूल हुई थी शादी के वक्त। कोई पितर नाराज़ हो गए होंगे। किस–किस मंदिर मुझे नहीं भटकाया। कहाँ–कहाँ की जात नहीं दिलवाई। कितने कुलदेवता, सतियों के आगे नाक नहीं रगड़वाई।

मैंने सब किया अपने बच्चे के लिए। हर ईट पत्थर तक की पूजा की। तुम लोगों के कहने से। अब मैं कुछ नहीं करूँगी। मैं पागल हो जाऊँगी मेरा बच्चा ठीक न हो। मुझे कुछ नहीं चाहिए। मैं इस अँधेरे में और नहीं रह सकती और नहीं रहूँगी मैं इस तरह। तुम लोगों के दिल में जो आए सो करो। शशांक के साथ जो चाहे करो। पर मुझे मेरे हाल पर छोड़ दो।"[५] पाठक उपन्यास में अपने बीमार बच्चे की चिंता से बेचैन माँ की मानसिकता से परिचित होते हैं। मोटे तौर पर इसे शारीरिक रूप से कुछ अक्षम एक बेटे और उसकी माँ के प्रेम और दुख की साझेदारी की कथा के रूप में देखा जा सकता है, पर इसका मर्म एक सुंदर और सम्मानपूर्ण जीवन की आकांक्षा है।

'दूसरी कहानी' में अपने अपाहिज बच्चे को अच्छा करने में तल्लीन असहाय माँ के मन की भावनाओं को चित्रित किया गया है। अपर्णा सुदर्शन की माँ है। सुदर्शन अपंग है। अपने बच्चे को सुधारने के लिए अर्पणा हर तरह सतत प्रयत्न करती है। मन के इस संघर्ष के कारण नौवें साल में लिखी कहानी आज पंद्रहवें साल में आकर बहुत कुछ बदल गई। अपने बच्चे के खातिर अपने सारे रिश्ते–नातों को तोड़ दिया है। उसकी इस सहनशीलता को देखकर माँ कहती है – "कितना दुख झेलना पड़ा तुम्हें बेटी। कोई कभी सोच सकता था कि सब बहनों में तेज़ तुम्हारी जैसी लड़की को यह सहना होगा।"[६] इतना सहन करने के बाद भी सुदर्शन की शादी को लेकर अपर्णा चिंतित है। प्रस्तुत कहानी में अपने अपंग बच्चे का स्वास्थ्य सुधारने में असमर्थ माँ का चित्रण किया गया है। सुदर्शन उसके सुख का आधार है और सुदर्शन की बीमारी उसके जीवन को दुख का घर बना देती है। माँ बेटे की इस कहानी में अपर्णा ने दुनिया को घुसने नहीं दिया था।

नारी की माता रूप नारी जीवन की सार्थकता माना जाता है। उसके माता रूप में वह ममता और वात्सल्य की प्रतिमूर्ति मानी जाती है। मातृत्व के कारण नारी को परिवार में महत्त्व भी मिलता है। डॉ. शीला रजवार के अनुसार – "भारतवर्ष में मातृत्व में ही नारीत्व की पराकाष्ठा मानी गयी है। माँ को स्वर्ग से भी महान माना गया है।"[७] परिणामस्वरूप बच्चों के लालन–पालन, खाने–पीने, शिक्षा, वर्तमान और भविष्य के निर्माण की चिंता माँ को ही करनी पड़ती है। आज परिवार में माँ का यही रूप दिखाई देता है। नवजागरण के परिणामस्वरूप स्त्रियों के विचारों में परिवर्तन आया है। परन्तु वह अपनी जिम्मेदारियों से छुटकारा नहीं पा सकी।

नारी कभी माँ, कभी बेटी, कभी पत्नी और अनंत रूपों में विद्यमान है। इसमें माँ का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। माँ ममता, वात्सल्य, कारुण्य, त्याग, स्नेह आदि का मूर्तिमत भाव है। एक संतान को अपनी कोख में पालकर जन्म देने तथा उसे बड़े बनाने तक के समय माँ जितनी पीड़ाएँ सहती रहती है इसका कोई लेखा–जोखा वह नहीं रखती है। हर माँ अपनी सारी सुख सुविधाएँ परित्यक्तकर

अपने संतानों की भलाई के लिए निरन्तर प्रयास करती रहती है। जिस व्यक्ति को माँ को पालन–पोषण का सौभाग्य मिला है वह संसार का सबसे बड़ा भाग्यशाली है। उसी प्रकार जिसे मातृस्नेह न मिला है वह संसार का सबसे अभागा है। शिवदत्त ज्ञानी के शब्दों में – "माता शब्द पारिवारिक जीवन के लिए अमृत का भंडार है। वह क्या है, मानो परिवार में त्याग, तप और प्रेम की त्रिवेणी ही है। जिसे इस त्रिवेणी के पवित्र प्रेम जल में स्नान करने का सौभाग्य न मिला हो, उससे अधिक अभागा और दूसरा न होगा।"[८]

अधिकतर माताएँ अपनी संतानें के लिए अपना सारा जीवन बिताती हैं। अपनी संतानों के पालन–पोषण में वह सारे कष्टों को संतोष के साथ स्वीकार करती हैं। क्योंकि हर संतान को सुयोग्य बनाने की जिम्मेदारी माँ की है।

पारिवारिक आर्थिक परेशानियों में भी वह अपनी संतानों की इच्छाओं को प्रमुखता देती है वह कई तरह के कटु अनुभवों को सहकर अपनी संतानों की उन्नति के लिए सतत् प्रयत्न करती है। माँ के रूप में इतना प्रतिष्ठित होने के बावजूद भी भारतीय समाज में नारी अबला ही रही। मातृत्व का भाव चिरकाल से नारी को आन्दोलित करता रहता है। इस भाव से नारी सबके प्रति ममतापूर्ण व्यवहार करती है।

संदर्भ ग्रंथ :

१. औरत कल, आज और कल, आशारानी व्होरा, पृ. १८३
२. वही, पृ. १८४
३. डॉ. सौ. जे. एम. देसाई, हिंदी काव्य और नारी, पृ. १२ से उद्धृत
४. कोई बात नहीं, अलका सरावगी, पृ. फ्लैप से
५. वही, पृ. ६६
६. दूसरी कहानी, अलका सरावगी, पृ. १७
७. डॉ. शीला रजवार, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य में नारी के बदलते संदर्भ, पृ. १०५
८. भारतीय संस्कृति, शिवदत्त ज्ञानी, पृ. ६५

श्रीमती सिंधु. वी.
अतिथि आचार्य,
सेन्ट अलोष्यस कॉलेज, एलतुरुत्त
केरल

●

24

विष्णु प्रभाकर की कहानियों में मातृत्व

भारत की परम्परा यह रही है कि नारी जीवन के विभिन्न पड़ावों में मातृत्व की अवस्था में सर्वोच्च मानी गयी है, सबसे शक्तिशाली रूप मानी गयी है। लेकिन बात यह है कि मातृत्व की अवस्था में पहुँचकर ही भावात्मक स्तर पर वह सबसे अबला हो जाती है। इस भावात्मकता का लाभ उठाने के लिए समाज और व्यवस्था तुले रहते हैं। पुराने समय से लेकर समकालीन साहित्य तक अनेक रचनाकारों ने मातृत्व को लेखन का विषय बनाया है, इस दिशा में विष्णु प्रभाकर की कहानियाँ बहुचर्चित हुई हैं। विष्णु प्रभाकर की कहानियों की माताएँ कभी कभी ऐश–आराम की जिन्दगी बिताने वाली नारियाँ नहीं हैं, बल्कि निम्न–मध्यवर्गीय परिवारों की उलझनों को झेलनेवाली नारियाँ हैं।

हमारे देश में आज भी ऐसे परिवार हैं जो अपनी गरीबी और दुःस्थिति के कारण बच्चों के पालन–पोषण के लिए दूसरों के घर में या शरणालय में छोड़ देते हैं। विष्णु प्रभाकर की कहानी 'माँ की ममता' में अकाल के कारण भूखे पड़े ऐसा एक परिवार है, जो भूख के मारे जीवन बचाने के लिए तड़प रहे थे। ऐसे ही वे दूसरे गाँव में एक महाजन के घर में काम के लिये जाते हैं। उस महाजन की पत्नी कला मनोहर और मनभरी के लड़के जग्गू से बड़ा स्नेह करती थी, क्योंकि उसे अपनी कोख से कोई संतान नहीं थी। धीरे–धीरे वह जग्गू को अपना बनाने की बात सोचने लगी। उससे बचकर वह परिवार दूसरे गाँव में पहुँचता है। वहाँ कोई काम न मिलने के कारण वे भूख और जीवन–मृत्यु के बीच होड़ लगा रहे थे। वहाँ भी सेठ जी महाजन यह वादा लेकर आता है कि बच्चे को हवाला करेंगे तो मनोहर को इलाज करने का पैसा देंगे। यह बात सुनने पर मनभरी के मर्म को ठेस लगी। क्या कोई माँ ऋण–मात्र के रूप में अपने बच्चे को रख सकते हैं? लेकिन परिस्थितियों की ज़बरदस्ती से मनभरी अपने कलेजे के टुकड़े को कलेजे से अलग कर सेठ जी को दिया। दो साल बाद मनोहर और मनभरी जग्गू को देखने की चाह से काशी में गुरुकुल काँगड़ी उत्सव पर जाते हैं, कि सेठ जी का परिवार वहाँ जरूर आएगा। अचानक वहाँ सेठ जी की नाव से जग्गू गंगा में गिर जाता है, लेकिन प्राण देकर बच्चे की रक्षा करने के लिए कोई तैयार नहीं होता, तब मनभरी गंगा में कूद पड़ती है और बच्चे की जान बचाकर सेठ जी की पत्नी को सौंप देती है। वह औरत रोती हुई बोल उठी – "नहीं, बहन, भगवान ने आज मुझे स्पष्ट बता दिया

कि लड़के की सच्ची माँ कौन है। लड़का तुम्हारा है, और तुम्हारा रहेगा। वर्ष भर अपनी गोद में खिलाकर भी मैं माँ का हृदय नहीं पा सकी।"[१] अपनी जान देकर भी बच्चे को प्राण बचानेवाली मनभरी हमें बता देती है कि 'माँ की ममता' क्या होती है। कभी भी पैसे से माँ और बच्चे के गर्भाशय–रिश्ते को मोल–तोल नहीं कर सकता।

'बच्चा माँ का है' कहानी के माध्यम से विष्णु प्रभाकर इससे भी बदत्तर हालात में गलियों की तंग कोठरी में जी–जी कर मरनेवाली एक माँ की कहानी सुनाते हैं, जिसका नाम है चंदो। कहानी में लेखक ऐसी गलियों में रहनेवाले मनुष्यों की दर्दनाक ज़िंदगी का भी चित्रण करते हैं। वहाँ की औरतों को शरीफों के भोग–विलास का शिकार बननी पड़ती है। चंदो भी विवाह के पहले ऐसे शरीफों की बस्ती में काम करती थी। वहाँ के सेठ जी का लाला उसे चाहता था, लेकिन शरीफों और भंगिनों के बीच कैसे रिश्ता? आगे चंदो की शादी अपने ही कुल के रम्मू के साथ हो जाती है, लेकिन वहाँ भी उसकी स्थिति बदत्तर थी। पति की मार–पीट, गाली–गलौज और गरीबी की पीड़ा अलग से। चंदो एक बच्चे को भी जन्म दिया, उस शरीफ बस्ती का सूरतवाला बच्चा। अपने ऊपर हुए अन्याय के बारे में सोचने पर हमेशा द्वेष से चंदो पैर से सिर तक काँप उठती थी, लेकिन किससे प्रश्न करूँ? एक बार बच्चे को तेज़ बुखार चढ़ा और वह माँस का लथेड़ा जैसा चुपचाप लेट रहा था। उसे इलाज करने का कोई रास्ता नहीं निकला तो चंदो आधी रात में लाला की बस्ती की ओर बच्चे को लेकर भागती है, रक्षा के लिए। वहाँ से लाला की माँ ने दुत्कारते हुए भी बच्चे को दवाई और ओढ़ने के लिए रजाई दी, लेकिन लाला ने पूछा कि "तू रात को क्यों आई?" चंदो कहना चाहती थी कि 'यह तुम्हारा बच्चा है, यह दवा के बिना, पथ्य के बिना, देखभाल के बिना मर रहा है, इसे बचा लो।" लेकिन बिना वाणी के शब्द उसके दिमाग पर हथौड़े की तरह पड़े और सिर्फ कहा कि 'बच्चा मर रहा है'। वहाँ से भागकर चलते वक़्त लाला की बातों पर द्वेष और घृणा से उसका दिल दुत्कार उठा था – 'इसका बच्चा ! इस कमीने का? नहीं, बच्चा इसका नहीं हो सकता। इसे तो मैंने रक्त दिया है। मैंने जीवन, स्पंदन और चेतना दी है, मैंने प्राण दिए है। मैं इसकी माँ हूँ, बच्चा मेरा है, बच्चा माँ का है।"[२] वह दवा की शीशी और रजाई दूर फेंकते हुए अपना विद्रोह व्यक्त करती है। घर आते रम्मू की गालियाँ सुनते ही उसके मन में आग भर उठी। लेकिन कुछ–न–कुछ उसकी आवाज़ को रोक दिया। उस समय के बीच बच्चा मर चुका था। एक माँ का अपने बच्चे के प्रति अप्रतिम प्रेम, अपने मातृत्व और आत्म–सम्मान पर आहत पहुँचानेवाले समाज और व्यवस्था के प्रति माँ का विद्रोह – यहाँ कहते बिना ही बहुत कह देते हैं।

कहानीकार एक ओर मातृत्व के ऐसे भावात्मक पक्षों को उभारते हैं तो दूसरी ओर 'माँ की नारी' कहानी में इसके विपरीत वर्तमान समय में मातृत्व की एक विचारणीय मुद्दे को उठाते हैं। बदलते समय और समाज में बदलती नैतिक मान्यताओं और व्यापक स्तर पर नारी आंदोलनों के प्रभाव से आज के ज़माने में

मातृत्व की परिकल्पनाओं से बढ़कर उसकी भावनाओं में बहुत कुछ बदलाव आयी है। बेटी, बहू और माँ की भूमिकाओं से अलग उन्हें स्वयं अपनी भूमिका का भी एहसास और विश्वास होने लगा। पिता, पति या पुत्र की आधीनता में मेरी स्त्रियाँ कब तक रह सकती हैं? यह सही है कि परिवार के मूल ढाँचे में कोई आमूल–चूल परिवर्तन नहीं हो पाया है, फिर भी मध्यवर्गीय परिवारों में स्त्री अपने व्यक्तित्व को तलाशना, तराशना शुरू तो किया, निस्सन्देह शिक्षा और आर्थिक क्षमता ने स्त्री की मुक्ति के समाधान की बजाय उसकी समस्याओं को और जटिल बनाया है।

कहानी में एक बहस चलती है, उसमें याज्ञिक नामक पात्र के माध्यम से यह मुद्दा उठाता है कि – "नारी जगत् में माँ का दर्जा महान है, परन्तु इसी कारण तो माँ सदा प्रेममयी और पवित्र नहीं हो सकती। संतान प्रेम के अतिरिक्त नारीत्व की प्रबल भावना उसमें सदा भरी रहती है। माँ से पहले वह नारी है ...।"[३] याज्ञिक इसके दृष्टान्त के रूप में दो घटनाएँ बताता है। एक है – लगभग पचास साल उम्र वाली एक माँ दूसरे गाँव के एक आदमी से फँसी थी। सबने समझाया, पर वह नहीं मानी। अचानक उसके पति की मृत्यु हो जाती है। एक दिन चुपके से वह औरत उस आदमी के साथ भाग गई। जवान बेटा था, बेटियाँ थीं, किसी का प्रेम उसे न रोक सका। वह अंधी हो चुकी थी। पति के मरते ही औलाद उसकी दुश्मन बन गई। लेकिन क्रोध से पागल हुआ उसका बेटा उस आदमी को जान से मार डाला। अजीब बात है कि इसके क्रोध में आग बनी वह औरत ने अपने बेटे पर छुरा फेंका।

दूसरा घटना है कि आर्यसमाज की एक विधवा युवती अपने छोटे बच्चों को छोड़कर दूसरे आदमी के साथ भाग जाती है और उसे पिताजी धोखे से वापस लाकर बंद कर देता है, लेकिन वह रह नहीं सकती। वह क्रोध में बच्चों को मार–पीट करती थी। यह बात सुनकर याज्ञिक उसके भाई को उपदेश देता है – "आप ज़बरदस्ती मत कीजिए, ... रही संतान की बात, वह कोई मिटानेवाली भावना नहीं है, उसमें रक्त का संबंध है। आपकी बहन में उस भावना के ऊपर एक और भावना हावी हो गई है, उसके शांत होने पर वात्सल्य की धारा पहले की तरह बहने लगेगी। लेकिन यदि आप नारीत्व की भावना को कुचलने की कोशिश करेंगे तो सब कुछ नष्ट हो जाएगा ...।"[४] लेकिन वह युवती अपने प्रेम में विवश थी और पिता के बंधनों में न रह सकी तो आत्महत्या कर लेती है।

इस कहानी की घटनाएँ सिर्फ कहानी की नहीं है, हमारे बीच भी चल रही है। विधवा नारियाँ ही नहीं, अति उत्तराधुनिक समाज में पति और बच्चों को छोड़कर चलनेवाली नारियाँ भी हैं। लेकिन इस कहानी के माध्यम से कहानीकार समस्याओं को हमारे सम्मुख रखते हैं, उन पर सकारात्मक या नकारात्मक दृष्टि से समाधान ढूँढ़ने का दायित्व पाठकों पर छोड़ देते हैं।

मातृत्व के अनेक आयाम ही नहीं है, हर आयाम, अनेक पूर्वग्रहों से जुड़ा हुआ है। ज्यादातर पूर्वग्रह की महिमा को मंडित करता है। युगों से करते हैं। पर बींसवी सदी में उग्र नारी ने जन्म लिया। मातृत्व को स्त्री के पाँव की बेड़ी बतलाया

और एकदम विपरीत पूर्वग्रह को जन्म दिया। यहाँ तक कि गर्भपात के अधिकार को नारी–स्वातंत्र्य का पर्याय बना दिया गया। कभी यह बात भी विचारणीय है कि कोई माँ कुमाता हुई तो वह औरत, जो महत्त्वकांक्षी थी और अपनी महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने में अप्रतिम रूप से सफल हुई थी। अंततः बेचारी को दुःख ही दुःख भोगता दिखलाया जाता था। 'अच्छी माँ' न बनने का अपराध बोध, उसकी मानसिक शांत इतनी तबाह करता कि, उसे पागल करके छोड़ता। किसी कारणवश अपनी बच्ची को छोड़कर चलने पर माँ के प्रति घृणा रखती पुत्री से प्रायश्चित्त करने के लिए, उसे एक बार निहारने के लिए तड़पती एक माँ की वेदना और ममता को 'माँ' कहानी में विष्णु प्रभाकर चित्रित करते हैं। जितना जुल्म उस माँ ने किया, उतना ही जीवन ने। एक बार छवि बन जाए तो आगे के जीवन में भी उससे छुटकारा पाना आसान नहीं है। वह माँ अपनी बेटी को पत्र लिखती है – "तुम मुझसे नफरत करती हो, लेकिन नफरत प्रेम का ही तो एक रूप है। उसी प्रेम के बल पर मैं आज तुम्हें सहज भाव से 'प्यारी बेटी' कहकर पुकार सकी हूँ। तुम्हारी जननी हूँ, यह सत्य अनहोना नहीं हो सकता। ... नारी के अंदर उसके अनेक रूप हैं। उन सबको मिलाकर ही वह एक है। एक को खोकर वह खंडित ही हो सकती है। इसलिए प्रियतम ही होकर भी मैं तुम्हारी जननी हूँ, बनी रहूँगी।"[५]

स्त्रियों की अनुभूत सच्चाई यह है कि कोई भी स्त्री जन्मना सुमाता का रोल सींखकर नहीं आती। माँ बनने के बाद वह मातृत्व के बारे में हर दिन कुछ नया सीखती और आत्मसात करती है और मातृत्व की लम्बी दौड़ में कभी खुशी, कभी गम, कभी भूल चूक होना एक सहज स्वाभाविक बात है। हमारे यहाँ माँ को मनुष्य की बजाय देवी और मातृत्व को हर कुतर्क के परे एक लगभग दैवीय और पूजनीय स्थिति माना – बखाना जाता रहा है और एक औसत माँ जब कभी न कभी अपनी अक्षमताओं के चलते शिशु के प्रति क्रोध या चिढ़ा कि भावना का अनुभव करती है तो उसका मन बेवजह एक गहरी ग्लानि और अवसाद से भर उठता है। इस ग्लानि की कचोट के चलते अनेक बार युवा माएँ अपने स्वतंत्र अस्तित्व का विस्तार करने को झिझकती हैं और बाद में 'कुछ न बन पाने'की उनकी खीझ गलत–गलत मुद्दों पर बच्चों पर टूटती रहती है कि कैसे उसका सारा युवा काम घर– गिरस्ती और बच्चे पालन में ही सिमटकर रह गया।

विष्णु प्रभाकर की और एक चर्चित कहानी है – 'एक और कुंती'। इसकी नायिका प्रतिमा की जीवन यात्रा नारी होने की त्रासदी की यात्रा है। भारत–पाक की लड़ाई की विपत्ति में प्रतिमा के पति की मृत्यु होती है और वह अपने बच्चे से भी अलग हो जाती है। अपने देश से दूर रहकर उसे और भी दो पुरुषों की रक्षा में संगिनी बनकर रहनी पड़ी। उन संबंधों से उसे पाँच और बेटे पैदा होते हैं, फिर भी नियति उन बच्चों को लेकर अकेले तड़पने के लिए उसे विवश कर देती है। तब भी उस माँ का दिल अपनी पहली संतान को देखने के लिए लोटती है। वह बच्चा भी अपनी माँ का प्यार मिलने के लिए लालायित है। लेकिन उसके पिता

का परिवार माँ को कलंकित मानते हुए उसे बच्चे से अलग कर देती है। उस माँ की दर्दभरी आहटें हैं – "कुंती के भी पाँच बेटे माने गए हैं। छठे को, जो उसने स्वयं त्याग दिया था। मेरा भी छठा बेटा है, मेरे प्रेम का प्रतीक ... पर वही मुझसे छीन लिया गया। ... आर्य परम्परा में माँ का पद सर्वोच्च है, इसलिए तो ज़हर भी सबसे अधिक पीना पड़ता है, नारी होने के अपमान का ज़हर ... जिसे सबसे अपमानित करना होता है, उसे ही सुंदर विशेषण दिये जाते हैं। बलि–बकरे को हृष्ट–पुष्ट न करेंगे तो कौन खरीदेगा उसे?"[६] नारी की भावनाओं से, मातृत्व से वंचित एक माँ का समाज के प्रति, सामाजिक नीतियों के प्रति प्रतिरोध और प्रतिशोध इन शब्दों में तीखेपन के साथ अभिव्यक्त है।

इस प्रकार विष्णु प्रभाकर की कहानियाँ मातृत्व के विभिन्न रूपों को उसकी अंदरूनी में जाकर उसके मीठे और कड़वे पहलुओं को अभिव्यक्ति देने में सक्षम हुई हैं। अतः कहा जा सकता है कि मातृत्व एक भावना से बढ़कर, एक अवस्था से बढ़कर विभिन्न भावनाओं, चेतनाओं के सात समन्दरों को मिलानेवाली एक महासागर है जिसके भिन्न–भिन्न तलों में पहुँचने पर रसातल की गहराई, सौंदर्य, गंध और स्वाद अलग–अलग है, कभी गंभीर कभी शांत ... जिसे एक परिभाषा में बाँधने के लिए कोई भी शब्द कमज़ोर पड़ेगा ...।

संदर्भ ग्रंथ :

१. विष्णु प्रभाकर की सम्पूर्ण कहानियाँ, भाग–१, (मुरब्बी), प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण – २००२, पृ. २६
२. विष्णु प्रभाकर की सम्पूर्ण कहानियाँ, भाग–२, (आश्रिता), प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण – २००२, पृ. ८६
३. विष्णु प्रभाकर की सम्पूर्ण कहानियाँ, भाग–३, (अभाव), प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं.–०२, पृ. १०६
४. वही, पृ. ११३
५. विष्णु प्रभाकर की सम्पूर्ण कहानियाँ, भाग–७, (पुल टूटने से पहले), प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण – २००२, पृ. ६८
६. विष्णु प्रभाकर, 'आखिर क्यों' सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं.–२००१, पृ. १६ व २१

सहायक ग्रंथ :

१. अरविन्द जैन 'औरत अस्तित्व और अस्मिता', राज कमल प्रकाशन, दिल्ली, द्वि. सं. –२०१३
२. मृणाल पाण्डे 'स्त्री : लम्बा सफर', राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण – २०१२
३. सं. राजेन्द्र यादव एवं अर्चना वर्मा – 'अतीत होती स्त्री का भविष्य', राज कमल प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण – २०११

दिव्या. एम. टी.
शोध छात्रा,
कालीकट विश्वविद्यालय,
मो. ६५३६३१६८६१

●

25

'ममता' कहानी एक पुनर्पाठ : मातृत्व के विशेष संदर्भ में

साहित्य और नारी का सम्बन्ध अनश्वर है। वैदिक काल में नारी के सहयोग भाव में महंत सिद्धि तक अप्राप्य समझता था। वहाँ आर्यों ने उसे पुत्र–प्राप्ति का साधन मात्र समझा। मुसलमानी सभ्यता के आगमन से तो नारी चारदीवारी के भीतर पर्दे की पीछे की उत्सुकता बन गई। फलतः हिन्दी साहित्य के आदिकाल की नारी तो भोग प्रधान रही। भक्ति काल में भी स्त्री की स्थिति में उतना बदलाव नहीं आया। काम का अस्वाभाविक अवरोध अतिकाम को जन्म देती है। रीतिकालीन नारी को इसी भावना का शिकार होना पड़ा। अतः आधुनिक काल के उदय तक हिन्दी साहित्य में नारी के प्रति निम्न दृष्टिकोण ही रहा है।

कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद जी एक ऐसी शक्सियत है जो नारी–जीवन एवं उनकी संवेदना को समयानुसार चित्रित करने में सक्षम रहे हैं। हालाँकि हिंदी कहानी प्रेमचंद के उपरान्त आधी शताब्दी की यात्रा कर चुकी है फिर भी प्रेमचंद उसकी चर्चा के केन्द्र में अब भी समकालीनों की भाँति जीवित हैं। भारतीय नारी के संबंध में प्रेमचंद की दृष्टि 'यत्र नार्यास्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' की अवधारणा के अनुकूल रही है। प्रेमचंद का क्रांतिद्रष्टा, वैचारिक चिंतन नारी–जीवन के हर पहलुओं को आँक कर प्रस्तुत करता रहा है। नारी मन के सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव उनके लिए अनदेखा नहीं रहा। उनके प्रायः सभी नारी पात्र सहनशीलता, त्याग तथा सेवा को पकड़े हुए, परिस्थितियों का सामना करने वाली है, और कई बार उनमें पिसती हुई भी उनसे ऊपर उठी रही है। संक्षेप में उनकी नारी सार्वभौम नारी है। अतः उन्होंने नारी का प्रेमिका रूप, परिणीता–रूप, राष्ट्रसेविका–रूप, कामिनी रूप आदि को बखूबी चित्रित किया है, जिसमें मातृ–रूप का सर्वप्रधान स्थान रहा है। मातृरूप से तात्पर्य यहाँ नारी का वह सहज मातृ–हृदय रूप है जो किसी भी स्त्री को देखकर झंकृत हो उठता है। अत्यंत मार्मिक ढंग से उन्होंने हर एक मातृ–रूप का वात्सलय भाव दिखाया है।

नष्ट हो रहे मानवीय संबंधों में माता की ममतामयी बाँहों में समा जाने वाला बेटा और अपने बेटे के सामने माता की प्रतिमूर्ति लगनेवाली माँ का चित्र

आज विरल ही दिखाई देता है। अतः स्त्री जैसी भी हो माँ का वात्सल्य वह हमेशा चाहता है, क्योंकि उन्होंने ही उसे जन्म दिया, अपने रक्त द्वारा उसका पालन किया है और अपने साये में उसके पल्लवित होने की कामना की है। ऐसी ही एक स्नेहमयी माँ का चित्रण प्रेमचंद की 'ममता' कहानी में हुआ है। दिल्ली के एक खत्री बाबू रामहतादास सामाजिक कुप्रथाओं तथा अन्धविश्वास के प्रबल शत्रु रहे हैं। वे हमेशा समाज उद्धार में ही व्यस्थ रहते थे। आज की माँ, बेटे की दया पर पलने वाली दीन–हीन उपेक्षित निरीह प्राणी मात्र बन रही है और उसके पति के रहते उसका मान है। नहीं तो वह बेटे के परिवार पर पड़ी बला है। उसकी ममता का, त्याग का, प्यार का, दूध का कोई महत्त्व नहीं रह जाता है बेटे–बहू सबके लिए वह माँ बोझ बन जाती है। यहाँ भी अपने पिता के पश्चात् रामहतादास अपनी विधवा माँ से अलग हो गए। इस 'जातीय सेवा' में उनकी स्त्री विशेष सहायक थी। बहू की स्वाधीनता में विघ्न पड़ने पर विधवा माँ, अपने बेटे और बहू के साथ नहीं रह सकती थी।

माँ–पुत्र के संबंध का एक दुःखद अन्त प्रस्तुत कहानी रेखांकित करती है। माँ अपने पुत्र से न जाने क्या–क्या आकांक्षाएँ रखती है, कितनी आशाओं से पालन–पोषण करती है, वही पुत्र जब माँ का दिल टूक–टूक कर देता है, तब उस माँ के दिल पर क्या बीतती होगी? ऐसा ही कुछ हुआ उस बूढ़ी माँ के साथ भी। माँ जब घर छोड़ती है रामहता मातृऋण का विचार करके 'दस हज़ार' रुपये अपनी माँ के नाम जमा कर दिए थे ताकि उसके ब्याज से माँ का निर्वाह होता रहे; किन्तु बेटे के इस उत्तम आचरण पर माँ का दिल ऐसा टूटा कि वह दिल्ली ही छोड़कर अयोध्या जाकर रहने लगी। लेकिन माँ के प्रति स्नेह कहीं न कहीं रामहता में और था इसलिए वह अपने व्यस्त जीवन से मिसेज रामहजा से छिपकर माँ से मिलने अयोध्या जाया करते हैं, किन्तु वह दिल्ली आने का कभी नाम न लेती।

एक बार बाबू रामहता मुहल्ले के हीरे और रत्नों के व्यापारी सेठ गिरधारी लाल से मोटरकार के लिए दस हज़ार रुपये लेता है। धीरे–धीरे कोई बीस हज़ार का मामला हो गया। दो–तीन वर्ष व्यतीत होने पर जब रुपया वापस माँगा तो बाबू रामहता हिसाब चुकाने में असमर्थ पाया। सारी सम्पत्ति बेचने पर भी कुल मिलाकर सोलह हज़ार से अधिक रकम न खड़ी हो सकी। सारी गृहस्थी नष्ट हो गई, तब भी दस हज़ार के ऋणी रह गए। यहाँ तक कि सेठ ने सिपाहियों से बाबू साहब को गिरफ्तार करवा दिया।

माँ कितनी भी दूर हो हमेशा उसका मन पुत्र के पास ही रहता है। माँ में पुत्र के प्रति इतना प्यार और ममता रहती है कि वह अपने पुत्र को किसी भी तकलीफ में नहीं देख सकती। बेटे की पारिवारिक खुशी के लिए यहाँ बूढ़ी माँ अपने बेटे को रिहा करने की प्रार्थना लेकर तीसरे दिन ही सेठ जी के पास आती है। स्त्री के अन्दर की ममता जाग उठती है और वह कहने लगती है कि – "तो क्या तुम मेरे बुढ़ापे का, मेरे हाथ फैलाने का, कुछ अपनी बड़ाई का विचार न करोगे? बेटा, ममता बुरी होती है। संसार से नाता टूट जाए, धन जाए, धर्म जाए, किन्तु लड़के का स्नेह हृदय से नहीं जाता। संतोष सब कुछ कर सकता है, किन्तु

बेटे का प्रेम माँ के हृदय से नहीं निकल सकता। इस पर हाकिम का, राजा का, यहाँ तक कि ईश्वर का भी बस नहीं है। तुम मुझ पर तरस खाओ। मेरे लड़के की जान छोड़ दो, तुम्हें बड़ा यश मिलेगा। मैं जब तक जीऊँगी, तुम्हें आशीर्वाद देती रहूँगी।"[१] पुत्र द्वारा उपेक्षित होने पर भी माँ का पुत्र के प्रति उभरती ममता यहाँ देख सकती है। माँ का वात्सल्य व उसकी ममता इतनी बड़ी है कि बच्चे के लिए वह अपनी सारी सुख–सुविधाओं, धन–दौलत व सारी सम्पत्ति त्यागने के लिए तैयार होती है। शायद इसीलिए कहानी की 'बूढ़ी माँ' अपने बेटे का कर्ज चुकाने तक को तैयार हो जाती है। रामहता की माँ कहती है कि – "तुम्हारे रुपये की जमानत मैं करती हूँ। यह देखो, बंगाल–बैंक की पास बुक है। इसमें मेरा दस हज़ार रुपये जमा है। इस रुपये से तुम रामहता को कोई व्यवसाय करा दो। तुम उस दुकान के मालिक रहोगे, रामहता को उसका मैनेजर बना देना। जब तक वह तुम्हारे कहे पर चले, निभाना; नहीं तो दुकान तुम्हारी। मुझे उसमें कुछ नहीं चाहिए। मेरी खोज–खबर लेने वाला ईश्वर है। रामहता अच्छी तरह रहे, इससे अधिक मुझे और न चाहिए।"[२]

प्रेमचंद ने मातृत्व का निस्वार्थ स्नेह ही यहाँ चित्रित किया है, जो अपने बेटे की भलाई के साथ दूसरे के बेटे की भी भलाई चाहती है। रामहता रिहा हो जाता है और सेठ जी ने साथ व्यवसाय करने लगता है और सपरिवार आनंद से जीवन में आगे बढ़ता है। रामहता माँ के त्याग को, उसके स्नेह को देखने में अंत तक असमर्थ ही रहता है लेकिन आखिर मातृत्व का ही जीत होती है।

औद्योगीकरण के इस दौर में बच्चों को माँ के साथ बिताने के लिए वक्त नहीं है। आधुनिक सभ्यता के कैद में फँसे परिवार में माँ को दम घुटने के लिए अकेला छोड़ती है और अन्त में उसे अपने ही परिवार से दूर जाने में मज़बूर कर देती है। लेकिन हो न हो स्त्री जब माँ बनती है उसमें झकलती मातृत्व में हमेशा अपने बच्चे के प्रति अथाह प्रेम ही रहता है। प्रस्तुत कहानी में प्रेमचंद जी ने एक माँ के सहज वात्सल्य का चित्रण द्वारा सम्पूर्ण मातृहृदय की ममतामयी भावना को उजागर किया है। यही नहीं उनके गबन की 'जग्गो', ईदगाह कहानी की 'अमीना', माता हृदय की 'माधवी', मन्दिर कहानी की 'सुखिया', बेटो वाली विधवा की 'फूलमती' आदि पात्र इसी रूप में रूप में समादृत होते हैं। समय की माँग, साहित्यिक प्रगतिशीलता, समाजोपयोगी भावना तथा निजी व्यक्तित्व की संघर्षमयी गरिमा के प्रेरणास्वरूप प्रेमचंद की नारी–भावना खासकर मातृ–भावना ने हिंदी कथा–साहित्य में एक युगान्तर प्रस्तुत किया है।

संदर्भ ग्रंथ :

१. भारतीय नारी जीवन की कहानियाँ, प्रेमचंद 'ममता', पृ. १४१
२. ममता, पृ. १४२

शाली पद्मावती पी.
शोध–छात्रा,
कालीकट विश्वविद्यालय

26

हिमांशु जोशी की कहानियों में माँ

'मातृदेवो भवः' भारतीय संस्कृति के अनुसार माँ पूजनीय देवता है। माँ के बारे में यह भी कहा जाता है कि वह प्रत्यक्ष देवता है। ईश्वर तो सर्वव्यापी एवं निराकार है लेकिन जिस देवता या ईश्वर का दर्शन हम सदा करते रहते हैं वो केवल माँ ही है। माँ एक परिवार की रीढ़ है। हर एक बच्चे की पहली अध्यापिका उसकी माँ है। माँ स्नेह और वात्सल्य का प्रतिरूप है। माँ जैसी स्नेहिल व्यवहार, वात्सल्य, ममता आदि और किसी से नहीं मिलता। स्नेहमयी माँ सदा अपने परिवार और बच्चों का ख्याल रखती हैं और भलाई चाहती है।

हिंदी कहानी साहित्य में प्रेमचंद से लेकर अनेक कहानीकारों ने अपनी रचनाओं में माँ के स्वरूप का चित्रण किया है। समकालीन कहानीकारों में हिमांशु जोशी माँ के विविध रूप प्रस्तुत करने में सफल हुए हैं। उनके अधिकांश कहानियों में आदर्श माता का रूप दिखाई देती है। ऐसी कहानियाँ हैं – 'अन्ततः', 'अपने ही कस्बे में', 'किनारे के लोग', 'उसका तारा' 'लकीर सी परछाया' आदि। 'अंततः' कहानी की बिरजू की माँ बिनियाँ एक आदर्श माँ है। वह संवेदनशील भी है। बिरजू उसका भोला लड़का है। उसकी चिंता माँ को सदा लगी रहती है। बिरजू का पालन–पोषण माँ ने बड़ी मेहनत से की है। बिरजू बड़े होकर भी किसी भी काम के लिए नहीं जाते। बुढ़िया माँ ही आस–पास के घरों और खेतों में काम करके जीवन बिताती है। बिरजू समाज सेवा का व्रत लेकर भ्रष्ट समाज के खिलाफ लड़ता रहता है। गाँव–गाँव घूमता–फिरता है। कभी–कभी वह घर से चला जाता है और दिनों या महीनों बाद लौटता है। लोग बताते हैं कि बिनियाँ की बेटा अब पागल हो गया है। अपने बेटे की बुरी हालत देखे तो कोई भी माँ सह नहीं सकती। बिनियाँ आँचल में सिर गड़ाए फूट– फूटकर अपने फूटे करम को रोती रहती।

माँ हमेशा ममतामयी होती है। वह अपने बच्चों को किसी भी हालत में नहीं छोड़ती है। बिरजू की माँ भी अपने बेटे की बुरी हालत देखकर उसे नहीं छोड़ता है। कहानी के अंत में बिरजू बीमार पड़ता है और बूढ़ी माँ ही उसका देखभाल करती है। जीवन के अन्तिम क्षणों में भी बिरजू अपने माँ को तंग करता है। फिर भी माँ के मन में उसके प्रति स्नेह है। बिनियाँ अपना सब कुछ बिरजू को

देने के लिए तैयार थी। एक दिन बिरजू की मृत्यु हुई। "बिनियाँ सुबक–सुबक कर रोती रही। बार– बार उस टूटी हथेली को उलट–पलट कर देखती रही। चूमती रही।"

बच्चे बड़े या छोटे हो माँ के मन में उनके प्रति प्यार या वात्सल्य एक ही तरह होता है। जब बच्चा पैदा होता है उस समय माँ के मन में उसके प्रति कैसा प्यार था, बड़ा होने पर भी माँ उस पर वैसा प्यार रखती है। यह माँ की अपनी विशेषता है। एक या एक से अधिक बच्चे होने पर भी माँ सभी के साथ एक तरह की प्यार रखती है। किसी के साथ भेदभाव नहीं करती। 'अपने ही कस्बे में' कहानी के माँ भी इसी तरह की है। वे अपने बहू–बेटियों को भी एक समान मानती है। इस कहानी का नायक अपने माँ की याद इस प्रकार करता है – "इतनी रात ढलने पर भी अम्मा जागती रहती है – कुछ न कुछ काम में हमेशा जुटी दीखती है। बड़ी जिज्जी और सुमी के घर, हर साल पहले की तरह कुछ न कुछ भेजती हैं – एक–एक जोड़ा कपड़ा और ढेर सारे चिउड़े। चैत और पूस के महीने की 'रोटी' अलग। पिताजी के गुजर जाने के बाद भी कहीं कोई कमी नहीं आई। बहू–बेटियों के लिए पता नहीं अम्मा कैसे जुटा पाती है।" घर में आने वाले अतिथियों का सत्कार भी माँ बड़ी आत्मीयता के साथ करती थी। नायक आगे कहता है कि – "जो मेहमान पहले आते थे, वे अब भी आते हैं। किन्तु घर से कोई भूखा लौटा हो, किसी ने कभी सुना न होगा ...।" माँ परिवार को बड़ी कुशलता के साथ सँभालती है।

अँचल के परिवेश में रही माँ का मन सदा आर्द्रता से भरा हुआ है। अपना बेटा जब शहर से घर लौटता है तब उस पर ढेर सारा प्यार बरसाती है। बेटे के बड़े होने पर भी वह उसकी चिंता करती रहती है, उसे सलाह देती रहती है। जोशी जी ने 'अपने ही कस्बे में' कहानी में ऐसी एक माँ का चित्रण किया है – "तू घर की चिन्ता न किया कर। खाने–पीने का गुज़ारा चल ही जाता है। अधिक बटोर कर भी क्या करना है ... तू अपनी तन्दुरस्ती का भी ख्याल नहीं करता। देख, तेरे सिर पर कितने सफेद बाल चमक रहे हैं। ... अभी तो तू बच्चा है।" माँ अपने बच्चों के प्रति हमेशा व्याकुल रहती है। घर आकर वापस जाते वक्त भी अम्मा गाड़ी के पीछे भाग कर भी सलाह देती है। "पहिए घूमने लगते हैं। अम्मा मोटर के पीछे–पीछे भागती है – घर की फिकर न करना। चलती गाड़ी से हाथ बाहर न निकालना ... चन्दर, पहुँचते ही चिट्ठी देना, हाँ ... " माँ अक्सर अपने परिवार और बच्चों के बारे में सोचकर व्याकुल होती है।

गाँववाली माँ का हृदय बड़ी निर्मल और स्नेहिल होती है। वह सदा अपने परिवार की भलाई चाहती है। अपने परिवार की कल्याण के लिए माँ कई तरह की आस्थाएँ और अंधविश्वास भी रखती है। 'अपने ही कस्बे में' कहानी की माँ भी ऐसी माँ है। कहानी का नायक इनके बारे में बताता है – "जिस तरह पिताजी कहीं बाहर जाते थे, जितनी तैयारियाँ होती थीं, वे ही आज दुहराई जा रही है। जाते समय, आस–पास के बच्चों में मेरी ओर से बाँटने के लिए कुछ रेजगारी अम्मा

ने सुबह ही अपने आँचल के छोर में बाँध ली थी ... सवा रुपया पुरोहित को दिया और पानी का भर घड़ा आँगन में रखवा दिया था।"

'किनारे के लोग' कहानी की माँ भी आदर्श माँ है। उसका पति उसे छोड़कर किसी और नारी के साथ चला गया। फिर भी वह अपने बच्चे को अच्छी तरह सँभालती है। उसके लिए अपना बच्चा ही सब कुछ है। वह अपने बच्चे के लिए जीवन बिताती है। कहानी के अंत में अपने भविष्य के बारे में सोचकर वह रोती है – "सोए बेबी की पीठ पर सिर टिकाएँ महिला सिसक–सिसक कर चुपचाप रो रही है।" वह दूसरों के साथ खुशी से व्यवहार करती है। अपने बेटे के बारे में सोचकर वह बहुत आकुल थी। लेकिन अपने मन की आकुलता वह दूसरों के सामने प्रकट करने के लिए तैयार नहीं थी। इसलिए वह अपनी नियति पर सोचकर चुपचाप रोती थी।

'उसका तारा' कहानी में हारुक की माँ का वात्सल्य एवं आद्रर्तापूर्ण रूप खिल उठा है। उसका मन करुणा, वात्सल्य तथा आत्मीयता से भरा हुआ है। वह एक फौजी की माँ है। जिसका बेटा मोर्चे में शहीद होता है। जिस प्रकार वह हारुक पर वात्सल्य बरसाती है उसी प्रकार उसके ही घर के पास आये फौजी के यूनिट के हर फौजी को अपने बेटे के समान मानती है। वह हर दिन उन्हें गाय का दूध देती रहती है। किन्तु दूध के पैसे नहीं लेती। कोई भी उन्हें पैसा देता है तो वह इन्कार करती है और अपने बेटे की याद में उसकी आँखों से आँसू आते हैं। हारुक की माँ को सभी जवान लड़के अपने बेटे के समान लगते हैं जिन्हें देखकर माँ को मनशान्ति मिलती है।

'लकीर सी परछायी' कहानी में माँ बीमार होने पर भी अपनी नौकरी करने वाली, रात में देर से आने वाली बेटी सुजाता के प्रति सोचकर चिंतित रहती है। उसके मन में बुढ़ापे के दिनों में भी बेटी के प्रति आस्था, प्रेम तथा वात्सल्य है।

असल में कहें तो माँ ही एक बच्चे का सब कुछ है। हर बच्चे को माँ का प्यार मिलना ज़रूरी है। कोई भी बच्चा जो माँ के प्यार से वंचित है वह अच्छी तरह से बढ़ नही सकता। उसके मन में किसी न किसी प्रकार का दुःख ज़रूर होगा। बच्चों के मन बड़े निर्मल होते हैं। इसलिए उन्हें बचपन से ही प्यार या वात्सल्य मिलना चाहिए। नहीं तो उनके मन टूट जायेंगे। यह प्यार और वात्सल्य केवल माँ ही दे सकती है। हिमांशु जोशी ने अपनी कहानियों में वात्सल्यमयी माता का चित्रण बहुत सुंदर ढंग से किया है। समकालीन कहानीकारों में आदर्श माता का चित्रण करने में जोशी जी सफल हुए है।

डॉ. संगीता पी.
अतिथि अध्यापिका–हिन्दी विभाग,
कालीकट विश्वविद्यालय, मो. ९६०५७४२८७६
e-mail: drsangeethahindi@gmail.com

●●

माया प्रकाशन

(पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता)

6A/540, II-फ्लोर आवास विकास हंसपुरम्

नौबस्ता, कानपुर-208021

मो० : 07618879266, 09451877266

E-mail : mayaprakashankanpur@gmail.com

ISBN 978-81-934201-3-3

9 788193 420133 >

₹ 400/-

Scanned with CamScanner

Matiz

Flottila of Colours

EDITORS

MS.JULIE DOMINIC A
Dr. ESTHER MANI
MS. SILPA S ANAND
SR. DANI C FRANCIS

MATIZ, the collection of research papers weave the tapestry of colour around us. It is an expression of the reality of the mind. The cultural, symbolic, social, physical, philosophical and psychological questions and practices are loaded into term 'colour'. The visual world as we see it, is of universal identities, linked to colour. This combination of eliminativism – the view that physical objects do not have colours, and subjectivism – the view that colour is a subjective quality put forward by S K Palmer, a psychologist and cognitive scientist add to the prism of colours. Colour representations has seen humanity travel beyond the "seen", drishyam, kazhcha, spectacle towards metaphorical suspension of reality/ belief. Contemplation on hues is an aurora of myriad reflections. The realm of imagination is a platform of kalediscopic experiences. The concept of colours creates an inevitable impact on the existence of mankind. Culture, beliefs, history, evolution and discoveries in science and technologies has aided man to explore the exhibition of colours to his satisfaction. The philosophy of colours has a vetted prominence in the prowess of creation.

Publisher

SOORYAGATHA PUBLISHERS

Sooryagatha Publishers

P.O. Box 3517, T.D. Road
Kochi, Kerala - 682 035,

Rs. 150/-

ISBN 9788172550899

9 788172 550899

MATIZ
Flottila of colours

© MS.JULIE DOMINIC A., Dr. ESTHER MANI,
MS. SILPA ANAND S., SR. DANI C. FRANCIS

BOARD OF EDITORS :**MS. REELY RAPHAEL , SR .TERESA J HELOISE, GLADIN ROSE, GINTY GEORGE, HEMALATHA C.S, ATHIRA T., BENITA P. VINOJ, VARADA U.**

First Edition: 2017
Price: 150/-
ISBN: 9788172550899

Copy right

All rights reserved. No part of this book may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted, in any form or by any means, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without prior written permission of the author.

Publisher
SOORYAGATHA PUBLISHERS
P.O. Box 3517,
T.D. Road Kochi,
Kerala - 682 035,

CONTENTS

Sl.No.	Topic	Page No.
1.	COLOURS : SELECTIVE MODES OF UNDERSTANDING AND INTERPRETATIONS - *Dr.Jayashree C.Kambar*	1
2.	COLOUR HITS OUT: A STUDY OF MEENA KANDASAMY'S *WHEN I HIT YOU - Ms. Pretty John .P*	3
3.	GREEN MALABAR IN NINETEENTH CENTURY: ROLE OF CANOLLY CANAL - *Valsa.M.A*	10
4.	VISUAL AND TEXTUAL CONSTRUCTION OF SPORTS PAGE: A JOURNEY THROUGH MALAYALAM NEWSPAPER MALAYALA MANORAMA - *Elseena Joseph*	15
5.	ADVANCES IN VISUAL COMPUTING: AN ANALYTICAL STUDY ON COLOUR STORAGE, DISPLAY AND IMAGE FORMATS IN COMPUTER SYSTEMS - *Hitha Paulson,*	18
6.	APOCHRAPHICAL GLITTER IN THE BOOK OF REVELATION - *Sr . Dani C*	23
7.	THE HEIGHT OF COLOUR DISCRIMINATION: AN ANALYTICAL STUDY OF THE BOOK *BLACK LIKE ME BY JOHN HOWARD GRIFFIN. - Dr. Bindu Ann Philip*	27
8.	COLOURS OF MATHEMATICS - SYMMETRY IN NATURE - *Rose Paul*	33
9.	THE CASTE IDENTITY OF EZHAVAS IN KERALA: A BRIEF STUDY - *Rajitha M.*	35
10.	LIFE AND CULTURE OF PIRATES: A STUDY ON LATE MEDIEVAL MALABAR PIRATES - *Dr. Arun Thomas M*	38
11.	THE REDDISH SCREENS: A SEMIOTIC ANALYSISON THE INFLUENCE OF MARXISM IN CONTEMPORARY MALAYALAM FILMS - *Sameer Mecheri*	43
12.	THE DOMINATION OF COLOUR IN THE INDIAN FOLK CULTURE : A STUDY RELATED TO TRIBAL ART FORMS *KATHAKALI* AND *KALAMEZHUTHTU - Ginty George*	48
13.	SYMPHONY OF RESISTANCE THROUGH CHROMATIC EXPRESSIONS IN NATURE - *Dr. Esther Mani*	50
14.	AN INTROSPECTIVE UNDERSTANDING OF COLOUR DIMENSIONS IN MATHEMATICS - Alphy Jose	54
15.	CAN GREEN BE THE COLOUR OF BLOOD? A DISSECTION OF *THE WASTED VIGIL* BY NADEEM ASLAM - *Jency James*	59
16.	COLOUR PERSPECTIVE IN DORIS LESSING'S, *THE GOLDEN NOTEBOOK - P.S. Alisha*	63
17.	THE CHROMATIC EXPRESSIONS OF CLIMATE CHANGE: REPRESENTATIONS IN LITERATURE AND ART - *Silpa Anand S.*	65
18.	THE WORLD OF ULTRAPURE COLOURS: AN EXPLORATION OF COLOUR SYMBOLISM IN FAIRY TALES - *Nowfiya Nazeer*	67
19.	SIGNIFICANCE OF COLOUR IN FOOD AND MARKETING - *Benita p. Vinoj,*	71
20.	SHADES OF FANTASY:COLOURFUL IMAGES OF THE WORLD DURING SLEEP - *Jyothisree V. G*	73

COLOUR HITS OUT: A STUDY OF MEENA KANDASAMY'S *WHEN I HIT YOU*

Ms. Pretty John .P,Assistant Professor,Carmel College, Mala

Colours carry different symbolic meanings. Writers have used the colour symbolism as a literary technique in their works to define characters, to develop plot and to give insights to discriminations based on race, caste, gender and so on. Colour communicates and evokes feelings, emotions, identities, memories and beliefs beyond what is expressed.

MeenaKandasamy deliberately uses colours to convey her message to her readers in her second novel*When I Hit YouOr, a Portrait of the Writer as a Young Wife* (2017). It is the portrait of the unnamed narrator as a writer-wife in a four-month-and-an-eight-day marriage with a Communist Professor. He sees red when he finds her writing something. Her body becomes black and blue after every torment but not her face. At times, she feels blue after his torture. She has to sail under false colours when she is with him to become his perfect wife. He keeps her in the dark about his first marriage. His vagrant cousin calls her out of blue just to tell her that her professor cousin has already been married before she married the narrator and he is the greatest fraud in their village. After their marriage, many a time she feels browned off when he talks a blue streak about his revolutionary days. His amiable attitude to his in-laws lends colour to his stories about the narrator. In the beginning, the narrator's parents believed the highly coloured report given by him about their only daughter. When they come to know about his true colours, they suggested her to flee from him to save her life. She has been seeking for a golden opportunity and it comes in the form of his dead revolutionary friend's trousers. He goes red in the face when she tells him of his first marriage. She calls him a coward who has abandoned his revolutionary friend's body to his enemies, who has raped and hit his wife. He becomes red with rage and threatens to kill her. She manages to run away from him to her parents.

The repeated usage of certain colours especially red makes colour a strong motif in *When I Hit You*. The consistent colour motifs employed by the writer give character traits and serve as a powerful visual element. It plays a significant role in setting the milieu, mood and tone of the novel. It mirrors the feelings and emotions of the unnamed narrator. Besides the direct meaning, it also connotes opposite meanings or two opposing ideas simultaneously. The reader can feel the omnipresence of the colour red throughout the work.

The narratorappears black as a skillet after her flight from her husband. Listening to her mother, a teacher, talking about her feet while detailing her escape from her monster husband, the narrator describes her pathetic state: "Even when my toes curl in shame" (03). Her mother talks about her cracked heels followed by her beating her rounded mouth with her four fingers making a long O sound: "…her soles were twenty-five shades darker than the rest of her, and with one look at the state of her slippers you could tell that she did nothing but housework all the time. They were the feet of a slave" (04). This not only suggests Tamil women's customary expression in hearing some unfortunate death by mishap or a catastrophe like elopement to signify their disapproval, an amalgamated feeling of sadness and shock, but also their displeasure. There is an implied reference to woman treating as a slave, man is the master. Black colour suggests the absence of light and therefore menacing and the narrator's feet look "like a prisoner's, all blackened and cracked and scarred and dirt an inch thick around every toenail? …If this is the state of her feet, what must she have endured inside her?" (04-5). Therefore, black signifies her detachment, despair, unhappiness and even her death — death of her dreams about her true love. She yearns for a true lover and voices her imaginary lover: "You, without any masquerade… You, just shining in your own light,

dwelling in your darkness…I need your realness" (90). Death incorporates life or birth too: "I do not know if I'm alive now. This is the kind of alive that feels dead… there are the dead who feel alive." (93). The second "dead" refers to the narrator's stay next to the Nandigudda cemetery.

The narrator's story of "Young Woman as a Runaway Daughter" becomes "the great battle of My Mother versus the Head Lice" (09). She is "brittle and empty like a shell" with black lice swarming in her hair and her mother "would put a white bedsheet over her head and rub her hair and then the sheet would be full of lice" (08-9). Here, black and white colours are purposefully juxtaposed to highlight the miserable and dreary state of the runaway daughter. Her mother resorts to several means to retain her decency and refinement, but in vain. Her multi-cleansers include colourful/colourless shampoo, dried brown *sheekakai*, brilliant blue or erythrosine Nizoral and green neem leaves. They have rinsed out the dirt from her hair but failed to heal the wounds inflicted on her body and soul by her paranoid husband.The narrator's broken marriage hasbroken her parents too. A runaway daughter at home always becomes an object of condemn and rebuke in the Indian society. She has broken off her "deal with the devil" that she seemed to have made within her marriage (66). The devil directly implies dark force.

Through her narrator, Kandasamy hits out at the different biases based on colour and gender which promotes Othering. The wild, untameable black hair of possessed women has been seen as the sign of the devil itself" in contrast to "the matted hair of women saints and the shorn head of widows, a symbol of their having given up all claims to exercising sexuality" (72). In the colonial years, short untied loose hair was seen as the influence of the Western culture: "a corruption of the local ideal; a symbolism of unbridled, shameless desires; an effort at modernity at the expense of tradition; a betrayal of the national through an allegiance to the white man through a replication of the white woman's styling" (73). In the eyes of the ordinary men, such women in the bazaar have come to be known as the white men's prostitutes: "the one who was sleeping with the enemy, sexually servicing the oppressor, and she deserved the greatest disdain" (74). In the era of postcolonial days, such attitudes have not changed. In the postcolonial classes, everybody speaks of the empire writing back: "But within these classrooms, we are still products of the same empire — carrying our bags of shame and sin" (74). This is neocolonialism where fair is beautiful: "In Cixôus's novel, there is a skin problem. In my world, skin is the problem…and dark women like me have a hard time bursting into intellectual feminist scenes" (103). Helene Cixôus's novel *Hyperdream* has changed the narrator's perspective regarding skin colour: "…has altered me already, made me look at my mother's dark skin in a new light. I imagine this skin you see… as a rose-tinted white with a hint of straw" (103). Here, Kandasamy's statement hints two opposing ideas simultaneously.

Being a writer, more than that, an Indian writing in English, the narrator is always the butt of her husband's ridicule: "The whore in those times was the link, the bridge between the colonizer and the colonized. Today, the link — the writer who writes in English, this bridge — she is the whore" (74). When the *Outlook* magazine asks her for an essay on sex surveys for their annual issue, he makes fun of her and his laughter is his anger in disguise. He blames that she has been asked to write on sexuality because she has the wide-ranging experience of having fucked men ranging from twenty years old to seventy years old:

You are a slave of this corporate media. You are selling your body. This is elite prostitution, where men do not get to touch you, but they masturbate to the image of the woman you represent. This is not freedom. This is sexual anarchy. This is not revolutionary. This is pandering to vulgar imperialist culture. (76)

He accuses her of having slept with the entire editorial team at *Outlook*and she has been particularly intimate with the one who has made the phone call. When they goes to his

track of her speech and sound effects synchronize with her actions. The background and the mood-music is provided by the early morning church bells, the "drop-dead of afternoons, the chaos of every evening, the cawing of crows that mark the dying light, the slow way the grating noise of crickets seeps in to announce the night, by the heavy trucks that take to the empty streets" (21). Painfully she observes:

Here, I am the actress, the self-anointed director, the cinematographer an screenplay writer. Every role that falls outside of being a wife affords me cr freedom. The story changes every day, every hour, every single time I sit and c out. The actors do not change, I cannot escape the set, but with every shift perspective, a different story is born. For a movie that will never be made and hit the screen, I have already prepared the publicity material. (22)

One of the narrator's so-called movie entitled "Twelve Angry Men (in Be described as a "bawdy bedside romp features twelve angry men and one bewitching who is busy plotting her escape from their ideological clutches" (23). The shot zooms her as the young bohemian writer in the company of eleven angry men — Hegel, Engels, Lenin, Stalin, Mao, Edward Said, Gramsci, Zizek, Fanon and Che Guevara — with her angry husband "inadvertently jeopardizing his own position as the object desire" (22). She has to fake orgasmic delight when he injects ideology into her mind She reluctantly plays the role of a recruit by her husband to crusade in favour of a Revolution.The narrator has been fascinated by the broad Left politics since her teenage loved Che Guevara, Bob Marley, Fidel Castro's speeches, Soviet children's literature magazines filled with little soldiers and magical creatures with flaming hair waging against greed and selfishness for the common good. Even after the collapse of Soviet U "my blood still ran *red*" (27). She has attended camps, watched documentaries, bought published from Moscow, from various parts of Chennai and reread the *Communist Mani* At twenty six, after a tragic relationship with a politician in Kerala, she falls in love Maoist University Professor, a former Naxalite guerilla during an online campaign the death penalty. Her first responses to his ideologically relevant questions turns to be blunders. She assumes to fight against LPG — Liberalization-Privatization-Globalizati as red cylinders of Liquefied Petroleum Gas and MLM — Marxism-Leninism-Maoism Multi-Level Marketing. Their discussion on Lenin's conversations with Clara Zetkin Women's Question becomesthe clincher to decide him as her life partner. The marriage the self-proclaimed 'true Maoist' becomes a "Re-education camp" and a "Communism and she becomes the "wife-student learning from this Communist crusader," her hus teacher:

Q: Where does the sun set? A: On the ruling classes, who exploit the working masses.
Q: What does the sky hold? A: The red star …
Q: What do we live for? A: The Revolution…
Q: What is love? A: …
Q: I said, what is love? A: Communism?
Q: Correct! And what is Communism? A: Love?
Q: No! Communism is not love; it is a hammer we use to correct ourselves and to crush enemies (32).

For him, love is Communism. But Communism is not love, it's a hammer to pu things right and to use it against their enemies. So, he is not a Communist in the true but a paranoid self-proclaimed "true Maoist" (32). The Red represents leftist ideals signifies the suffering and sacrifice of the proletariat. The red star has been the Communist symbol since the Russian Revolution. The five points of the red star denote the five inhabited continents or the five fingers of the worker. It also suggested the five groups prevailed in Russia — the youth, the military, the peasantry, the industrial wo

and the intelligentsia. The hammer and the sickle symbolize industrial workers and agricultural labourers respectively and thus they represent resistance to the capitalist forces. In Soviet Union, the red star embodied the Red Army and the military whereas the hammer and sickle stood for the peaceful labour.

The Communist symbols universally stand for freedom and liberty. The hammer and the sickle, which represent the exploited class, seem no longer applicable in Kandasamy's *When I Hit You*. The narrator's Communist husband has become a threat to her own existence. In the West, "the Red" and "the Red Scare" were used as synonyms for the fear of Communism. In the novel, the narrator's husband has turned to be a dictator: "I must learn that a Communist woman is treated equally and respectfully by comrades in public but can be slapped and called a whore behind closed doors. This is dialectics" (34). She becomes a "moon with a bleeding heart" (113) and "smoke without fire" (117). The "blinking red dot" (135) "now becomes a big red bleeding heart" (145) and "becomes a smoke bomb" (146).

The Russian dictator Joseph Stalin is known to have worn a red star pendant on his attire. In the novel, Kandasamy bestows narrator's husband with Stalinist attributes: "Within our marriage, my husband holds the role of People's Commissar for Labour. (At the moment he's wearing a red T-shirt and jeans. In the art-film version I'm directing in my head, I plan to dress him in the appropriate Stalinist attire.)" (78). Stalin was a prominent member in The People's Commissar for Labour, which replaced the Ministry of Labour of the Tsarist regime after the Russian Revolution. He used to issue emergency decrees to sustain industrial production for the Red Army as part of their Military Communism or War Communism. In order to consolidate his authority, after Lenin's death, Stalin implemented the Great Purge or the Great Terror to purge the Communist Party, the government officials, the intelligentsia and even the peasantry. The methods include forced confessions by extreme torture, surveillance, imprisonment and execution without trial. Around two to six lakh people were killed during the Great Purge. The narrator's husband in *When I Hit You* instills fear in her by resorting to Stalinist methods: "about the stinging slaps that mark my cheeks and only stop when I have deleted what I have written" (87).He wants to declass her thoroughly and suggests many declassing jobs just to keep her away from her writing under the pretext of leaving behind her petit bourgeois lifestyle. It's obvious that he won't let her go to a workplace unsupervised for the fear of losing her. In their marriage, he is the witch-doctor who wants to drive the demons that possessed the narrator. Instead of green neem leaves, he uses: "... my Mac's power cord, his leather belt, twisted electrical cables..." (154). When he hits her, the terror flows from the fear that "today he uses his bare hands, but tomorrow he could wield a heavy-buckled belt, he could grab an iron rod, he could throw a chair, that he could break open my head against a wall. Every day I inch closer to death, to dying, to being killed..." (155). A man can punish a polluted body as he pleases. He considers her body as polluted: "that's the philosophy of caste, that is the philosophy of my rape" (170). He is a sado-masochist. The masochist in him places a red-hot ladle on his arm to threaten her and the sadist in him shouts: "...this knife. Do you feel it. Cold, yes. It will be warm in a second when I slash your throat...The knife will not know you are a famous writer" (203). He deleted her email and face book accounts. "There is no end to his chameleonism" (232-3). Unlike other Communists, he tries to colonize her.The narrator's Quest for One True Love ends up in her own tragedy. It is like the fear of the red menace sets in the form of her husband: "Communist ideas are a cover for his own sadism" (80). He becomes a Red Peril to the growth of the writer in the narrator unlike the real Communist who embraces the intelligentsia. The language used by Kandasamy after the narrator's marriage expressed the sanguinary symbolism of the red:

> The cord of my Mac-Book which left thin, red welts on my arms. The back of the broomstick that pounded me across the length of my back. The writing pad whose

edges found my knuckles. His brown leather belt. Broken ceramic plates after a journey as flying saucers. The drain hose of the washing machine. I did not kno this was the exemplary life awaiting a newly married woman. (70)

Before their marriage, their future plans were "rosy hazy red" (70). Writing becomes a defiance for her. She decides to write a novel with resistance and defiance theme: "They swear by the red flag of Communism, pay with their lives" (81). She poetry as a better option to verbally entomb her anger. She feels that the therapeutic po poetry will help her to confront the life's challenges in a better way. But he is fer against painting her pain into poetry. He gives a meticulous discourse on the materiali writing poetry. He sets a permanent injunction upon her restricting her literary creativi forgets his own discourse on materialism when he writes poems. He has justifications actions: "I want this material to remain, to remind me of how cruel I have been, to ne me forget that I have wronged you, to make me feel truly guilty not only because I forsaken my ideals, I have not behaved like a Communist" (83). Poems are instanc materialism as per his theory. He can write, she cannot. He added: "Your poems blam My poems blame me. There is a difference between the hatred that fuels your poems, a self-criticism that forms the backbone of mine." (83). His double standard attitude vi the principle of justice by holding different sets of principles for similar situations. crushed in this marriage where he is the poet: "… one of his poems begins:

When I hit you,

Comrade Lenin weeps.

I cry, he chronicles. The institution of marriage creates its own division of la (84)

The same standards should be applied to all people irrespective of class, colour, and gender. He afflicts pain on her and revels in when his persecution is put in to verse narrator's epitomic expression of anger is manifested in four words — "I cry, he chroni He has immortalized his tyrannical brutality in his verse.The narrator wonders ho opportunist like her husband managed to make inroads to the Communist Party sh always respected: "For every genuine revolutionary in the ranks, there is a careerist, a beater, an opportunist, a manipulator, an infiltrator, a go-getter, an ass-licker, an alco and a dopehead…Parties build themselves on the shoulders of real heroes, nurture thems on their bloodshed, even as the imposters make merry" (90).Althusser's strangling of his is given as an example for this hypocritical situation. Her husband says that a Comm observes his birthday on the martyrdom day of revolutionary Bhagat Singh. Every fer writer, including the narrator, suffers from depression: "Three inches of cleavage, two b of poetry, plenty of sex and depression — that's all it takes to make a woman a fa writer. Beginning from Sylvia Plath to Kamala Das, that is the only trajectory you ha followed" (151).For him, depression is a symbol of meaninglessness of boun existence.In *When I Hit You*, words especially pertaining to colours play a significant r the development of the plot and characterization. Intermittently, Kandasamy alter between first and third person narratives: "I am the woman at whom society cannot s throw stones because this me is a she who is made up only of words on a page, and the she speaks are those that everyone hears in their own voice" (246). Her personal bec universal. Her microcosm becomes macrocosm. She voices:

> The only body I feel empowered to share is the body I fashion out of my own w My skin acquires the right shade not in mirrors but when I write down. Then, it i fair or dark, it is not rough or glowing, it is not a skin that gets judged condemned. It is skin on a woman like the bark on a tree. Brown, clearer under w softer in the monsoon, brighter in sunshine, flaming in twilight. (240)

MATIZ

The unnamed narrator can be any woman. The different colour motifs unveils the extremity of degradation subjected on the narrator protagonist by her husband. But, in the end, she retains control of her story.Kandasamy has successfully used the power of colour to empower not only herself but also the reader. She has successfully used many instantly recognizable colours as symbols of Othering and grabs the attention of the readers because of its high visibility.

WORKS CONSULTED

Kandasamy, Meena. *When I Hit You Or, a Portrait of the Writer as a Young Wife*. New Delhi: Juggernaut, 2017. Print.

Tuneja, Preti."*When I Hit You Or, a Portrait of the Writer as a Young Wife*by MeenaKandasamy: A Review." *The Guardian*. 07.07.2017. Accessed Date.28.10.2017. Web.

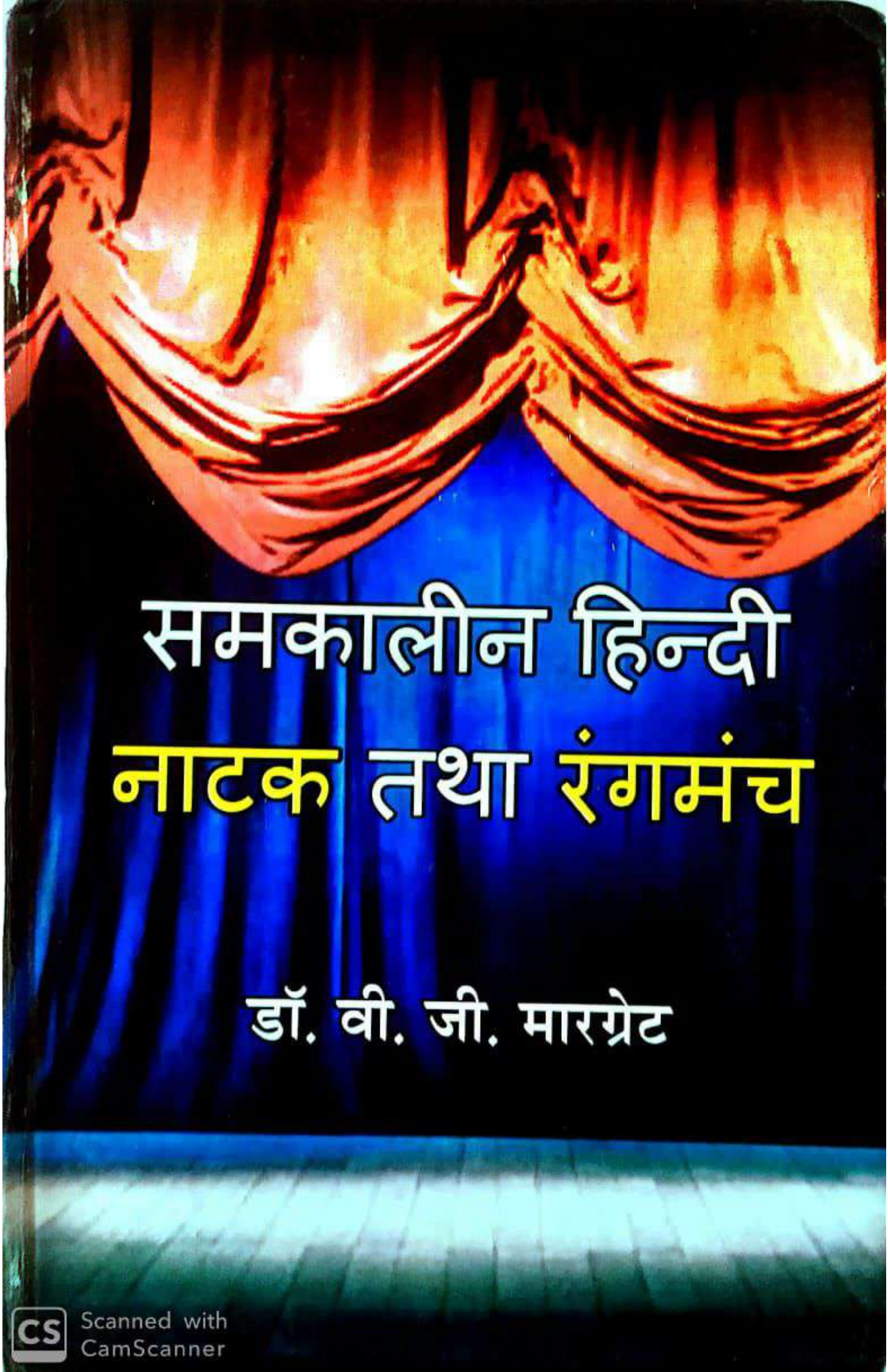

समकालीन हिन्दी नाटक तथा रंगमंच

डॉ. वी. जी. मारग्रेट

Scanned with CamScanner

ISBN : 978-93-85476-66-2

- पुस्तक
  समकालीन हिन्दी नाटक तथा रंगमंच
- संपादिका
  डॉ. वी.जी. मारग्रेट
- प्रकाशक
  अमन प्रकाशन
  104ए/80सी रामबाग, कानपुर-208 012 (उ.प्र.)
  मो. : 09839218516, 08090453647
  फोन : 0512-2543480 (आफिस)
- संस्करण
  प्रथम, सन् 2017
- ©
  लेखिकाधीन
- मूल्य
  ₹ 495.00 मात्र
- शब्द सज्जा
  अनुप्रा ग्राफिक्स, बारादेवी, कानपुर
- मुद्रक
  साक्षी ऑफसेट, यशोदा नगर, कानपुर

SAMKALEEN HINDI NATAK TATHA RANGMANCH

Edited by **Dr. V.G. Margret**

Price : Four Hundred Ninty Five Rupees Only

Scanned with CamScanner

16. असंगत नाटक : कथ्य और शिल्प 117
-डॉ. राधामणि.सी
17. नुक्कड़ नाटक का मसीहा 'सफदर हाशमी' और उनका 'औरत' 128
-डॉ. पी.गीता
18. 'कोर्ट मार्शल' में दलित संवेदना की अभिव्यक्ति 132
-डॉ. प्रमिदा.के
19. 'पोस्टर' नाटक : आदिवासी चेतना के सन्दर्भ में 135
-डॉ. मारग्रेट.वी.जी.
20. समकालीन परिदृश्य : शाहिद अनवर के नाटक 'हमारे समय' में 139
-डॉ. प्रिया.पी.
21. संस्कृति का बाज़ीकरण 'चोर निकल के भागा' में 145
-लानिषा.वी.
22. समकालीन शिक्षा व्यवस्था का विकृत वातावरण : ओम.क्रान्ति क्रान्ति 149
-सुजिता.पी.
23. कलाकार का आत्म संघर्ष-'कालकोठरी' में 154
-हद्या एम.पी.
24. 'जादू का कालीन' : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन 158
-दिव्या इ.ए.
25. समकालीन हिन्दी रंगमंच 164
-डॉ. माया.पी
26. समकालीन हिन्दी नाटकों की रचना-दृष्टि और रंगमंचीय दृष्टि 172
-डॉ. जेम्स पॉल
27. रंगमंच पर साहित्य का प्रभाव 178
-डॉ. एन.एम. सण्णी
28. नुक्कड़ रंगमंच तथा हिन्दी के नुक्कड़ नाटक-एक विश्लेषण 185
-डॉ. षिबी.सी
29. दलित नाट्य लेखन और रंगमंच 188
30. हिन्दी दलित नाटक और रंगमंच : दशा और दिशा 193
-डॉ. शरशाद खान.एम.
-डॉ. सुशीला टाकभौरे
31. इलैक्ट्रॉनिक मीडिया व रंगकर्म 200
-शाली पद्मावती.पी

Scanned with CamScanner

28

नुक्कड़ रंगमंच तथा हिन्दी के नुक्कड़ नाटक-एक विश्लेषण

□ डॉ. पिवी.सी

नुक्कड़ रंगमंच की अवधारणा : नाटक और नुक्कड़ नाटक में कई भेद हैं। नाटक से ही विकास और ऊर्जा पाकर नुक्कड़ रंगमंच का प्रादुर्भाव हुआ था। बिलकुल प्रोसीनियम नाटक की तरह नुक्कड़ नाटक का भी एक स्क्रिप्ट होता है। नाटक के रंगमंच में जो कठोरता होती है, वह नुक्कड़ रंगमंच में नहीं। उसमें एक सशक्त आशय होता है, जो बिलकुल सशक्त रूप में नुक्कड़ रंगमंच में उभरता है। यही आशय या विचारधारा ही नुक्कड़ रंगमंच को एक अलग अस्तित्व प्रदान करते हैं। यहाँ विचारधारा को रंगमंच में एक हथियार का रूप-सज्जा देकर प्रस्तुत किया जाता है। इसका कदापि यह अर्थ नहीं है कि रंगमंचीय नाटक कोई दकियानूसी विचार में भरपूर है। फर्क इतना है कि नुक्कड़ रंगमंच में जो ताज़गी और प्रभविष्णुता है वह बिलकुल अपनी विचारधारा के कारण है। नुक्कड़ रंगमंच अपने कथ्य एवं शिल्प में एक विचारधारा को सूक्ष्म रूप से आलोचना करने में बाध्य रहते हैं। इसमें रंगमंच का संपूर्ण संकल्प तो पाया जाता है, साथ ही साथ नुक्कड़ की एक विशेष अहमियत भी विद्यमान है। लेकिन रंगमंचीय नाटकों में यह विशेषता नहीं है। नुक्कड़ की संभावनाओं को इसमें नाटककार इस्तेमाल करते हैं। नुक्कड़ में जो सामग्रियाँ मिलती हैं, नाटक में प्रयोग में लायी जाती हैं। कभी एक कूड़ा कभी एक स्ट्रीट लाइट और कभी एक घड़ी तक नाटक में प्रयुक्त की जाती है। हाथ में एक छड़ी और कागज़ से बनी हुइ टोपी पहनकर जब अभिनेता

Scanned with CamScanner

नुक्कड़ के रंगमंच में अभिनय करते हैं तो लोग आसानी से यह समझ पाते हैं कि वह एक पुलिस पात्र है । इस तरह नुक्कड़ रंगमंच में लचीलापन दर्शनीय है जो रंगमंचीय नाटक में नहीं के बराबर है । नुक्कड़ रंगमंच में सरलता इसी लचीलेपन के कारण संभव हो जाता है । नुक्कड़ रंगमंच की अहमियत यही सरलता और स्वाभाविकता है । इसलिए नुक्कड़ रंगमंच ज़्यादा उपयोगशील रंगमंच बन जाता है । यह रंगमंचीय नाटक का उत्प्रेरित रूप है जिसमें संवेदनशीलता भी अधिक होती है ।

पहले भी कह चुके हैं कि नुक्कड़ रंगमंच हमारे लोकनाट्य रूपों से खूब प्रभावित है । लोक से सम्बन्ध रखने के कारण लोकनाट्य में जनवादी चेतना दर्शनीय है । इसलिए लोकनाट्य से नृत्य, संगीत, अभिनय और वेशभूषा आदि के तत्त्वों को अपनाकर जनवादी ढंग से नुक्कड़ रंगमंच काम करते आये हैं । खुले मंच की अवधारणा को भी नुक्कड़ रंगमंच ने लोकनाट्यों से ही ग्रहण किया था । लोकनाट्यों का प्रभाव मंचीय नाटकों में अक्सर ही पाया जाता है ।

नुक्कड़ रंगमंच के लिए एक पाठ होता है । पाठ को विचार-विमर्श के साथ दृश्य में बदलने का प्रयास भी होता है । लेकिन कभी इस पाठ में निरन्तर बदलाव आते हैं, और दृश्य की संभावनायें और भी बढ़ जाती हैं । मसलन सफ़दर के 'मशीन' नामक नाटक में मशीन के लिए एक पाठ ज़रूर है, फिर भी दृश्य में बदलते समय उसकी प्रस्तुति मशीन का चित्र या नकली रूप में नहीं, बल्कि अभिनेता मशीन के पुर्जे बनकर आवाज़ निकालने से होते हैं । यहाँ तक आते-आते पाठ दृश्य में बदलते समय विशेष रूप धारण करते हैं, जो नुक्कड़ रंगमंच का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू है । यहाँ पर स्थायी रूप से पाठ का होना अनिवार्य नहीं है, जैसे प्रोसीनियम रंगमंच में होता है । एक ही पाठ को लेकर समान दृश्यों की प्रस्तुति प्रोसीनियम थियेटर में होती है । नुक्कड़ रंगमंच में पाठ और दृश्य हर एक प्रस्तुति के बाद थोड़ा परिवर्तन के साथ अगली प्रस्तुति की ओर जाती है । यहाँ पाठ और दृश्य में बदलाव होते हैं, या उसके लिए अवकाश मिलते हैं । हर एक प्रस्तुति के बाद विना कथ्य परिवर्तन के साथ सुधार होते रहते हैं ।

नुक्कड़ रंगमंच की इन सारी विशेषताओं के कारण नुक्कड़ रंगमंच का प्रयोग वही कर सकता है, जिनमें नाटक करने की भली-भाँति जानकारी हो । नाटक को नुक्कड़ में प्रस्तुत करने से नुक्कड़ नाटक नहीं बनते । नाटक के विशेषज्ञ ही नुक्कड़ रंगमंच की अहमियत को समझ सकते हैं और उसकी संभावनाओं का सही प्रयोग कर सकते हैं । विचारधारा को दृश्य में बदलना आसान

Scanned with CamScanner

काम नहीं है । विचारों के अनुकूल प्रभावी दृश्यों का आयोजन करना पड़ता है, गीत, संवाद, भाषा आदि में प्रभविष्णुता का होना ज़रूरी है । नाटक की शुरुआत कैसे हो, अंत कैसे हो जैसी बातें पहले से ही सुनिश्चित रहती हैं । स्क्रिप्ट न होने पर भी नाटक की प्रस्तुति प्रभावी रूप में होती है ।

नुक्कड़ रंगमंच में नाटककार से लेकर अभिनेता तक को अपने मनोधर्म के अनुसार नाटक के लिए बिलकुल अनुकूल रूप में काम करने की सुविधा मिलती है । नुक्कड़ की जो परिस्थिति है उसके अनुसार अपने मनोधर्म से प्रस्तुति करना इसमें संभव है । नुक्कड़ रंगमंच एक सामूहिक कार्यवाही की उपज है । इस तरह के विविध भाव और कल्पना से नुक्कड़ रंगमंच का निर्माण हुआ है, जिसकी संभावनायें अपार हैं । रंगमंचीय नाटक की तरह एक पाठ को लेकर दृश्य प्रस्तुति तक की संपूर्ण कार्यक्रम को हम नुक्कड़ रंगमंच कह सकते हैं ।

●

₹ 495/-

ISBN : 978-93-85476-66-2

अमन प्रकाशन
104-ए/80 सी, रामबाग, कानपुर-208012 (उ.प्र.)
फोन : 0512-2543480, (फैक्स) 0512-2543480
मो. : 08090453647, 09839218516
ईमेल : amanprakashan0512@gmail.com
वेबसाइट : www.amanprakashan.com

Scanned with CamScanner

भीष्म साहनी का साहित्य

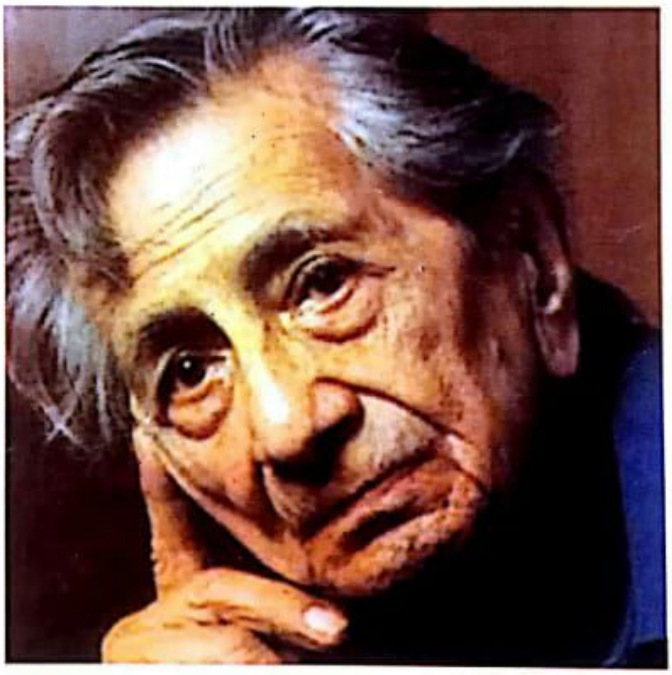

संपादक

डॉ. प्रमोद कोवप्रत

Scanned with CamScanner

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से
वित्तीय सहायता प्राप्त

ISBN : 978-81-8111-371-9

© : सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशक : गोविन्द पचौरी
जवाहर पुस्तकालय
हिन्दी पुस्तक प्रकाशक एवं वितरक
सदर बाजार, मथुरा-281001 (उ.प्र.)
दूरभाष : 09897000951
ई-मेल : jawahar.pustakalaya@gmail.com

मूल्य : 495.00 (चार सौ पचानवे रुपये मात्र)

प्रथम संस्करण : 2017

आवरण : विनीत शर्मा

शब्द-संयोजन : गीता डिजाइनिंग ग्रुप, दिल्ली-110094
मो. : 09350345268, फोन : 011-22813053

मुद्रक : जय भारत प्रेस, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

Scanned with CamScanner

अनुक्रम

खण्ड – एक

धर्म, समाज, और भारतीय राष्ट्र 13
–पंकज पराशर

सांप्रदायिकता का आईना : 'तमस' 27
–राम प्रकाश

'चीफ की दावत' : एक उत्तर आधुनिक पाठ 54
–सुधा बालकृष्णन

सांप्रदायिकता, संवाद और भीष्म साहनी का साहित्य 61
–पी. रवि

सामाजिक यथार्थ और भीष्म साहनी का उपन्यास साहित्य 68
–नामदेव एम. गौडा

विभाजन की बीभत्स मुस्कान 78
–वी.के. सुब्रमण्यन

'तमस' : वैचारिक समस्याओं का जीवंत दस्तावेज 82
–सुमा टी. रोडन्नवर

पितृ दर्द के उत्तराधुनिक आयाम 88
–पी.जे. हेरमन

साहनी जी के जीवन का यथार्थ और 'झरोखे' उपन्यास 96
–शकुंतला पाटील

मध्यवर्ग की उच्च आकांक्षाएँ : भीष्म साहनी की कहानियों में 101
–राहिना बक्कर

भीष्म साहनी की कहानियों में चित्रित मातृत्व 106
–माया. पी

भीष्म साहनी की कहानियों में चित्रित बचपन 112
–संगीता. पी

'चील' कहानी में स्त्री पुरुष मानसिकता 117
–षिबी. सी
'तमस' सिनेमा के साहित्यिक और तकनीकी पक्ष 120
–मणिदास के.वी.
'बसंती' में नारी शोषण 125
–धन्या जी.एस.
अमलदारी के दलदल में : 'मय्यादास की माड़ी' 129
–बसवराज के. बारकेर
'कुन्तो' उपन्यास के स्त्री पात्र 133
–हृद्या एम.पी.
'कडियाँ' पारिवारिक विघटन का दस्तावेज 139
–आशिवाणी के
सांप्रदायिकता के खतरे में 'तमस' 143
–रश्मी यु.एम.
भीष्म साहनी की कहानियों में सांप्रदायिकता 147
–शहला के.पी.
'मय्यादास की माड़ी' : पारंपरिक और समकालीन परिवेश 152
–सुमा एस.

खण्ड – दो

भीष्म साहनी के नाटकों में मूल्यबोध 157
–अशोक बाचुलकर
'हानूश' : रचनाकार की दुर्दमनीय सिसृच्छा और प्रगतिशील चेतना 177
–अलका पाण्डेय
समकालीन संदर्भ एवं 'मुआवजे' 183
–हेना
नारी शोषण की गाथा : 'माधवी' 189
–मोहन टी.
'कबीरा खड़ा बाज़ार में' : एक अध्ययन 195
–प्रीति के.
'हानूश' : भीष्म साहनी की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि 199
–नागरत्न राव

कथाकार का आत्मसंघर्ष : 'हानूश' 206
–मारग्रेट घी.जी.
भीष्म साहनी : साहित्य और इतिहास दृष्टि..... 210
–के. जनार्दनन
भीष्म साहनी की रचनाओं में माँ 215
–के. अजिता
हमारा समय, साहित्य, प्रतिबद्धताएँ : चन्द खयाल भीष्म साहनी के बहाने . 220
–राकेश कालिया
भीष्म साहनी की संपादकीय दृष्टि..... 225
–विपिन तिवारी
कालजयी साहित्यकार भीष्म साहनी..... 234
–एस.स. मंजुनाथ
आगे की सैर में अतीत की नाव पर 238
–दिव्या एम.टी.
'माधवी' को पुन: पढ़ते वक्त..... 246
–प्रमोद कोवप्रत

'चील' कहानी में स्त्री-पुरुष मानसिकता

–पिवी. सी.

हिन्दी के कहानीकारों में भीष्म साहनी का स्थान अद्‌वितीय हैं। उनकी एक प्रमुख कहानी है चील। कहानी का प्रारंभ चील का आकाश से नीचे झपट्‌ट मारते हुए आने की दृश्य से होता है। कहानी कभी दार्शनिक और कभी मानसिक व्यापारों का खेमा बन जाता है। कहानी का मुख्य पात्र 'मैं' हूँ। कहानीकार ने विविध जीवन मुद्दों को हमारे सामने रखा हैं। कहानी का वातावरण भारती पार्क वनाया गया है, जहाँ नायक बैठा हुआ है। चील के माध्यम से कहानी विकसित होती है। "चील ने फिर झपट्‌टा मारा है। ऊपर, आकाश में मण्डरा रही थी, जव सहसा, अर्धवृत्त बनाती हुई तेजी से नीचे उतरी और एक झपट्‌टे में, मांस के लोथडे को पंजे में दबोच कर फिर से वैसा ही अर्धवृत्त बनाती हुई ऊपर चली गई।" यही कहानी का पहला दृश्य है।

नायक शाम के समय पार्क में बैठा हुआ था। तव उसे लगता है कि कोइ दूर चलती जा रही थी, वह शायद उनकी ही पत्नी शोभा है जो उसे छोडकर चली गयी थी। वह कभी यह न सोचा था कि शोभा उसे छोडकर चली जायेगी। एक वार एक जानकार कहा था कि "हम आकाश में मण्डराती चीलों को तो देख सकते हैं पर आकाश इन्हीं की भांति वायुमण्डल में मण्डराती उन अदृश्य चीलों को नहीं देख सकते जो वैसे ही नीचे उतर कर झपट्‌टा मारती हैं, और लहु-लुहान करके या तो वहीं फेंक जाती हैं, या उसके जीवन की दिशा मोड देती हैं।" चील जीवन में झपट्‌टा मारकर आनेवाले विविध घटनाओं का प्रतीक हैं। यह झपट्‌टा कभी-कभी अदृश्य होकर आती है और जिन्दगी को ही वदल देती हैं।

शोभा के प्रति उनके मन में अव भी वहा प्यार है जो पहले भी था। उसे देखने पर उन्हें लगता है कि शोभा में वही मुस्कान आज भी है, लेकिन थोडा दुवली हो गई है। चाल में अभी भी वही कमनीयता है। उसका मन चाहता था कि जाकर उनसे पूछे कि तुम कैसी हो? लेकिन ऐसा न करके वह पेड़ के पीछे छुपता हुआ उनका पीछा करता है। यही आकर कहानी नयी मोड़ लेती है। शोभा

Scanned with CamScanner

का पीछा करते हुए नायक की मानसिक व्यापार धीरे-धीरे खुलने लगते हैं जो स्त्री-पुरुष मानसिकता के धरातल पर महत्वपूर्ण है। 'कई बर तुम्हारे व्यवहार से मेरी आत्मा-सम्मान खो गयी थी'। स्त्री को व्यक्तित्व का माप-तोल करना कोइ आसान काम नहीं है। वह सोचता है कि 'जीवन की यह विड़म्बना है कि जहाँ स्त्री से बढ़कर कोई जीव कोमल नहीं होता, वहाँ स्त्री से बढकर कोई जीव निष्ठुर भी नहीं होता।' लेकिन वह स्वयं को इसका कारण मानता है जो हमेशा कुपित सा बर्ताव किया था।

शादी के पहले दिनों में जब कभी शोभा रूढ़ जाती थी किसी भी तरह खेल-मज़ाक करके उसे वह मनाते थे। धीरे-धीरे शोभा पर जो आकर्षायता थी घटने लगा था। दोनों के बीच खाई चौड़ी होती गई, फैलती गई। शोभा कहने लगी कि, मुझे इस शादी से क्या मिला। तब वह पूछा कि मैंने कौन सा अपराध किया कि तुम सारा वक्त मुँह फुलाये रहो और मैं सारा वक्त तुम्हारी दिलजोई करता रहूँ। यहाँ स्त्री-पुरुष संबंधों के बीच की एक परम सत्य को कहानीकार प्रस्तुत करता है। वह कहानी के माध्यम से कहते हैं कि स्त्री-पुरुष संबंधों में कुछ भी तो स्पष्ट नहीं होता। भावनाओं के संसार के अपने नियम हैं, या शायद कोई भी नियम नहीं। कहानीकार यह कहना चाहते हैं कि स्त्री और पुरुष के बीच जो संबंध होता है भावनात्मक होता है, जिसे किसी नियम के अनुसार मापना मूर्खता होगी। उसमें आज जो रागात्मकता है वह शायद कल न होगा। यहाँ एक बडा सवाल हमारे सम्मुख आता है कि पति और पत्नी जीवन भर एक तीव्रता, गतिशीलता और प्रवाह के साथ प्यार कर सकते हैं? क्या उसके बीच तनाव के कारण प्यार हमेशा के लिए खत्म होता है या कहानीकार इसका वस्तुनिष्ठ उत्तर नहीं दे पाते।

दाम्पत्य जीवन में किन-किन छोटी-छोटी बातों को लेकर तनाव की स्थिति आ जाती है और तलाक हो जाती है। वैवाहिक जीवन के पहली दिनों में जो सहज-सद्भावना होती हैं, नष्ट हो जाती है, और शोभा की सहज मुस्कान भी। नाक-नक्श और अदायें भी अपना जादू खो बैठा था। शोभा को देखते ही मन कहने लगा कि तू बड़ी मूर्ख लगती है। क्या पत्नियाँ भी ऐसे सोचती होंगी? इस पर सोचना पाठक का दायित्व बन जाता है। कई दिन बाद देखने पर शोभा के प्रति नायक के मन में अब भी वही तन्मयतापूर्ण प्यार का सुगन्ध है, जो पहले था। अपनी दृष्टिपथ से शोभा का गायब हो जाने से वह परेशान हो जाता है। और उनके मन में बार-बार यही आवाज़ आती है कि मैं तुम्हें खो नहीं सकता।

शोभा को दुबली और निस्सहाय देखकर वह स्वयं को धिक्कारने लगते हैं। शोभा अपनी बालों पर लाल रंग का फूल टांकी हुई थी। यहाँ स्त्री और पुरुष मानसिकता का विशद चित्रण करके कहानीकार लिखते हैं कि "स्त्रियाँ मन से

Scanned with CamScanner

क्षुब्ध और बेचैन रहते हुए भी बन-संवर कर रहना ना भूलती। स्त्री मन से व्याकुल भी होगी तो भी साफ सुथरे कपड़े पहने, संवरे-संभले बाल, नख-शिख से दुरुस्त होकर बाहर निकलोगी। जबकि पुरुष, भाग्य की एक ही थपेड़ा खाने पर फूहड़ हो जाता है।" यह ज्यादा विवादपूर्ण मामला है। नायक अब पुन: मिलन की आशा में है। उसे लगाता है कि शोभा भी ऐसी सोचती है। कहानी के माध्यम से यह सवाल उठता है कि क्या आत्म सम्मान की भावना केवल पुरुष का हक है? शोभा का बिना कहकर घर छोड़ने पर वह कहता है कि 'घर में तुम्हें न पाकर मेरे आत्म-सम्मान को धक्का लगा था'। ऐसे सोचने पर भी वह अपनी पत्नी को खोना नहीं चाहता। उसे भय है कि जीवन की समस्यारूपी चील शोभा को अपने पास से उड़ाकर न ले चलें। भय के कारण वह शोभा के पीछे भागते हैं। लेकिन पास पहुँचने के पहले शोभा पार्क के बाहर पहुँच गयी थी।

इस कहानी के माध्यम से स्त्री-पुरुष मानसिकता को आँकने का कार्य किया गया है। चील के झपट्ट से जीवन में अचानक आनेवाले उलझनों का वर्णन है। उनमें से कुछ अदृश्य होते है, जिसको हम अपने ही मन से उपजाते है। कहानी का मूल ढाँचा मनोवैज्ञानिकता पर आधारित है।

* *

About the book

This is a compilation of peer reviewed papers pertaining to the field of Trauma Studies presented at the National Seminar held at Govt Arts and Science College Ollur on 22 and 23 November 2018.

EDO

Department of English, Govt Arts and Science college Ollur, 680306

9 789353 464530

Unclaimed Experiences and Forbidden Zones : Trauma in all its Manifestations

Honey Sabu & Seenia Tom Kanady

Unclaimed Experiences and Forbidden Zones

Trauma in all its Manifestations

with an introduction by Dr. C.G. Shyamala

Proceedings of the two day National Seminar held on 22 & 23 November 2018 organized by the Department of English, Govt. Arts & Science College Ollur

Sponsored by the Directorate of Collegiate Education, Govt of Kerala

Acknowledgements

First and foremost, we would like to thank the former Head of the Department of English, Asst. Prof. Pradeep Hariharan who dared to dream from this nondescript Department which existed in physical space as a sign board tacked on to the wall above his chair. Dr K Jayakumar, our former Principal was indeed a pillar of strength in all our endeavours. Dr Smitha M, Asst. Prof. of the Department of English, Govt. College Madappally was with us with her constant encouragement and support, right from the inception of the seminar. Dr C. G. Shyamala had gracefully stepped in and offered her expertise when the project was on the brink of stalling. We would not have made it if it was not for her timely help. We fondly remember the services of Ms.Rekha Chitra, Ms. Soja P S, Ms.Prinisha K R, Ms. Divya M and Ms.Remya R. We express our sincere gratitude to Asst. Prof. Shaju Mathew and all our friends and colleagues, students and well-wishers who made us hold on to the very end with a nod, a smile or an inspiring remark.

Contents

Sl No	Title	Page no
1	Preface	1
2	Trauma: An Overview Dr C G Shyamala	7
3	Pseudo Narratives, Pseudo Memories: Manipulating Trauma on Screen Dr. Deepa Prasad	33
4	The Transition from Despondency to Optimism in Tony Bank's *Storming the Falklands* Sheeji Raphael	46
5	Catastrophic Experiences: Victimhood, Survival and Recovery in Women Dr Kadeeja Mumthaz	58
6	Trauma of Relationship: A Study of the Traumatic Motherhood in Toni Morrison's *Beloved* and *The Bluest Eye* Stephy Thomas	68
7	Trauma, Violence and Endurance: A Study of Nawal El Saadawi's *Women at Point Zero* as a Resistance towards Patriarchal Hegemony Saranya M S	78

8	Trauma and Women: An Analysis of Arupa Patangia Kalita's *The Story of Felanee* as a Narrative on Women's Trauma Swathi Krishna	92
9	Terror Unleashed: Representation of Trauma in Yasmina Khadra's *The Swallows of Kabul*, *The Attack* and *The Sirens of Baghdad* Shamlal A Latheef	107
10	(Re) locating 'Home': Collective Memories as Cultural Trauma in Hala Alyan's *Salt Houses* Dr Ann Thomas and Pheba K Paul	114
11	Voice of the Wound: A Study of *Island of a Thousand Mirrors* by Nayomi Munaweera Jency James	124
12	Memory of Slavery in the Songs of Poikayil Appachan Jayasurya Rajan	136
13	From Anxiety to Trauma: Adult Perceptions in Auschwitz Holocaust Experience. Mereena Eappen	147
14	Traumatic Memories in Art Spiegelman's Graphic Novel *The Complete Maus* Deepthy Mohan	161
15	Lighting the Road to the Dark Soul, Vincent Willem Van Gogh: Exploring the Traumatic Life and Works of Vincent Willem Van Gogh by Tracing his Letters and Paintings Varsha Binth Saif	174
16	Slow Violence, Environmentalism and Trauma in *Swarga* by Ambikasutan Mangad Athira J.S.	185
17	Trauma Mediates Criminality Shine Santhosh	196
18	Voice and Poise Among Noise: The Repetitions of History, Pain and Trauma in Palestinian Lives in Susan Abulhawa's *Mornings in Jenin* Shijila K.	207
19	Breaking the Silence: Studying the Relevance of the novel *Speak* in the light of #Me Too Movement Karthika P	218
20	The Tale of Survival: Catastrophic Experiences of the Holocaust in Primo Levi's Memoir Susan Joshi	224
21	Gendered Surveillance as Trauma in Ecotopia : A Critique of Manjula Padmanabhan's *The Island of Lost Girls* Pretty John P.	232

22	A Study of Trauma in Graphic Novels Lakshmi.G.Menon	243
23	Poisoned Lives: Endosulphan inflicting Trauma Reena Nair	254
24	Nexus between Masculinity and Trauma: Possibility and Inference Dr. C G Shyamala	273
25	Mobilities of Trauma: Spatiotemporal Cartographies of Trauma and Affect Dr.Smitha M	282
26	The Wounded Healer in Aminatta Forna's *The Memory of Love* Seenia Tom Kanady	298
27	Surviving the Trauma of Divorce: (Re)Imagining Family, Marriage and Kitchen in *Veena's Curry World* Honey Sabu	304
28	Stigma of Motherhood: Trauma of Mothering an Autistic Child in India Kavitharam T R	312

Preface

What we have here is a compilation of peer reviewed papers selected for presentation in the National Seminar on "Unclaimed Experiences and Forbidden Zones: Trauma in all its Manifestations" organized by the Department of English, Govt. Arts and Science College Ollur under the sponsorship of the Directorate of Collegiate Education, Govt of Kerala, India, on 22 and 23 November 2018.

The seminar was conceptualized as an exploration into a set of critical practices which focused on particular social components and cultural contexts of traumatic experience. What we had in mind was an interpretative conversation looking for new insights into the effects of trauma on bodies, minds and communities in order to propose new possibilities for healing.

Dr C G Shyamala in her rather exhaustive introduction "Trauma :An Overview" provides an enlightening account of the expanding field of Trauma Studies.

Dr Deepa Prasad in her paper "Pseudo Narratives, Pseudo Memories: Manipulating Trauma on Screen" draws quite interesting parallels in traumatic and filmic languages. The paper specifically discusses the pseudo narratives and pseudo memories crafted across traumatic experiences in

Editors
Seenia Tom Kanady
Assistant Professor
Govt. Arts & Science College, Ollur
Honey Sabu
Assistant Professor
Govt. Arts & Science College, Ollur

Cover design : Afreen Asafali

Published by

EDO
Department of English

Govt.Arts & Science College Ollur,

District Thrissur

Kerala, 680306

Unclaimed Experiences and Forbidden Zones

Trauma in all its Manifestations

Proceedings of the two day National Seminar held on 22 & 23 November 2018 organized by the Department of English, Govt.Arts & Science College Ollur, © 2018, Department of English, Govt.Arts & Science College Ollur

Sponsored by the Directorate of Collegiate Education, Govt of Kerala

All Rights Reserved

No part of this book maybe reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form by any means, without prior permission of the publisher. The publisher, the authors and the editors are safe to assume that the advice and information in this book are believed to be true and accurate at the date of publication. Neither the publisher nor the authors or the editors give a warranty, expressed or implied with respect to the material contained herein or for any errors or omissions that may have been made.

ISBN : 978-93-5346-453-0

Printed at Educare, Thrissur

Proceedings of the National Seminar on "Unclaimed Experiences and Forbidden Zones: Trauma in all its Manifestations" organized by the Dept. of English, Govt. Arts and Science College, Ollur, sponsored by the Directorate of Collegiate Education, Thiruvananthapuram on 22 and 23 November 2018.

Gendered Surveillance as Trauma in Ecotopia : A Critique of Manjula Padmanabhan's *The Island of Lost Girls*

Pretty John P.

The term 'utopia' refers to an ideal, non-existent political and social way of life. The utopia represents an ideal state which is incredibly superior to the contemporary world whereas dystopia embodies a very unpleasant imaginary realm in which negative aspects of the present day world including the social, psychological, technological and political predispositions are projected into a very catastrophic, bleak and devastating future. In ecotopian fiction, the writer imagines either a utopian or dystopian world or both, revolving around environmental conservation or destruction. Sometimes ecotopia is used as a metaphor for the diverse directions humanity can choose, ending up with one of two probable prospects.

Various surveillance techniques are used in dystopia to monitor the human populations. In *Discipline and Punishment: The Birth of Prison* (1979), Michel Foucault revises Jeremy Bentham's conceptualization of the panopticon as he expands upon the purpose of disciplinary apparatuses and explains the function of discipline as an apparatus of power. According to him, the ever-visible inmate is always the object of information, never a subject in communication. Panopticism gives an authoritative figure the "ability to penetrate men's behavior" without difficulty

and "… he who is subjected to a field of visibility, and who knows it, assumes responsibility for the constraints of power; he makes them play spontaneously upon himself; he inscribes in himself the power relation in which he simultaneously plays both roles; he becomes the principle of his own subjection" (Foucault,*Discipline*202-203).Foucault's panopticism is concerned with the organized monitoring of human populations through elusive and often invisible forces. Such controlling is invisible or at times visible in many parts of the ever more digitalized world of information. Contemporary developments in science and technology have perhaps made Foucault's theories more pertinent in the case of surveillance techniques. The digitalized version of this is Information Panopticon which can be considered as a form of centralized power that uses information and communication technology as observational tools and control mechanisms. Shoshana Zuboff applies the theory of panopticism in a technological context in her *In the Age of the Smart Machine* (1988). Unlike the Panopticon envisioned by Bentham and Foucault, in which those under surveillance were unwilling subjects, Zuboff's work proposes that the Information Panopticon is enabled by thebenefits it offers to willing participants (Zuboff, 326). The reversal of panopticon namely synopticon also happens now and then. The synopticon is concerned with the surveillance of the few by the many. Surveillance includes sousveillance too which is the recording of an activity by using small wearable or portable personal technologies. The term sousveillance,

coined by Steve Mann is a portmanteau of two French words *sur* meaning "above" and *sous* meaning "below." Sousveillance is done by bringing the camera or other means of observation or auditory recording.

Manjula Padmanabhan's *The Island of Lost Girls* (2015)depicts a futuristic ecotopia. It delineates repressive sexual ideologies by juxtaposing a frightening dystopianno-woman-world under clone Generals in the Forbidden Country of Brotherland as against a utopian all female world in the Island of Lost Girls. It portrays alternate worlds of digital surveillance coupled with power structures of dictatorships. *The Island of Lost Girls* is the story of Meiji, the only girl who has remained untouched and unmutilated in a country that has savaged its entire female population. Having saved her from certain death in the new Dark Age that has come upon the world, her guardian, Youngest/Yasmin, has transported her to the only place where she can remain safe – the Island of Lost Girls, where wounded girls are, sometimes literally, stitched back together and given a new life. The novel describes his struggles against the surreal inhabitants of a world gone wrong and with his own transformed identity as a transie to save himself and Meiji.

Through a post-apocalyptic world, Padmanabhan exposes the predicament of transgenders, drones and wo/men with their confusing gender identity and presentation imposed on them by the cloned Generals with

radios embedded in their jaws who wanted to create a perfect world without 'vermin' women. The oppressive and controlling Generals have isolated their region from the rest of civilization to evade the corrupting effect of women because they believe that women are inferior versions of men. When they came to power, they have forced all the men to destroy all the women in their region: "*All the women*. The women who resisted were hunted down, dragged into the streets and butchered. Grenades were inserted to their private parts. Their entrails were hung from the trees like garlands. Unborn babies were torn out of their wombs…Any men who resisted were treated in similar ways (Padmanabhan 69). The threatening world with extreme violence executed on women itself makes it a dystopia. As Vane, the woman mentor of the *Island of Lost Girls* has stated in the novel:

> Whatever you might call it, allow me for the moment to refer it to as a Trauma. A wounding. An assault. Some of you — most of you, I should say — have known enormous damage…Some of you have scars, some of you have missing limbs. But all of you, along with the physical traces of wounds, have invisible wounds, too. (Padmanabhan 69)

The novel offers warnings by giving nightmarish images about what might happen in the near future: "Those who tried to stand up to the abuse were ritually humiliated by being raped by the whole community or stoned to death.

Eventually it was decided that women as a class were no longer necessary to the human race because reproduction could be managed through cloning and the use of animal surrogates such as cows and apes" (Padmanabhan 120). It also reflects the popular concern with the effects of nuclear radiation on the environment and survivors after this massive, worldwide disaster which makes novel's setting as post-apocalyptic. Thus, it posits a future in which gender identity, pollution, climate change and their horrible consequences can make the earth an ecological dystopia. This eco-dystopia is contrasted with an eco-utopia in the Island of Lost Girls governed by Vane. Through this eco-utopia, Padmanabhan contrasts the present world with an idealized society and critiques contemporary values and conditions and sees men or masculine system as the major source of social and political problems and presents women as equal to or superior to men, having rights over their reproductive functions. Padmanabhan's delineation of female-only world agrees to the exploration of female individuality and freedom from the dominating patriarchy. The gender inequalities are intensified to show gender differences or gender power imbalances in the society. Both worlds are single-sex worlds. Surprisingly, heterosexuality is replaced by homosexuality.

The area to which Youngest/Yasmin belonged, the Brotherland, was renamed the Forbidden Country. When the echo-anarchists of the Brotherland nuclear bombed, they were burned out from the memories of the all decent people.

It "has been struck off maps. Whose people have been erased from the register of humanity" "for crimes against the entire planet" and for poisoning the sky and the oceans" (Padmanabhan36). They have never approached the Whole World Union to apologize for their unspeakable crimes. There is no direct trade, travel arrangements, communications and relocations between the four enclaves in the Whole World Union formed after the nuclear detonation of the Suez Canal. The Red Sea became the Poisoned Sea. Even the flying birds fell down dead because of the extreme radiation pollution in The Void or the Deadly Ocean. The Zone Enclave dominates the other three enclaves – Ring, Sunrise and Pacific. It is immensely notorious for its popular continuous cycle of savage war games. No one take notice of the vanquished Zone Warriors who are "bleeding, writhing in pain, dying on the sand" (Padmanabhan19). Games in the Zone enclave believe to erase disparity amongst the people but it turns to be vice versa: "There was a never enough funding for a Women's Team or even a Trans Gender Team. Once it was clear that there would only ever be all-men's teams, the whole shameful exploitation of women who live in the Zone—as booty, as trophies, as entertainment, whatever became the established norm" (Padmanabhan 312). People are allowed to speak only three languages which includes pidgin in the Zone – Unida, Arabic and Modi Kung – and no script except for the numerals written in Arabic. They are given speech-aids so as to ensure the speaking of these three languages. According to Youngest/Yasmin, the age of

knowledge-gathering belonged to the Time Before: "In this post-cataclysmic world, there was no place for scientific curiosity or intellectual pursuit. There were no books, no scholars, no universities. No paper. No written scripts" (Padmanabhan 116). The novel thus explores the impact of science and technology on the earth.

The Island of Lost Girls gives insights into how single-gender worlds or single-sex societies can be developed through the various discourses of power. This is a constant motif in speculative fiction. The women in the Zone known as "feems" are the resources of courage for the warriors. Transie, "a universal figure of ridicule," can do nothing other than offer sex in the pleasure industry (Padmanabhan34).The Island of Lost Girls is a matriarchal utopia of female-only or female-controlled society. It takes in women who are partially or completely dead in the violence that has been caused by the dystopian society.They stitch their bodies together giving them psychological and social rehabilitation: "There are no virgins left in our world. We are all virtually deflowered immediately after our birth. To demystify the cult of purity" (Padmanabhan54).The only virgin is Meiji. Ironically, the virgin girl has been raised as a boy. Meiji does not know about her existence as a woman in the Forbidden Country. She masquerades as a man and is asked to wear prosthetics to hide her sexual parts.Youngest has been forced to undergo sex-change surgeries by the cloned General to Yasmin, the transie: "I'm not free to smile, he thought. I'm not a man dressed in a woman's

body. I'm pathetic, witless maniac. I should be locked up. I should die" (Padmanabhan 14). In this regard, Youngest/Yasmin states that Meiji "is the jewel at the centre of my existence. Yet I cannot afford to keep her. My heart is breaking" (Padmanabhan54). In order to save her, he succumbs to the desires of the General. The dictator is able to know about his whereabouts because of the three electronic leashes embedded in him – the twin satellite locators, one on his wrist, and the other over his heart along the pain-radio in his teeth. He is only able to feel a ghastly silence other than sounds from the audio chip permanently implanted in his upper jaw which always remind him "*Find – the-island. Do–your-duty. In – the – name – of – all – true-men. Sell – the-girl.* A single thread of continuity in the disorderly confusion of his life" (Padmanabhan48). After receiving the speech aid from Aila, another transie, he feels that his own voice is no longer his own. "Eraser" has made Aila to forget and forgive Youngest/Yasmine who killed her father to save himself: "Everything goes. Sadness, fear, pain, everything"(Padmanabhan39). She even cut off the nails of her dead father to use it as nailgrams or holograms as identity for Youngest/Yasmine to reach the Collectory of the Zone.

The women in the distant past of the Brotherland before their extermination "were always fearful of being watched" (Padmanabhan57). Tiny robotic cameras namely shutter flies always buzz above the people: "… the sense of being observed persisted" (Padmanabhan 104). Foucault

posited sexuality as located within structures and discourses of power. Certain forms of sexuality were constructed as unnatural and evil and its practitioners were placed under surveillance. Women mentors in the Island of Lost Girls too uses cameras: "...there were surveillance cameras, whoever was watching him surely knew that, for the moment, he was defeated. Their message to him was very clear" (Padmanabhan 208). Not only Youngest/Yasmin who comes under the surveillance of both the Generals and the Women Mentors but also Meiji who during her stay at the Island of Lost Girls says: "So they are watching me...They waited for me to sit up" (Padmanabhan 211). On another occasion, Meiji laments over condition of losing control over her own thoughts: "To be so helpless as to lose the privacy of her own mind. To be deprived of her own memories. She could no longer form complete thoughts" (Padmanabhan 211). At times, she feels she is "trapped in an elongated capsule about four metres long, with no idea..." (Padmanabhan 224). In this novel, the cloned Generals want to eradicate female from the world and use various forms of monitoring including sousveillance. There are both physical sousveillance by embedding chips by the authoritarian regimes on people rather than on buildings and hierarchical sousveillance by people like Youngest/Yasmin doing the watching, rather than Generals doing the watching. Towards the conclusion of the novel, inverse surveillance also takes place.Youngest/Yasmin is asked by Vane, the spearhead of the Island of Lost Girls, to become an informer about the misdoings of the cloned Generals because both are the

subjects of surveillance of the eco-anarchists. So, one can see a transition from surveillance to inverse surveillance in the novel.

Setting on a near-future earth, Padmanabhan has tried to increase women's visibility and perspectives in her science fiction. Through her presentation of an ecotopia in *The Island of Lost Girls*, she is able to critically assess the rapidly changing social, cultural, and technological landscape and its impact on gender identity illuminating prevailing injustices of society irrespective of gender. The novel poses intricate questions about the nature of gender and sexuality as well as the prey/predator outlook in the post-nuclear world. Placing the text in a gendered environment, the writer makes a real contrast with present-day gender relations while remaining a work of science fiction. Padmanabhan uses ecotopia as a literary technique to discuss the reality and describe issues that might happen in future thereby serving as a warning about the problematic issues related to contemporary power structures. She tries to prove that sex and sexuality can be spaces of real traumatic oppressions through different gender representations.

Works Consulted

Foucault, Michel. *Discipline and Punishment: The Birth of Prison*. Vintage Books, 1979.

MannS., J. Nola and B. Wellman. "Sousveillance: Inventing and Using Wearable Computing Devices for Data Collection in Surveillance Environments". *Surveillance and Society*.Vol.1. No.3 2002, p. 331–55, doi:org/10.24908/ss.v1i3.3344

Padmanabhan, Manjula. *The Island of Lost Girls*. Hachette India, 2015.

Zuboff, Shoshana. *In The Age of the Smart Machine: The Future of Work and Power*. Basic Books, 1988.

A Study of Trauma in Graphic Novels

Lakshmi.G.Menon

Abstract

This research paper aims at analyzing how the theme of trauma is being represented through graphic novels. Unlike conventional novels, this genre relies on pictures/ panels for narrating a story. Traumatic situations are lucidly portrayed through the medium of pictures. *Maus* depicts the Holocaust experiences of Jews in Poland and *Persepolis* narrates the story of a girl in a war torn Iran. The anthropomorphic representation of characters in *Maus* further heightens the racist feelings prevalent in Germany and Poland in the 1940s. The deranged condition of the protagonist is realistically depicted through the pictures in *Persepolis*. Panels convey the sense of identity crisis faced by the characters in both books better than words. The idea that a picture speaks better than a thousand words is clearly demonstrated through the graphic novels.

Keywords. Graphic novel, trauma, panel, anthropomorphism, Holocaust

As children, all of us must have been fascinated reading Amar Chitra Katha and stories of heroes like Phantom, Tarzan, Batman and Superman. These books were categorized as comics and meant for light reading. Graphic Novels may be considered as more serious versions of the

ètude
A Multidisciplinary
Research Journal

English

All literatures in general have an artistic as well as a didactic content incorporated within their framework and this is more explicit in literature written for children. It is ironic in a way that while it is obstensibly for children, it relies on adults for its existence and children are only passive consumers. It thus becomes a vehicle of power, a socialization device that has been employed by adults for centuries. The papers discuss some of the ways in which Children's Literature and the research that it inspires can be a productive and valuable asset to education.

Hindi

The history reveals the spirit of resistance mankind has shown to achieve freedom and social identity. The fearless steps put forward by the writers, thinkers and social reformers bear testimony to this fact.

Malayalam

Emphasizing the inevitability of mother tongue, the section on Malayalam discusses its politics and how mother tongue can be used at the level of cognition and structures to attain real democracy.

ètude is a multilingual peer reviewed ISSN journal.
ètude, as a rule, publishes only original and unpublished research articles.

Published by
IQAC
Panampilly Memorial
Government College
Chalakudy

ISSN 2394 - 6482 Etude

Reviewed

ISSN 2394 - 6482
Volume - IV
June - 2018

ètude
A Multidisciplinary
Research Journal

THROUGH THE MAGNIFYING GLASS
Modern Perspectives and Innovative Practices in Children's Literature

हिन्दी साहित्य में प्रतिरोध की संस्कृति

മാതൃഭാഷയുടെ രാഷ്ട്രീയം

Published by
IQAC
Panampilly Memorial
Government College
Chalakudy

Scanned by CamScanner

PUBLISHED IN INDIA BY

The Coordinator, Internal Quality Assurance Cell (IQAC)
of the Panampilly Memorial Government College (PMGC)
Chalakudy, Potta P. O., Thrissur District, Kerala, India PIN 680722
email: pmgciqac@gmail.com / pmgcprincipal@gmail.com
http://www.pmgc.ac.in

© IQAC-PMGC 2018

The moral rights of the authors have been asserted

This book is in copyright. Subject to statutory exception and to the provisions of relevant collective licensing agreements, no production of any part may take place without the written permission of the Coordinator, IQAC, Panampilly Memorial Government College, Chalakudy, Kerala, India

(This book has been published in good faith that the works of the authors are original and due credits have been given wherever applicable.)

Published in June 2018

Managing Editor:
Dr. V. Manikantan Nair, Principal

Chief Editor:
Dr. N. A. Jojomon, Coordinator, IQAC

Editorial Board:
Dr. N. Sreerekha, Dr. N. A. Jojomon, Dr. S. L. Sreekumar, Dr. Prakash G. N., Shri. Shinto M. Kuriakose, Smt. Fousia P. A, Dr. Leena Samuel

Issue Editors:
Dr. Deepa K. S. (English), Dr. B. Parvathy (Malayalam), Dr. Leena Samuel (Hindi)

ISSN: 2394 - 6482 Etude

Printed in India by Nirmala Offset Printers,
Chalakudy, Kerala +91 480 2701259

FOR PRIVATE CIRCULATION ONLY - NOT FOR SALE

Preface

The society as we see today has been evolved over centuries, having passed through and undergone various changes. Across all stages of its transformations there were influences of differentiations like gender, caste, community, language, power, education, politics, age etc. It is evident from the backdrops of history that later on, these differentiations formed the basis for 'upper' and 'lower' cataloging in the society. At all stages of its evolution, the 'upper category' enjoyed superiority and in its extreme sagacity, there were even moves to permanently chain the 'lower crest' in the manacles of segregation and permanent deprivation. Revolutionaries and social transformers of all times, right from the prehistoric era, have raised voices against these evils and visualized an egalitarian society where all move and live together with dignity and pride.

This multi disciplinary trilingual issue of 'etude' tries to place on record the efforts of selected social reformers across the academic disciplines of English, Hindi and Malayalam social activists who have played vital roles in moving mobs to rise in revolt against social, gender and lingual discriminations thus paving the foundations of an ideal society. It also focuses on the need for having a passion for the mother tongue. All the articles in this book have been brought up after careful evaluation and peer reviews by experts in the field. I am sure that this manuscript will stand out in the academia as excellent studies on struggle for equity, identity and mother tongue.

With best wishes

June 2018

Dr. Jojomon N A
(Chief Editor & IQAC Coordinator)

Scanned by CamScanner

Contents

Internal Peer Review - 1 9
Dr. Deepa K S

1. Watching the Grass Grow: Passive Learning through Poetry 11
Dr. G. Saravana Prabhu

2. Revising the Gendered Stereotypes: A Study of Kamla Bhasin's Selected Children's Poems 14
Pretty John P.

3. From Superheroes to Spartan Warriors: Exploring the Influence of Comics on Cinema 22
Seema K. V.

4. Hermione Granger, Katniss Everdeen, and the Probability of Indispensable Girl Leads in Children's Fiction 26
Aiswary S. Babu

5. *Life of Pi* as a Children's Novel and as a New Fable of Human Existence 33
Swathy Krishna

Scanned by CamScanner

2 Revising the Gendered Stereotypes: A Study of Kamla Bhasin's Selected Children's Poems

The paper 'Revising the Gendered Stereotypes:A Study of Kamala Bhasin's Selected Children's Poems' discusses the way in which gender identity, with its concomitant beliefs and stereotypes tends to be a harmful influence on the lives of children. It attempts to subvert traditional notions of gender identity.

Ms. Pretty John P.
Assistant Professor
Carmel College, Mala
Email:
prettyjohnjose@gmail.com

Some poems meant for children, especially nursery rhymes are linguistically useful, but cognitively harmful for them. Though they play a significant role in the child's development of language, many of them are conceptually structured on gendered stereotypes. While reading or reciting them, a child may not fully perceive the gendered bias incorporated within the language of these poems. But they reinforce gender stereotypes through constant repetition. Nursery rhymes with their simple diction, picturesque description and captivating rhythm arrest the attention of the children.

The family images given in the school text books shows mother in the kitchen, father on his way or back from work with an earnest boy and a well-behaved girl. That is, father as the breadwinner, mother as the so-called "housewife" taking care of every minute detail of the household and children studying, playing or eating food. One cannot find a changing family world where mother too go for paid work, where father lends a hand in the kitchen, and where children too actively take part in the household activities with all the innocence of childhood. "His Story" has been projected imposing certain qualities into/onto the woman, depending on the masculine requirement of the moment and she is forced to dream through the dreams of man. The present study seeks to analyse the revised gender stereotypes in the well-known social scientist, feminist activist and poet KamlaBhasin's selected children's poems.

According to Simone de Beauvoir, the different definitions of "woman" by the patriarchal society have placed her as the "Other" to man, as the negative, as the relative. Analyzing the marginal position of women in the patriarchal society, she remarks in *The Second Sex* (1949): "One is not born, but rather becomes a woman ... it is civilization as a whole that produces this creature ... which is described as feminine" (1972: 295). She points out how sex is natural while gender is a social construct. She meticulously observes: "She is defined and differentiated with reference to man and not he with reference to her. She is the incidental, the inessential as opposed to the essential. He is the Subject, he is the Absolute – she is the Other" (1972: xvi). Thus, the male associates himself with masculine qualities like strength, logic, reasoning and the female is attributed with fragility, poignancy and thoughtlessness. Deborah Cameron has given insights to the language's relationship to gender and sexuality in her introduction to *The Feminist Critique of Language: A Reader*: "If we look at a society's most valued linguistic registers – religious ceremonial, political rhetoric, legal discourse, science, poetry – we find women for the most part silent and in many cases silenced: it is not that women do not speak, they may actually be prevented from speaking, whether by explicit taboos and restrictions or by the genteel tyrannies of custom and practice" (1983: 03).Dale Spender in her *Man Made Language* (1980) observes that language is a trap because language makes reality: "It is language which determines the limits of our world, which constructs our reality" (Cameron, 1998: 94). Constructed categories within language organize the world: "This makes language a paradox for human beings: it is both a creative and inhibiting vehicle... out of nowhere we invented sexism, we created the arbitrary and approximate categories of male-as-norm and female as deviant" (Cameron, 1998: 96). Spender argues that "He/Man language" makes males linguistically visible and females linguistically invisible: "The introduction of he/man into the structure of the language has helped to ensure that neither sex has a proliferation of female images: by such means is the invisibility of the female constructed and sustained in our thoughts systems and our reality" (Spender, 1980:154). The poet-critic Adrienne Rich identifies the "oppressor's language" as a cause of many injustices and sufferings. The oppressor's language is the "male-centered" or "andro-centric" language which will only perpetuate male hegemony. The construction of a "gyno-centric" language or "female-

Scanned by CamScanner

centered" language is the only solution to express unique female experiences. In order to purify language, myths are to be revised. Revisionist myth-making results in the re-interpretation of myths from the female perspective. This process, according to Alicia Ostriker, gives "retrieved images of what women have collectively and historically suffered" (1985:14). Thus, the misrepresented images of women – either the paragon of all virtues or the demon figure of all vices – have been revised by the "female knowledge of the female experiences" (Ostriker, 1985:14). Thus, the revisionist myth-making results in the invention of a unique, but equal, female-centered language.

In the preface to her work *Housework is Everyone's Work: Rhymes for Just and Happy Families*, Bhasin notes:

Most books were about boys and men, about their brave deeds, adventures, aspirations and ambitions. They were usually shown as brave, fearless and independent-minded. On the other hand, whenever girls and women found a place in these books, they were housekeepers. The few books featuring girls however showed them in traditional roles of daughters, wives, fearful and dependent. Unfortunately, this has not changed much in today's world.

Bhasin finds an extensive and pandemic use of sexist language in children's literature. The gender markers for children include clothing, names, toys, activities, and so on. The objects and toys or toy-analogs related to domestic activities are associated with feminine and those related to non-domestic activities are attributed to males. Thus nursery rhymes reinforce gender stereotypes Bhasin observes in her preface to *What is a Girl? What is a Boy?*:

Even after 50 years of Independence girls and women in India are considered second class human beings. The birth of a daughter is often not celebrated, she is denied adequate love, care, nutrition, health care. The saying "butter for boys, buttermilk for girls" is still a reality. Some families go to the extent of killing their daughters before they are born. The existence of such blatant discrimination and injustice within the family surprises me because it harms not only girls but the entire family and the whole community. Can any farmer be happy if only half his/her crop is healthy? Then how can families and communities be happy if half their members are unhealthy, unhappy, uneducated? We believe it is necessary to challenge and change this state of affairs. (iii-iv)

Bhasin's rhymes challenges the sexist attitude followed in the Indian families. She adds: "Some people believe that it is Nature that has created the differences and inequalities that exist between men and women. Is this true? ... Are the qualities, behavior patterns, likes and dislikes, skills and paths of girls and boys determined by nature or by all of us who constitute society?" (iv).In *Housework is Everyone's Work*, Bhasin glorifies the significance of every member in the family and if they work together, there will be happy and just families.Her rhymes with their simple and straightforward titles attract the attention of the readers. For example, in "Sleep Little Meeto," the Father sings a lullabyto put his little girl to sleep.

As the title of the book suggests, the rhymes are not all about household chores. In fact, men, women, girls and boys can do anything irrespective of gender.Bhasin argues in *What is a Girl? What is a Boy?*:"These gender differences have not been created by nature. Nature produces males and females, society turns them into men and women, feminine and masculine. Because of these social definitions, the differences between girls and boys go on increasing and it seems as if girls and boys belong to two entirely different worlds."(30-1).Bhasin has written rhymes which reflect the ambience of her own home. These rhymes were at first written in Hindi in the early 1980s and the anthology was republished by UNICEF in 1982 and its translations have appeared in five languages.

Some rhymes in*Housework is Everyone's Works* how what the Mother can do, if there is right ambience. In "Champion Mother," she is an all-rounder who can excel in various sports activities. The kids feel proud to play with her. In "Mama Dearest Mama," she is a working mother:

Mama's back, Mama's back
She's brought me books and toys
She'll tell me lots of stories
Of distant girls and boys.
She'll teach me many new things
She'll take me to the park
She knows how rainbows form and
How cats see in the dark.

The child waits impatiently for her to come back home from the office to tell her stories and take her to the park. The Mother is portrayed as a very knowledgeable person. The illustration shows a sari clad woman with a briefcase being greeted by her daughter.The picture appeals even stronger than words amongst kids. In "Mother, "she lists the unending work as the woman of the house:

Mother works away all day
Through the week and all Sunday
She always has something to do
She always has some task in view
She bears a burden all alone
She wears herself down to the bone
Not a moment does she stay
Mother works away all day.

Bhasin suggests to consider mothers as human beings and she exhorts life will be easier if the family members work together:

Don't you think this is unfair?

Scanned by CamScanner

Shouldn't we help and do our share?
Father's going to dust the chairs
Meeto will now sweep the stairs
I will help to clean the pots
We'll all wash the clothes in the lot.
Housework's everyone's affair
Let's all help and do our share.

Woman with her multifaceted personality has to perform several roles – daughter, sister, wife, mother and so on. Along with housewifery tasks, she has to do the duties associated with her professional career. The economically productive labour of the public sphere is allotted to men while the economically non-productive labour of the private sphere is assigned for women. Feminists critique the gendered division of the public and private spheres and the irrational and unjust gendered division of labour. This has "'privatized' women restricted to family roles in 'spiritualized,' emotionally barren, and despotically patriarchal households. The division between public and private spheres is, in effect, a division between the masculine and the feminine and it is a patriarchal strategy used to confine women to the private sphere of domesticity.Bhasinmuses on the gender discrimination in her *What is a Girl? What is a Boy?*: "Within the same family, we can see boys flowering, girls withering. Such gender differences do not harm only girls, they harm the entire family, community and country. Several rigid roles, qualities and responsibilities are imposed upon boys as well. They too are prisoners and victims of gender" (37-8). She adds:

...girls and boys can dress, play, study any way they want, and grow up as they choose. Having a girl's body does not teach you household work or caring for others; a boy's body does not ensure fearlessness, intelligence, strength. All these qualities are learnt. It is one's upbringing that determines how one grows, what one becomes. If we so desire, we can create a society where roles, responsibilities, qualities and behavior patterns are not determined and imposed by gender, caste, class or race, a society where everyone has the right and freedom to choose roles, develop talents... to have a life of one's choice. (40-1)

In "Girls and Boys,"Bhasin opines that if children do not learn to treat girls and women with respect within their families, they are not likely to respect women outside either:

In singing songs or flying kites
In running fast or climbing heights
At school or home, with books or toys
Girls are no way less than boys

Both girls and boys are equally talented. It is their upbringing that decides their growth and future. There is a role-reversal in Bhasin's poems. The gentle father figure in themplays with the children, tells them stories, bathes them and what not. In "Grow Up Baby," hechanges their nappies:

Father changes baby's nappy
Look at him now clean and happy.
Grow up baby, just a bit
Learn to toddle, learn to sit.
No more nappies no more wet
That's our bouncy joyful pet.

In "It's Sunday," the illustration shows a smiling father holding two cups of tea and the mother reading newspaper on a Sunday:

Father's like a busy bee
Making us cups of hot tea.
Mother sits and reads the news
Now and then she gives her views.

Sunday is a"fun day" for all the family members. In "Washing Clothes," all share their work:

The clouds are gone–it's sunshine weather
Let's wash clothes along with mother
Mother will soap them
Father will wring them
And you and I
Will hang em to dry

Here, Bhasin enlightens her little readers that domestic chores are not just women's work alone, but every member in the family. She adds: "When they're dry and ironed crisp / Let's dress quickly for a trip." Everyone has an equal share in the household duties to make a happy family. Bhasin's *MaluBhalu* is about a little polar bear who is portrayed as impatient, adventurous and intelligent. Her mother teaches her how to swim and catch fish:

Brave mother's brave young daughter!
Doubt and fear she left behind her.
Malu swam with all her might,
It didn't matter wrong or right.

Malu and her family have a narrow escape from the hunters by working out her idea to curl up like a ball of snow shutting their eyes.

Speech and silence are two strong and influential metaphors used in feminist writings. These terms are used to express women's right to speak or their denial of this human rights. Quite often, they are silenced or made silent and their uses of language are restricted to the private sphere. Existing customs, practices, taboos and stereotyped images are appropriated to keep women away from the public domains. Women's imposed silence is a powerful weapon used by patriarchal structures to perpetuate the subordination of women.Bhasin advocates that gender sensitization can onlybe achieved by giving equal opportunities to education. "Because I am a Girl, I must Study" represents the epitome of her ideas:

Scanned by CamScanner

BECAUSE I AM A GIRL, I MUST STUDY

A father asks his daughter:
Study? Why should you study?
I have sons aplenty who can study
Girl, why should you study?

The daughter tells her father:
Since you ask, here's why I must study.
Because I am a girl, I must study.

Long denied this right, I must study
For my dreams to take flight, I must study
Knowledge brings new light, so I must study
For the battles I must fight, I must study
Because I am a girl, I must study.

To avoid destitution, I must study
To win independence, I must study
To fight frustration, I must study
To find inspiration, I must study
Because I am a girl, I must study.

To fight men's violence, I must study
To end my silence, I must study
To challenge patriarchy I must study
To demolish all hierarchy, I must study.
Because I am a girl, I must study.

To mould a faith I can trust, I must study
To make laws that are just, I must study
To sweep centuries of dust, I must study
To challenge what I must, I must study
Because I am a girl, I must study.

To know right from wrong, I must study.
To find a voice that is strong, I must study
To write feminist songs I must study
To make a world where girls belong, I must study.
Because I am a girl, I must study.

-- Kamla Bhasin

The ability to read and write is a powerful source of energy often denied to the less privileged women. The patriarchal structures fear that access to fruitful education, speech and writing will make woman independent, rebellious and critical of customs and traditions. Even if women dare to speak or write, they are quite often ridiculed, isolated, ignored, criticized and they become the easy target of vehement and venomous attacks.

Reality represented by language is mediated by the ideological conditioning of the medium and the perspective. In this regard, she adds: "When there are sexist language and sexist theories culturally available, the observation of reality is also likely to be sexist. It is by these means that sexism can be perpetuated and reinforced as new objects and events, new data, have sexist interpretations projected upon them" (Cameron, 1998: 96). Language plays a significant role in shaping the world. There are more words for males than for females and most of them are positive. Many words for women assume negative connotations. Males have encoded sexism into language to claim male supremacy: "...he/man also makes women outsiders, and not just metaphorically. Through the use of he/man women cannot take their existence for granted; they must constantly seek confirmation that they are included in the human species?" (Spender. 1980:157). This is how language becomes a political medium. Women are overshadowed by the patriarchally surcharged development of language.

Children imbibe the gendered messages in the lullabies which are replaced by rhymes in their later school life. Bhasin's children's poems provide alternative narratives to the existing gendered stereotypes in the patriarchal society. She has made an attempt to correct the classic gendered stereotypes in her children's poems by re-interpreting them.She substantiates that it is the maleness of language that makes women invisible and gender is thus, constructed through language. Subverting the conservative gender discourses, Bhasin offers a progressive and resistant discourse through her revisions.

Works Cited

- Bhasin, Kamla. "Because I am a Girl, I must Study." Blog Home. Voices from the Frontlines. 26 April 2012. Accessed 05 January 2018. Web.
- ---, .*Housework is Everyone's Work: Rhymes for Just and Happy Families*. Delhi: Jagori,2008. Print.
- ---„ *MaluBhalu*. Chennai: Tulika, 1999. Print.
- ---„*What is a Girl? What is a Boy?*.Kathmandu: Shtrii Shakti, 1998. Print.
- Cameron,Deborah.*The Feminist Critique of Language: A Reader*. New York and London Routledge, 1998.Print.
- De Beauvior, Simone.*The Second Sex*. Tr. H. M. Parshley.Harmondsworth: Penguin Books, 1972.Print.
- Ostriker, Alicia. "The Thieves of Language: Women Poets and Revisionist Mythmaking." *The New Feminist Criticism*. Ed. Elaine Showalter. New York: Pantheon Books, 1985.p.11-35.Print.
- Rich, Adrienne. "When We Dead Awaken: Writing as Re-Vision." *College English*, Vol.34. No. 1, Women, Writing and Teaching (October, 1972). National Council of Teachers of English, 1972: p.18-30.Print.
- Spender, Dale. *Man Made Language*. New York: Routledge, 1985. Print.
- ---„ "Man Made Language."*The Feminist Critique of Language: A Reader*. Ed. Deborah Cameron .New York and London Routledge, 1998: p.93-99.Print.

Scanned by CamScanner

ഭാവനയുടെ അരികും അതിരും

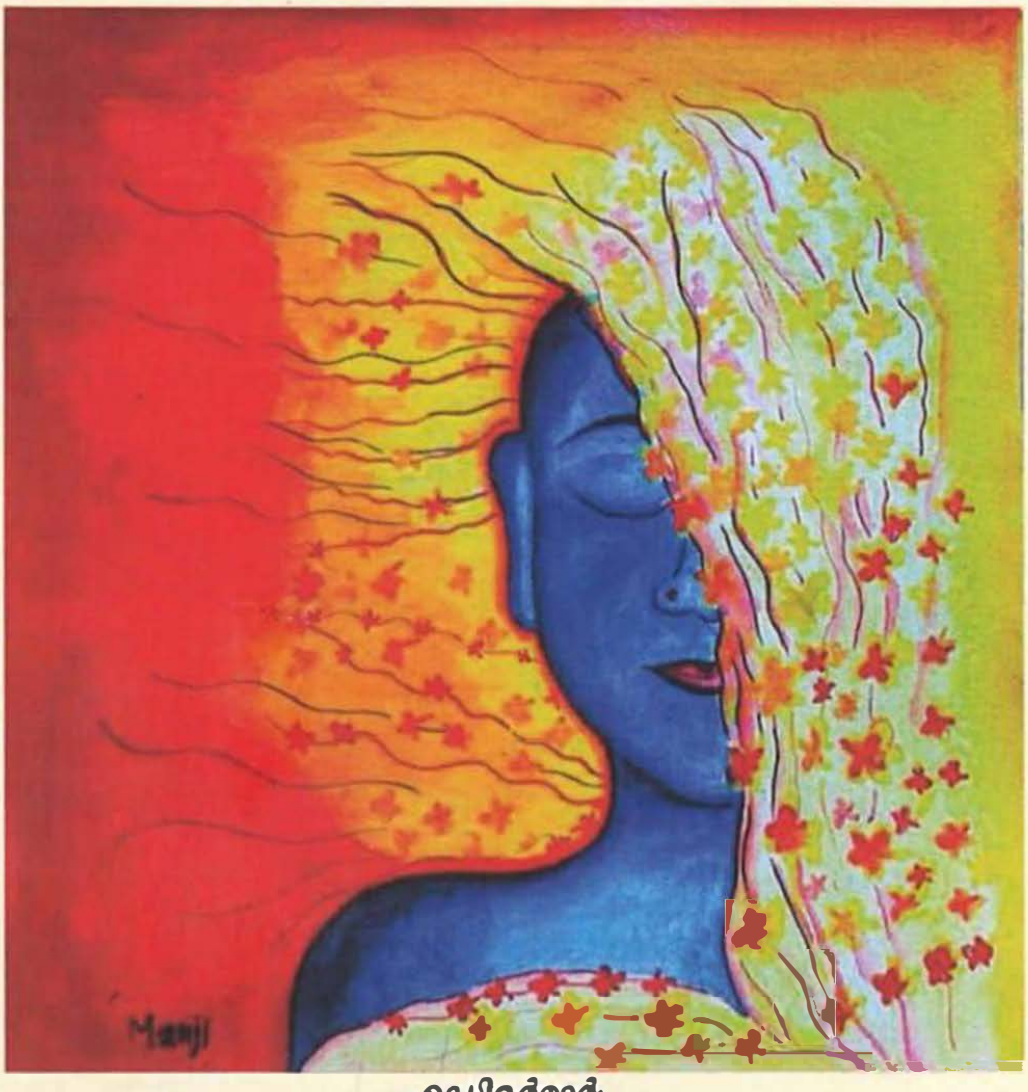

എഡിറ്റർമാർ:

ഡോ. നിധീഷ് കെ.പി.
പ്രൊഫ. വി. ലിസി മാത്യു

മലയാളവിഭാഗം
ശ്രീശങ്കരാചാര്യ സംസ്കൃതസർവ്വകലാശാല, കാലടി
പയ്യന്നൂർ പ്രാദേശികകേന്ദ്രം

2019

ഉള്ളടക്കം

കാല്പനികത—മലയാളകവിതയിൽ
പ്രൊഫ. എസ്. കെ. വസന്തൻ 9

കാല്പനികതയുടെ സൗന്ദര്യശാസ്ത്രം
ഡോ. നന്ത്യത്ത് ഗോപാലകൃഷ്ണൻ 30

കാല്പനികതയുടെ മനഃശാസ്ത്രം
ഡോ. വി. രാജീവ് 47

സ്ത്രൈണസ്വത്വത്തിന്റെ കാല്പനികഭാവങ്ങൾ
സഹീറ തങ്ങളുടെ കവിതകളിൽ
മുംതാസ് പി.കെ. 56

കാല്പനികതയുടെ സ്വരാജ്യം ഇംഗ്ലീഷ് കാല്പനികതയുമായുള്ള
ആശാന്റെ ബലപരീക്ഷണങ്ങൾ
ആർ. ചന്ദ്രബോസ് 66

'മനസ്വിനി'യിലെ കാല്പനിക പ്രവണത
രമ്യ ആർ. 75

കാല്പനികത–മാധവിക്കുട്ടിയുടെ കഥകളിൽ
പാർവതി പി. ചന്ദ്രൻ 94

ഭാവനയുടെ പെൺലോകസഞ്ചാരങ്ങൾ: ബാലാമണിയമ്മയുടെ
കവിതകളിൽ
ദേവി കെ. 100

'ജൈവ'ത്തിലെ പ്രതിബോധ കാല്പനികത
ധീന പി.പി. 108

ബെന്യാമിന്റെ കഥകളിലെ കാല്പനികപ്രണയവും രതിയും
അന്ന വി.എസ്. 116

കാല്പനികതയുടെ പാരമ്പര്യക്കാഴ്ചകൾ
ദിൽഷ പി.കെ. 121

കാല്പനികതയുടെ ജൈവികഭാവനകൾ
ഖസാക്കിന്റെ ഇതിഹാസത്തിൽ
ഷംന രാജ് കെ.കെ. 134

പത്മരാജനും, വി.ആർ സുധീഷും: പ്രണയത്തിന്റെ വേറിട്ട
ആഖ്യാനങ്ങൾ
രസ്‌ലിയ എം.എസ്സ്. 141

ബെന്യാമിന്റെ കഥകളിലെ കാല്പനികപ്രണയവും രതിയും

അനു വി.എസ്.
അസിസ്റ്റന്റ് പ്രൊഫസർ, മലയാള വിഭാഗം, കാർമൽ കോളേജ്, മാള

ബെന്യാമിന്റെ 'മരീചിക' 'ഒലീവുകൾ മരിക്കുന്നില്ല' എന്നീ കഥകളിലൂടെയുള്ള ഒരന്വേഷണം പ്രസക്തമാണ്. വ്യവസായവിപ്ലവത്തിന്റേയും നിയോക്ലാസിക്കൽ സമ്പ്രദായത്തിന്റെയും അപചയത്തിൽ നിന്നുകൊണ്ടാണ് പതിനെട്ടാം നൂറ്റാണ്ടിൽ സാഹിത്യത്തിലേക്ക് കാല്പനികത കടന്നുവരുന്നത്. വികാരത്തിനും വിചാരത്തിനും ഒരുപോലെ പ്രാധാന്യം കല്പിക്കുന്നതാണ് കാല്പനികത. 'മനുഷ്യൻ സ്വതന്ത്രനായി ജനിക്കുന്നു; പക്ഷേ, അവൻ എന്നും ചങ്ങലക്കെട്ടിലാണ്'[1] എന്ന റൂസ്സോയുടെ വിഖ്യാതവചനത്തോടെയാണ് വിമോചനത്തിനുവേണ്ടിയുള്ള സമരവും കാല്പനികപ്രസ്ഥാനവും രൂപംകൊള്ളുന്നത്. കാല്പനികതയിൽ പ്രകൃതി, ദേശഭക്തി, മരണം തുടങ്ങി എന്തും വിഷയമാകാം. എന്നാൽ ഇവയുടെയെല്ലാം അടിസ്ഥാനം ഓരോ വസ്തുവിനോടുമുള്ള മനുഷ്യന്റെ പ്രണയം തന്നെയാണ്. വേഡ്സ്വർത്തിന് പ്രകൃതിയോട് പ്രണയമെങ്കിൽ വള്ളത്തോളിന് ദേശത്തോടായിരുന്നു പ്രണയം. ചങ്ങമ്പുഴയ്ക്കോ കാവ്യദേവതയോടും. പ്രണയം അങ്ങനെ പലവിധമാകാം.

കാല്പനിക പ്രണയം

"കാല്പനികചേതനതേടുന്ന തീവ്രാനുഭൂതികൾ പലപ്പോഴും കവിയ്ക്ക് അനുഭവവേദ്യമാകുന്നത് സ്ത്രീ പുരുഷപ്രേമത്തിന്റെ പ്രചോദനത്തിൽക്കൂടിയാണ്."[2] കവിതയിലായാലും കഥയിലായാലും സാഹിത്യത്തിന്റെ ഏത്

മലയാളിയായാലും പ്രണയം എന്നത് ഒരു കാല്പനികതയാണ്. അല്ലെങ്കിൽ കാല്പനികതയുടെ അടിസ്ഥാനം പ്രണയം തന്നെ എന്നും പറയാം. അത് ക്ലാസിക് കാലഘട്ടത്തിന്റെ ... കാലഘട്ടം വരെയും ഈ കാല്പനികപ്രണയവും രതിയും നിറഞ്ഞു നിൽക്കുന്നതും കാണാം. ബഷീർ, സുഭാഷ് ചന്ദ്രൻ, കെ.ആർ. മീര, ബെന്യാമിൻ, പി. മുരളി, സാറാ ജോസഫ് തുടങ്ങിയ ഉത്തരാധുനിക എഴുത്തുകാരി ലെല്ലാം തന്നെ പ്രണയത്തിന്റെയും രതിയുടെയും വ്യത്യസ്തങ്ങളായ കാണുവാൻ സാധിക്കുന്നുണ്ട്. ഇതിൽ ബെന്യാമിന്റെ കഥകളിൽ മറ്റു എഴുത്തുകാരിൽനിന്നു വ്യത്യസ്തമായി സ്ത്രീ-പുരുഷപ്രണയത്തിന്റെയും പ്രണയത്തിന്റെ തീവ്രതയിൽനിന്നുള്ള [illegible] ചിത്രങ്ങൾ കാണുവാൻ സാധിക്കുന്നു.

കാല്പനിക പ്രണയവും രതിയും

ബെന്യാമിന്റെ കഥകളിൽ പ്രത്യക്ഷപ്പെടുന്ന നാട്ടിൻപുറത്തെ അരുന്ധതി എന്ന സുന്ദരിയായ സ്ത്രീ അദ്ദേഹത്തിന്റെ കഥകളിലെ പ്രണയത്തിന് ഉത്തമ ഉദാഹരണമാണ്. "ഞാൻ നിന്നെ പ്രേമിക്കുന്നു, ബെന്യാമിൻ എന്ന സ്നേഹരാഗവുമായി അവൾ എന്റെ ജീവിതത്തിലേക്ക കടന്നുവരുന്നതുവരെ, എന്റെ സ്വപ്നങ്ങളുടെ ചിറകുകളിൽ, എന്റെ കഥകളുടെ നിഴലുകളിൽ, എന്റെ രാത്രിയുടെ ഏകാന്തചിന്തകളിൽ ഒക്കെമാത്രം നിറയാറുണ്ടായിരുന്ന ഒരു സാങ്കല്പിക കഥാപാത്രമായിരുന്നു, അവൾ!"[3].

എന്നാൽ പിന്നീടെപ്പോഴോ അവൾ ജ്വലിക്കുന്ന സ്നേഹമായി അദ്ദേഹത്തിന് തോന്നി. പ്രണയത്തിനും മരണത്തിനും വിശദീകരണങ്ങൾ നൽകാൻ താല്പര്യം കാണിക്കാത്ത അദ്ദേഹം അരുന്ധതിയെ കുറിച്ച് വർണ്ണിക്കുമ്പോൾ വാചാലനായി.

"അവൾ കറുത്തവൾ. എങ്കിലും കേദാര്യകൂടാരങ്ങൾ പോലെയും [illegible] പോലെയും അഴകുള്ളവൾ ആകുന്നു...

ഇവ രണ്ടു സ്ത്രീകളുടെ കണ്ണിലൂടെ [illegible] ഉണ്ടാക്കുന്നതിന്റെ [illegible]. "എന്റെ സഹോദരീ, നിന്റെ [illegible] അപൂർവ്വം [illegible] ഒന്നാണ് നിന്റേത്" [illegible] "ഇതുപോലെ എനിക്ക് [illegible], ഞാൻ [illegible]" എന്ന് ... [illegible] ബെന്യാമിൻ പറയുന്നത്. "മനുഷ്യവർഗ്ഗത്തിന്റെ ചരിത്രം പരിശോധിച്ചാൽ പുരുഷനിൽ നിന്നും വേർപെട്ട് രണ്ടായി തീർന്നതാണ് സ്ത്രീയും പുരുഷനും എന്ന് കാണാൻ കഴിയും. ആദിയിൽ ദൈവം ആകാശവും ഭൂമിയും സൃഷ്ടിച്ചു. അനന്തരം അവിടുന്ന് തന്റെ രൂപത്തിലും ഭാവത്തിലുമുള്ള ഒരു മനുഷ്യനെ സൃഷ്ടിച്ചു. ഇടർന്ന് അവനെ ഉറക്കിയ ശേഷം അവന്റെ ശരീരത്തിൽ നിന്നുതന്നെ ഒരു വാരിയെല്ല് ഊരിയെടുത്ത് ഒരു സ്ത്രീയെ സൃഷ്ടിച്ചു. ക്രൈസ്തവ-ഇസ്ലാം മതങ്ങളിലെ വിശ്വാസമാണിത്."[8]

"ദ്വിധാകൃത്വാത്മനോ ദേഹമർദ്ധേന പുരുഷോ ഭവത്

അർദ്ധേന നാരീ തസ്യാം സ വിരാജമസൃജത് പ്രഭുഃ"[9]

(ബ്രഹ്മാവ് സ്വദേഹത്തെ രണ്ടംശമാക്കിയിട്ട് അർദ്ധഭാഗം കൊണ്ടു പുരുഷനാകുകയും അർദ്ധഭാഗം സ്ത്രീയാകുകയും ചെയ്തു.) എന്ന് ഹൈന്ദവമതവും പറഞ്ഞുവെയ്ക്കുന്നുണ്ട്. സ്ത്രീയും പുരുഷനും തുല്യരാണെന്നും പുരുഷന്റെ അടിമകളല്ല സ്ത്രീകളെന്നും ഈ മതവചനത്തിൽ നിന്നും വ്യക്തമാണ്. എന്നാൽ സ്ത്രീയുടെ മനസ്സിനെ കാണാതെ അവളുടെ ശരീരംമാത്രം കണ്ടുവരുന്ന പുരുഷവർഗ്ഗവും നമ്മുടെ ഇടയിലുണ്ട്.

"കാമത്തിന്റെ പാരമ്യത്തിൽ, രതിമൂർച്ഛയിൽ സംഭവിക്കുന്നതും ആത്മഹത്യ തന്നെയാണ്"[10] എന്ന കെ.ആർ. മീരയുടെ 'ക്ലൂഗോഡ്'യിലെ നാരായണൻകുട്ടി മാഷും "ഉരഞ്ഞു നീറിയ ഇടതു കാൽമുട്ടിന്റെ അസ്വാസ്ഥ്യത്തിനിടയിലും നെറികെട്ട ഒരാൺ ചോദ്യം വല്ലൂക്കാരനിൽ നിന്ന് പുറത്തുവന്നു—ദാമ്പത്യത്തിലെ രസവിഹീനമായ സുരതച്ചടങ്ങുകളുടെ ഒടുക്കം, മുറതെറ്റാതെ എന്നും ഭാര്യയോട് ചോദിച്ചിരുന്ന അതേ ചോദ്യം: 'സുഖം'"[11] എന്ന സുഭാഷ്ചന്ദ്രന്റെ 'തല്പ'ത്തിലെ വല്ലൂക്കാരനും സ്ത്രീയോടുള്ള രതിയുടെ അഭിനിവേശത്തിന്റെ മാത്രം പ്രതീകങ്ങളാണ്.

"ശ്രേഷ്ഠയാ ശ്രീമാതെത്രനാൾ വാഴും, തനിക്കൊരു

കൂട്ടുകാരിയാം സ്ത്രീയെക്കാണാത്ത ഭവനത്തിൽ?

ആദിമപ്രകൃതിയും സ്ത്രീത്വമേ വഹിക്കുന്നു,

സ്ത്രീ തന്നേ പരാശക്തി: സത്തയും ചിത്തും സ്ത്രീതാൻ"[12]

എന്ന വള്ളത്തോളിന്റെ സ്ത്രീത്വമഹത്വ ചിന്താഗതിയുടെ പിൻമുറക്കാരനാണ് ബെന്യാമിൻ എന്നുപറയാം.

"സ്ത്രീ സന്താനത്തിന്റെ ജനനം മറ്റെവിടെയോ ആയിക്കൊള്ളട്ടെ, ഇവിടെ പുരുഷ പ്രജ മാത്രം"[13] എന്ന പുരുഷമേധാവിത്ത ചിന്താഗതിയിൽനിന്ന് വ്യത്യസ്തത പുലർത്തുന്ന എഴുത്തുകാരനാണ് ബെന്യാമിൻ.

"എന്റെ പ്രിയേ ഞാൻ വന്നിരിക്കുന്നു, ഞാൻ പ്രണയപരവശനായിരിക്കുന്നു, വന്ന് വാതിൽ തുറക്കുക, നമുക്ക് വാതിൽ അടച്ച് പുലർകാലം വരെ രമിക്കാം. പ്രിയേ വരിക, നിനക്കായ് ഞാൻ ഈന്തപ്പഴങ്ങളും സുഗന്ധദ്രവ്യങ്ങളും കരുതിയിരിക്കുന്നല്ലോ"[14] എന്ന് അരുന്ധതിയോട് പറയുന്നുണ്ടെങ്കിലും അവൾ വിളി കേട്ടിട്ടില്ല. അവൾ പുനർജ്ജനിക്കാൻ വേണ്ടി നിശ്ശബ്ദയായിരിക്കുകയാണ് എന്നാണ് അദ്ദേഹം പറയുന്നത്. ഈ വാക്കുകളിൽ രതിയേക്കാൾ കൂടുതൽ പ്രണയമാണ് ദർശിക്കുന്നത്.

'മരീചിക'യിൽ കവിളയെ അദ്ദേഹം പുണരുമ്പോഴും "നിന്റെ പുഴകളുടെയും പൂക്കളുടെയും നാട്ടിൽ നമുക്ക് ഒരു കൊച്ചുകുടിൽകെട്ടി പാർക്കണം. വിളക്കുകളുടെ അരണ്ടവെളിച്ചത്തിൽ അവിടെവെച്ച് ഞാൻ എന്നെ നിനക്ക് കൊതിയോടെ ആത്മാർത്ഥമായി സമർപ്പിക്കും. അതുവരെ കാത്തിരിക്കൂ"[15] എന്നുപറയുന്ന അവളുടെ വാക്കുകളെ അനുസരിക്കുന്ന ഒരു യുവാവിനെയാണ് നമുക്ക് കാണാൻ സാധിക്കുക. സ്ത്രീയുടെ ശരീരം അടക്കി വാഴുന്ന യുവാവല്ല ഈ രണ്ട് കഥകളിലേയും കഥയിലെ നായകൻ.സ്ത്രീയുടെ ശരീരത്തിനോടുള്ള ആസക്തിയേക്കാളും മനസ്സിനോടുള്ള പ്രണയവും അതിന്റെ തീവ്രതയിൽ നിന്നുള്ള പരിശുദ്ധമായ രതിയും ബെന്യാമിൻ കഥകളുടെ പ്രത്യേകതകളായി കണക്കാക്കാം.

"ഒരർത്ഥത്തിൽ തീവ്രമായ കാല്പനികപ്രേമം അമാനുഷമാണ്. പ്രേമിയുടെ മനസ്സ് അതിന്റെ അനുഭൂതിയിൽ ലയിച്ചുചേരാനാണ് ആഗ്രഹിക്കുന്നത്"16. ഈ അനുഭൂതിയിൽ മനസ്സും ശരീരവും ഒരുപോലെ ഒന്നിക്കുന്നതാണ് ബെന്യാമിന്റെ 'മരീചിക', 'ഒലീവുകൾ മരിക്കുന്നില്ല' എന്ന കഥകൾ.

8. മുരളീധരൻ മുല്ലമറ്റം, സ്ത്രീ പുരുഷമനഃശാസ്ത്രം, പു.9

9. പ്രൊഫ. ഗോപിനാഥൻനായർ എൻ., മനുസ്മൃതി, പു.25

10. മീര കെ.ആർ., കഥകൾ (കൃഷ്ണ ഗാഥ), പു.29

11. സുഭാഷ് ചന്ദ്രൻ, തല്പം, പു.33

12. സ്ത്രീ അറിയേണ്ടതെല്ലാം, സ്ത്രീ ശരീരവിജ്ഞാനം (മാതൃഭൂമി ആ

13. ലീലാകുമാരി എം., സ്ത്രീ സങ്കല്പം- മലയാള നോവലിൽ, പു.15

14. ബെന്യാമിൻ, ബെന്യാമിൻ കഥകൾ (ഒലീവുകൾ മരിക്കുന്നില്ല),

15. ബെന്യാമിൻ, ബെന്യാമിൻ കഥകൾ (മരീചിക), പു.123

16. ഹൃദയകുമാരി ബി., കാല്പനികത, പു.62

ഭാവനയുടെ അരികും അതിരും

വിവിധലോകഭാഷകളിലെ സാഹിത്യകൃതികളെ ആഴത്തിൽ സ്വാധീനിച്ച പ്രസ്ഥാനമാണ് കാല്പനികത. ഭാവന, ഭാഷാശൈലി, പ്രമേയം, ജീവിതസമീപനം എന്നീ കാര്യങ്ങളിലെല്ലാം സാമ്പ്രദായിക വഴികളിൽ നിന്നു മാറിനടന്ന കാല്പനികതയെ തലമുറകളുടെ കാഴ്ചപ്പാടിലൂടെ അവതരിപ്പിക്കുന്ന പഠനങ്ങളുടെ ശേഖരം

creative commons

Publishers:
Department of Malayalam
Sree Sankaracharya University of Sanskrit, Kalady
Regional Centre, Payyanur,
Edat P.O., Kannur Dt., Pin:670327.

കേരളീയ നവോത്ഥാനം

സാഹിത്യത്തിലും സാമൂഹികനിർമ്മിതിയിലും

എഡിറ്റർ
സിസ്റ്റർ ഡോ. ഷീബ എ.സി.

കേരളീയ നവോത്ഥാനത്തിന്റെ [illegible] ഈ പുസ്തകം.

Keraleeya Navothanam
Sahithyathilum Samoohikanirmithiyilum
Ed. Sr. Dr. Sheeba A.C.
Greenbooks
ISBN 93-88838-97-0
വില ₹ 125.00
www.greenbooksindia.com

കേരളീയ നവോത്ഥാനം

സാഹിത്യത്തിലും സാമൂഹികനിർമ്മിതിയിലും

എഡിറ്റർ
സിസ്റ്റർ ഡോ. ഷീബ എ.സി.

2019

അനുഭവനിർമ്മിതിയും കേരളീയ നവോത്ഥാനവും 51
ജിൻസി. കെ.

നവോത്ഥാന സങ്കല്പങ്ങൾ 54
സുമിത പി.കെ.

മാനവികത കാരൂർക്കഥകളിൽ 58
ജോഫി റാഫി

നവോത്ഥാന കുടുംബസങ്കല്പം
സരസ്വതിയമ്മയുടെ കഥകളിൽ 61
രമ്യ പി.ഒ.

നവോത്ഥാന ചിന്തകൾ
സി.അയ്യപ്പന്റെ മുഖപ്രസംഗങ്ങളിൽ 64
ലിറ്റി പയസ്

മലയാള സാഹിത്യ നവോത്ഥാനത്തിന്റെ
നാൾവഴികൾ 67
അനു വി.എസ്.

ജാതിസമൂഹത്തെ അപനിർമ്മിച്ച
നവോത്ഥാന തൂലിക 74
മേഘ രാധാകൃഷ്ണൻ

ആധുനിക കേരളീയ സ്ത്രീസ്വത്വനിർമ്മിതിയിൽ
ആദ്യകാല സ്ത്രീമാസികകളുടെ പങ്ക് 78
ആതിര കെ.

നവോത്ഥാനമൂല്യങ്ങൾ ദേശകവിതകളിൽ 83
സിജി എം.വി. (സി. പ്രഭാ തെരേസ്)

Philosophical contributions of
Fr. Kuriakose Elias Chavara to the
renaissance of Kerala 89
Dr. Justin P.G.

Portrayal of the victorian society
in 'Great expectations' by Charles Dickens 93
Akhila Maria A I

മലയാള സാഹിത്യ നവോത്ഥാനത്തിന്റെ നാൾവഴികൾ

(ആദ്യകാല പത്ര-സാഹിത്യ മാസികകളെ ആസ്പദമാക്കി ഒരന്വേഷണം)

അനു വി.എസ്.

മലയാളസാഹിത്യത്തിന്റെ വളർച്ചയിലും നവോത്ഥാനപാതയിലും ഗണ്യമായ പങ്കാണ് ആദ്യകാലപത്രമാസികകൾ നിർവഹിച്ചിട്ടുള്ളത്. ഭാഷയുടെയും സാഹിത്യത്തിന്റെയും മനുഷ്യകുലത്തിന്റെയും ഉണർച്ചയ്ക്കും ഉയർച്ചയ്ക്കും പ്രത്യക്ഷപ്പെട്ട ലേഖനങ്ങൾ നവോത്ഥാനത്തെ പൂർണതയായും പിന്തുണച്ചിരുന്നു.

ആദ്യകാല പത്രമാസികകളും സാഹിത്യനവോത്ഥാനവും

സമൂഹത്തിലും ഭരണതലത്തിലും എന്തുനടക്കുന്നു എന്നറിയിക്കുകയും എന്താണ് നടത്തേണ്ടതെന്ന് ഉണർത്തി സമൂഹാവബോധം രൂപപ്പെടുത്തുകയും സമുദ്ധരിക്കുകയും ചെയ്യുക എന്ന വലിയ കൃത്യത്തിനുള്ള പേരാണ് പത്രധർമ്മം. ഫ്യൂഡൽ പ്രഭുത്വവാഴ്ചയുടെ ജീർണതകൾക്കെതിരെയാണ് പത്രപ്രവർത്തനം ആവിർഭവിച്ചത്. ഈ ലക്ഷ്യത്തെ പിൻതുടർന്നുകൊണ്ട് തന്നെയാണ് മാസികകളും കേരളത്തിൽ പുറത്തുവന്നത്. പത്രപ്രവർത്തനരംഗവുമായി പരിചയമുണ്ടായിരുന്ന പാശ്ചാത്യ മിഷണറിമാർ ഇന്ത്യയിലെ പല ഭാഷകളിൽ ആനുകാലികങ്ങൾ ആരംഭിച്ചതിലൊരു ഭാഷയാണ് മലയാളം. ഗുണ്ടർട്ടിന്റെ നേതൃത്വത്തിലുള്ള ബാസൽ മിഷനാണ് മലയാളത്തിലാദ്യമായി ആനുകാലികങ്ങൾ പ്രസിദ്ധീകരിച്ചുതുടങ്ങിയത്. തലശ്ശേരിയിൽ നിന്ന് പ്രസിദ്ധീകരിച്ച മലയാളപഞ്ചാംഗമാണ് (1846) ആദ്യത്തെ ആനുകാലികമെന്ന് പറയുന്നുണ്ടെങ്കിലും ഇന്ന് അതിന്റെ പ്രതികൾ ലഭ്യമാകാത്തതുകൊണ്ട് കൂടുതൽ വിവരങ്ങൾ അറിയാൻ സാധിക്കുന്നില്ല.

രാജ്യസമാചാരം

മലയാള ആനുകാലികങ്ങളിൽ ആദ്യത്തേത് എന്ന് വിശ്വസിക്കപ്പെടുന്നത് രാജ്യസമാചാരമാണ്. ബാസൽ മിഷനുവേണ്ടി 1847ൽ ഗുണ്ടർട്ടിന്റെ

പശ്ചാത്തലത്തിൽ ആണ് രാജ്യസമാചാരം എന്ന പത്രമാസിക പുറത്തിറങ്ങിയത്. ("രാജ്യസമാചാരം" എന്ന പേര്, ദൈവരാജ്യമാണ് 'രാജ്യം' കൊണ്ട് ഉദ്ദേശിക്കുന്നത്) ഉള്ളടക്കത്തിന്റെ നല്ല പങ്കും മതപരമായ പ്രവർത്തനങ്ങൾക്കു നീക്കിവച്ചിരുന്നെങ്കിലും ഭൂമിശാസ്ത്രം, പൊതുവിജ്ഞാനം, കഥകൾ, പഴഞ്ചൊല്ലുകൾ തുടങ്ങിയ മതേതരവിഷയങ്ങളും അതിൽ വന്നിരുന്നതുകൊണ്ടാണ്.

ഫ്രഞ്ച് വിപ്ലവസമയത്ത്, 'ഫ്രാൻസിലെ സമാധാനം' എന്ന ലേഖനത്തിൽ, ജസ്യൂട്ട് മിഷണറി ചെയ്ത പ്രവർത്തനങ്ങളെക്കുറിച്ചും ധാരനാഗ ഭാഗോർ മാർപ്പാപ്പയെ സന്ദർശിച്ചു നടത്തിയ 'പാപ്പയും ബ്രാഹ്മണനും' എന്ന വിവരണത്തെക്കുറിച്ചും ഈ മാസികയിൽ പറയുന്നുണ്ട്. സാംസ്കാരികരംഗത്ത് മാത്രമല്ല സാഹിത്യരംഗത്തിലും പുത്തൻ ഉണർവുകൾ കൊണ്ടുവരാൻ രാജ്യസമാചാരത്തിന് സാധിച്ചിട്ടുണ്ട്. ജനകീയ ഭാഷാശൈലിയുടെ അങ്കുരങ്ങൾ ഈ മാസികയിൽ കാണാം

മതപ്രചാരണം എന്ന ലക്ഷ്യമായിരുന്നു രാജ്യസമാചാരപ്രസിദ്ധീകരണത്തിനു പിന്നിൽ. സാഹിത്യദൃഷ്ട്യാ നോക്കുമ്പോൾ ജനകീയ ഭാഷാശൈലിയാണ് ഉപയോഗിച്ചിട്ടുള്ളത്. ഇന്നത്തെ ഭാഷാശൈലി രാജ്യസമാചാരത്തിലെ ഭാഷാശൈലിയുടെ ക്രമാനുഗതമായ വളർച്ചയെയാണ് സൂചിപ്പിക്കുക.

പശ്ചിമോദയം

'രാജ്യസമാചാര'ത്തിന്റെ കനിഷ്ഠ സഹോദരസ്ഥാനമാണ് 1847 ഒക്ടോബറിൽ പ്രസിദ്ധീകരിച്ചു തുടങ്ങിയ 'പശ്ചിമോദയ'ത്തിനുള്ളത്.' രാജ്യസമാചാരത്തെ പോലെ "പശ്ചിമോദയത്തിന്റെ ചുക്കാൻ പിടിച്ചതും ഗുണ്ടർട്ടിന്റെ അദൃശ്യഹസ്തങ്ങൾ തന്നെയാണെന്ന് സംശയലേശമെന്യേ പറയാം"എന്ന് ജി. പ്രിയദർശനൻ അഭിപ്രായപ്പെടുന്നുണ്ട്. പൊതുവിജ്ഞാനത്തിൽ ജനങ്ങളെ ഉദ്ബുദ്ധരാക്കുക, വെളിച്ചം പാശ്ചാത്യരാജ്യങ്ങളിൽനിന്നു പുറപ്പെടുന്നു എന്നു വ്യക്തമാക്കുക, ശാസ്ത്രബോധത്തിനു യൂറോപ്പാണു മുൻപന്തിയിലെന്നു വ്യക്തമാക്കുക തുടങ്ങിയ ലക്ഷ്യങ്ങളാണ് പശ്ചിമോദയത്തിന്റെ പ്രസിദ്ധീകരണത്തിന്റെ പിന്നിൽ പ്രവർത്തിച്ചത്.

ജ്യോതിഷവിദ്യ, കേരളപഴമ, ഭൂമിശാസ്ത്രം തുടങ്ങിയ വിഷയങ്ങളെ സംബന്ധിച്ചു ലഘുലേഖനങ്ങൾ വെളിച്ചം കണ്ടത് പശ്ചിമോദയത്തിലൂടെയായിരുന്നു. ജ്യോതിഷശാസ്ത്രത്തിലെ പല തരം അന്ധവിശ്വാസങ്ങളെ പശ്ചിമോദയത്തിൽ തള്ളികളയുന്നുണ്ട്. മതേതരസ്വഭാവം ഉള്ളതുകൊണ്ട് തന്നെ ക്രിസ്ത്യാനികളുടെ ഇടയിൽ മാത്രമല്ല, ഹിന്ദുക്കൾക്കിടയിലും പശ്ചിമോദയത്തിന് പ്രചാരം ഉണ്ടായിരുന്നു. സാഹിത്യത്തിലെ വൈജ്ഞാനികശാഖയ്ക്ക് തുടക്കം കുറിച്ചത് പശ്ചിമോദയത്തിലൂടെയായിരുന്നു.

ജ്ഞാനനിക്ഷേപം

റവ. ജോർജ്ജ് മാത്തന്റെ നേതൃത്വത്തിൽ ഇളക്കിമാറ്റാവുന്ന അച്ചുകൾ ഉപയോഗിച്ച് മുദ്രണം ചെയ്ത മലയാളത്തിലെ ആദ്യ ആനുകാലികമാണ് ജ്ഞാനനിക്ഷേപം. ആധുനിക പത്രമാസികകളുടെ മുന്നോടിയാണ് ജ്ഞാനനിക്ഷേപം. മാസികയുടെ ഉദ്ദേശലക്ഷ്യം ഒന്നാം ലക്കത്തിൽ മുഖവുരയിൽ പറഞ്ഞുവെയ്ക്കുന്നുണ്ട്. സ്വദേശവർത്തമാനങ്ങളും പരദേശവർത്തമാനങ്ങളും, പല തരം ചികിത്സകളെക്കുറിച്ചും തിരുവിതാംകോട്ട സംസ്ഥാനത്തെ തനിച്ചുള്ള മര്യാദകളെക്കുറിച്ചുമുള്ള വിവരങ്ങളുമാണ് ജ്ഞാനനിക്ഷേപത്തിൽ ഉൾക്കൊള്ളിച്ചിരിക്കുന്നത്. കൂടാതെ മലയാള സാഹിത്യത്തിലെ പല പ്രസ്ഥാനങ്ങൾക്കും തുടക്കം കുറിച്ച കൃതികൾ പുറത്തു വന്നത് 'ജ്ഞാനനിക്ഷേപ'ത്തിലാണ്.

മലയാള നോവൽ പ്രസ്ഥാനത്തിന് തുടക്കം കുറിച്ച 'പുല്ലേലി കുഞ്ചു', മലയാളത്തിന്റെ പ്രഥമനോവലായ അപ്പു നെടുങ്ങാടിയുടെ 'കുന്ദലത', മലയാളത്തിലെ ചെറുകഥാപ്രസ്ഥാനത്തിന് തുടക്കമിട്ട 'ആനയെയും തുന്നയെയും കുറിച്ച്' (1849) എന്ന ശീർഷകത്തിലുള്ള കഥയും മനുഷ്യൻ, ഭാഷ, എഴുത്ത് എന്നിങ്ങനെയുള്ള ആദ്യകാല ഉപന്യാസ മാതൃകകളും തീക്കപ്പലുകൾ, വർത്തമാനസൂത്രകമ്പി, ക്ലോറോഫോം തുടങ്ങിയ ശാസ്ത്രലേഖനങ്ങളും 'സംവാദനം' എന്ന ആദ്യത്തെ ഗ്രന്ഥനിരൂപണവും പുറത്തുവന്നത് ജ്ഞാനനിക്ഷേപത്തിലൂടെയാണ്. കൂടാതെ പത്രമാസികകളുടെ തുടക്കം എന്നോണം ലക്കം, നമ്പർ, വിഷയവിവരം തുടങ്ങിയ വിവരങ്ങൾ നൽകാൻ തുടങ്ങിയതും ഈ മാസികയായിരുന്നു.

പക്വതയാർന്ന ഒരു ഗദ്യശൈലിയും സംസ്കൃതപദപ്രചുരവും ആധുനികമലയാളശൈലിയുടെ വികാസവും ജ്ഞാനനിക്ഷേപത്തിലൂടെയാണ് വളർന്നത്. വാർത്തകൾക്ക് പ്രാധാന്യം നൽകികൊണ്ട് പുറത്തിറക്കിയ ആദ്യത്തെ വർത്തമാനപത്രമെന്ന പദവിയും ജ്ഞാനനിക്ഷേപത്തിന് നൽകാവുന്നതാണ്.

പശ്ചിമതാരക

1864ൽ പോൾമെൽവിൻ വാക്കർ സായ്പ്, കുര്യൻ റൈട്ടർ, ഇട്ടേര റൈട്ടർ, ഇട്ടൂപ്പ് റൈട്ടർ എന്നിവരുടെ നേതൃത്വത്തിൽ പുറത്തിറങ്ങിയ 'വെസ്റ്റേൺസ്റ്റാറി'ന്റെ മലയാള പതിപ്പാണ് 'പശ്ചിമതാരക'. മതപ്രചരണത്തേക്കാളധികം സാഹിത്യലേഖനങ്ങൾക്കും ഗ്രന്ഥവിമർശനങ്ങൾക്കും പശ്ചിമതാരക പ്രത്യേകപ്രാധാന്യം നൽകിയിരുന്നു. ഉമ്മൻ ഫിലിപ്പോസിന്റെ 'അമരകോശപ്രദീപിക' തുടങ്ങിയ കൃതികൾ ഖണ്ഡശഃ പ്രസിദ്ധീകരിച്ചതും ഷേക്സ്പിയറിന്റെ 'കോമഡി ഓഫ് എറേഴ്സ്' എന്ന നാടകത്തിന്റെ പരിഭാഷയായ 'ആൾമാറാട്ടം' പ്രസിദ്ധീകരിച്ചതും പശ്ചിമതാരകയിലാണ്.

സാഹിത്യമാസികകളും നവോത്ഥാനവും

മലയാളത്തിലെ ആദ്യകാലമാസികകളിൽ കൂടുതലും സാഹിത്യ പ്രചരണത്തെക്കാൾ മതപ്രചാരണമായിരുന്നു ലക്ഷ്യം വെച്ചിരുന്നത്. എന്നാൽ 19-ാം നൂറ്റാണ്ടോടുകൂടി സാഹിത്യപ്രധാനികളായ മാസികകൾ മലയാളത്തിൽ അച്ചടിച്ച് വരുവാൻ തുടങ്ങി. 20-ാം നൂറ്റാണ്ടായപ്പോഴേക്കും ഇത്തരം പ്രസിദ്ധീകരണങ്ങൾക്ക് മലയാള പത്രരംഗത്ത് സുപ്രധാനമായ സ്ഥാനം ലഭിച്ചു.

വിദ്യാവിലാസിനി

1881ൽ തിരുവനന്തപുരത്ത് പുറത്തുവന്ന വിദ്യാവിലാസിനിയാണ് കേരളത്തിലെ ഒന്നാമത്തെ സാഹിത്യ മാസിക. വിശാഖം തിരുന്നാൾ മഹാരാജാവ്, ദിവാൻ രങ്കസ്വാമി, കേരളവർമ്മ വലിയകോയിത്തമ്പുരാൻ, പി. ഗോവിന്ദപിള്ള എന്നിവരുടെ പിന്തുണയോടെയാണ് ഈ മാസിക പുറത്തു വന്നത്. ഭാഷാചരിത്രം, ഭൂമിശാസ്ത്രം, കൃഷിശാസ്ത്രം, വിദ്യാഭ്യാസനിയമങ്ങൾ, യന്ത്രസംബന്ധമായ ശാസ്ത്രം, മൃഗചരിത്രം തുടങ്ങി ഒട്ടനവധി വിഷയങ്ങൾ പ്രസിദ്ധീകരിച്ച ഈ മാസിക ജനങ്ങളുടെ അറിവ് വർദ്ധിപ്പിക്കുന്നതിനുള്ള ഉപാധിയായിരുന്നു. കേരളവർമ്മയുടെ ശാകുന്തള വിവർത്തനം കേരളീയജനത കണ്ടതും (കേരളകാളിദാസൻ എന്ന പേരു വീണത് ഈ കൃതിയിലൂടെയാണ്), വിശാഖം തിരുന്നാൾ തയ്യാറാക്കിയ അലക്സാണ്ടർ, അരിസ്റ്റോട്ടിൽ, ആർക്കിമിഡീസ് തുടങ്ങിയ ഒട്ടനവധി മഹാന്മാരുടെ ഇംഗ്ലീഷിലുള്ള ജീവചരിത്രകുറിപ്പുകളുടെ പ്രകാശനവും മലയാള ചെറുകഥയുടെ പ്രഥമാങ്കുരമെന്ന് വിശേഷിപ്പിച്ച 'കല്ലൻ' എന്ന കഥയും വിദ്യാവിലാസിനിയിൽ അച്ചടിച്ചു വന്നതാണ്. ജാതി വ്യവസ്ഥ കൊടുമ്പിരി കൊണ്ടിരുന്ന കേരളത്തിലെ ജനങ്ങൾക്ക് സവർണ്ണ - അവർണ്ണ വ്യത്യാസമില്ലാതെ ഏതു എഴുത്തുകാരന്റേയും സാഹിത്യകൃതികൾ പ്രസിദ്ധീകരിക്കുവാനുള്ള ചങ്കൂറ്റം കാണിച്ചത് വിദ്യാവിലാസിനിയാണ്.

വിദ്യാവിനോദിനി

1887-ൽ തൃശ്ശൂരിൽ നിന്ന് സി.പി.അച്യുതമേനോന്റെ നേതൃത്വത്തിൽ പുറത്തുവന്ന സാഹിത്യമാസികയാണ് വിദ്യാവിനോദിനി.സാഹിത്യം, ശാസ്ത്രം, ചരിത്രം തുടങ്ങിയ വിവിധ വിഷയങ്ങളെക്കുറിച്ചുള്ള പ്രബന്ധങ്ങൾക്കും അച്യുതമേനോൻ വിദ്യാവിനോദിനിയിൽ സ്ഥലം നൽകിയിരുന്നു. ഭാഷയെ സംസ്കൃതാധിപത്യത്തിൽ നിന്ന് മോചിപ്പിക്കുന്നതിനും നിഷ്പക്ഷമായ നിരൂപണം മുന്നോട്ടു കോണ്ടുവരുന്നതിനും വേണ്ടി വിദ്യാവിനോദിനി തുടക്കം കുറിച്ചു. സംസ്കൃതജ്ഞാനമില്ലാതിരുന്ന ജനങ്ങൾക്ക് അറിയുവാനായി നായികാദിലക്ഷണം, നായക ലക്ഷണം, ശൃംഗാരരസം തുടങ്ങിയ ശീർഷകങ്ങളിൽ പല ഉപന്യാസങ്ങൾ അദ്ദേഹം തയ്യാറാക്കി. കൂടാതെ കുണ്ടൂരിന്റെ 'മാളവികാഗ്നിമിത്രം',

കുഞ്ഞിക്കുട്ടൻ തമ്പുരാന്റെ 'ലക്ഷണാസംഗം', 'വിക്രമോർവ്വശീയം', ഗോവിന്ദൻ എളേടത്തിന്റെ 'സുന്ദരസരസ്വീവരം', തുടങ്ങിയ ആദ്യ കാലത്തെ നാടകങ്ങളിലെ പുത്തൻ രചനാശൈലികളെ ജനസമക്ഷം കൊണ്ടുവന്നത് വിദ്യാവിനോദിനിയായിരുന്നു. ഏ.ആർ.ന്റെ 'ഭാഷാ കുമാരസംഭവം', 'മലയവിലാസം' എൻ. രാമകുറുപ്പിന്റെ 'ചക്കീചങ്കരം', ശേഷഗിരി പ്രഭുവിന്റെ 'മലയാളഭാഷ', ആദ്യത്തെ ലക്ഷണമൊത്ത ചെറു കഥയായ വേങ്ങയിൽ കുഞ്ഞിരാമൻനായരുടെ 'വാസനാവികൃതി', 'കേസരി' എന്ന നർമ്മ പ്രധാനമായ ലേഖനങ്ങളുടെ സമാഹാരവും വിദ്യാ വിനോദിനിയെ മാത്രമല്ല മലയാളസാഹിത്യത്തെയുമാണ് സമ്പന്ന മാക്കിയത്. "വിദ്യാവിനോദിനിക്കുശേഷം ഇവിടെ നൂറു കണക്കിനു മാസികകൾ ഉദയം ചെയ്തു; അസ്തമിച്ചു. എന്നാൽ കൈരളിക്ക് ഒരിക്കലും മറക്കാൻ കഴിയാത്ത കരുത്തുറ്റ സംഭാവനകൾ-വിശേഷിച്ചും ഗദ്യസാഹിത്യത്തിന്-നൽകിയിട്ട് മൺമറഞ്ഞ വിദ്യാവിനോദിനി നിത്യ സ്മരണീയമായിരിക്കും."

കവനോദയം

1896-ൽ കടത്തനാട്ട് ഉദയവർമ്മ തമ്പുരാൻ പുറത്തിറക്കിയ സാഹിത്യ മാസികയാണ് 'കവനോദയം'. 'ഭാരതംചമ്പു', 'രാമായണംചമ്പു', 'ചന്ദ്രോ ത്സവം', 'ഭൃംഗസന്ദേശം', 'ഭാഷാകർണാമൃതം' മുതലായ സാഹിത്യശാഖ യുടെ മുതൽക്കൂട്ടായ കൃതികളും കൃഷ്ണഗാഥയുടെ കർത്താവ് പുന മാണെന്നുള്ള പലതരം നവീന അഭിപ്രായങ്ങളും രൂപം കൊണ്ടത് കവനോദയത്തിലൂടെയായിരുന്നു. ഉദയവർമ്മ തമ്പുരാന്റെ വിവർത്തന കൃതികളായ രത്നാവലി, പ്രിയദർശിനി, ഗവേഷണപരമായ 'കവികലാപം' എന്ന ലേഖന പരമ്പര തുടങ്ങിയതും കവനോദയത്തിൽ വെച്ച് ആയി രുന്നു. 16 കൊല്ലത്തോളമാണ് ഈ മാസിക പ്രസിദ്ധീകരിച്ചത്.

ഭാഷാപോഷിണി

കണ്ടത്തിൽ വർഗ്ഗീസ് മാപ്പിളയുടെ പത്രാധിപത്യത്തിൽ പുറത്തുവന്ന ചതുർമാസികയാണ് ഭാഷാപോഷിണി(1892). പദ്യശാഖയെക്കാൾ ഗദ്യ ശാഖയ്ക്കാണ് ഈ മാസിക പ്രാധാന്യം കല്പിച്ചത്. മലയാളമനോരമ യുടെ ഓഫീസിൽ സാഹിത്യകാരന്മാർ യോഗം ചേർന്ന 'കവിസമാജ' മാണ് ഭാഷാപോഷിണിയുടെ ഉത്ഭവത്തിന് കാരണമായത്.

മൂന്നു പ്രവിശ്യകളായിരുന്ന കേരളത്തിന്റെ സംസ്കാരത്തെക്കുറിച്ചും വൈജ്ഞാനികമേഖലകളെക്കുറിച്ചും ഭാഷയുടെയും സാഹിത്യത്തി ന്റെയും വളർച്ചയെക്കുറിച്ചുമുള്ള പലതരം പ്രസിദ്ധീകരണങ്ങൾക്ക് ഭാഷാ പോഷിണി സഹായകമായി. സാഹിത്യം, ഭാഷാശാസ്ത്രം, ചരിത്രം, വിദ്യാ ഭ്യാസം, ശാസ്ത്രസാങ്കേതികവിജ്ഞാനീയങ്ങൾ, ജീവചരിത്രങ്ങൾ തുടങ്ങിയ വിവിധ വിഷയങ്ങളിലുള്ള പ്രബന്ധങ്ങൾ ഭാഷാപോഷിണി

പ്രസിദ്ധീകരിച്ചു. 'കേരളപാണിനീയ'ത്തെകുറിച്ചുള്ള ശേഷഗിരി പ്രഭുവിന്റെ വിമർശനാത്മകമായ ലേഖനപരമ്പരകൾ മലയാളികൾക്ക് ഭാഷാവ്യാകരണത്തെ കുറിച്ച് ഒരു ധാരണ ലഭിക്കുവാൻ സഹായകമായി. ഉള്ളൂർ എസ്. പരമേശ്വരയ്യരുടെ 'നമ്മുടെ ഗദ്യമെഴുത്തുകൾ' എന്ന ലേഖനത്തിൽ മലയാളത്തിലെ ഗദ്യരചയിതാക്കളെ ആംഗലേയസാഹിത്യകാരന്മാരോട് താരതമ്യപെടുത്തിയപ്പോൾ യൂറോപ്യൻ സാഹിത്യങ്ങളിലേക്ക് എത്തിക്കുവാനുള്ള വഴിയാണ് തുറന്നിട്ടത്. (ഏ.ആർ.-എമേഴ്സൺ, സി.വി.രാമൻപിള്ള-വാൾട്ടർ സ്കോട്ട്, സി.പി.അച്യുതമേനോൻ-മെക്കാളെ മുതലായവർ) ആശാന്റെ 'സിംഹപ്രസവം' എന്ന കവിത, മൂർക്കോത്ത് കുമാരന്റെ 'അന്യഥാ ചിന്തിതം കാര്യം ദൈവമന്യത്ര ചിന്തയേത്' (മലയാളത്തിലെ ആദ്യത്തെ ലക്ഷണമൊത്ത ചെറുകഥ-ജി. പ്രിയദർശൻ)എന്ന കഥയും, 'കാസ്മിയുടെ ചെതിപ്പ്', 'ലോകാപവാദം' എന്ന നോവലുകളും, ഷേക്സ്പിയറിന്റെ 'മാക്ബെത്ത്', ടാഗോറിന്റെ 'ബാലാങ്കണം' തുടങ്ങിയ നാടകവിവർത്തനങ്ങളും ഈ മാസികയുടെ മുതൽകൂട്ടുകളിൽ ചിലതാണ്. സാഹിത്യത്തിന്റെ മേഖലകൾ ഇന്നും തുറന്നുകാട്ടുന്ന മാസിക കൂടിയാണ് ഭാഷാപോഷിണി.

രസികരഞ്ജിനി

1903-ൽ അപ്പൻ തമ്പുരാന്റെ നേതൃത്വത്തിൽ തൃശ്ശൂരിൽ നിന്ന് പ്രസിദ്ധീകരണമാരംഭിച്ച മാസികയാണ് 'രസികരഞ്ജിനി'. രാജ്യഭരണ വിഷയങ്ങൾ തീർത്തും ഒഴിവാക്കി കൊണ്ട് സാഹിത്യത്തിനും ശാസ്ത്രത്തിനും പ്രാധാന്യം നൽകി പ്രസിദ്ധീകരിച്ച മാസിക കൂടിയാണിത്. മലയാളത്തിലെ ആദ്യ ഡിറ്റക്ടീവ് നോവലായ അപ്പൻ തമ്പുരാന്റെ 'ഭാസ്കരമേനോൻ', മർക്കോത്ത് കുമാരന്റെ 'കാകൻ' എന്ന കഥ, സി.എസ്. സുബ്രഹ്മണ്യൻ പോറ്റിയുടെ 'ഒരു വിലാപം' എന്ന വിലാപകാവ്യം, 'ഉണ്ണുനീലിസന്ദേശം', 'ലീലാതിലകം' തുടങ്ങിയ പ്രശസ്ത കൃതികളും സഹൃദയസമക്ഷം എത്തിച്ചത് രസികരഞ്ജിനിയിലൂടെയായിരുന്നു

കവനകൗമുദി

“പൂർണ്ണമായും കവിതാമയമായി പ്രസിദ്ധീകരിക്കപ്പെട്ട ഭാരതത്തിലെ ഏക ആനുകാലിക പ്രസിദ്ധീകരണമാണ് കവനകൗമുദി.” പന്തളം കേരളവർമ്മയുടെ പത്രാധിപത്യത്തിലായിരുന്നു ഈ മാസിക പുറത്തു വന്നത്. പ്രാദേശിക വാർത്തകൾ, പുസ്തകങ്ങൾ കൈപ്പറ്റിയ വിവരം, പരസ്യങ്ങൾ, മുഖപ്രസംഗങ്ങൾ തുടങ്ങിയ എല്ലാ ഇനങ്ങളും പദ്യത്തിൽ തന്നെയാണ് ചേർത്തിരിക്കുന്നത്. വള്ളത്തോളിന്റേയും, ഉള്ളൂരിന്റേയും ജി.യുടേയും ഒട്ടനവധി കൃതികൾ പ്രസിദ്ധീകരിക്കപ്പെട്ട മാസിക എന്ന ഖ്യാതിയും കവനകൗമുദിക്ക് അവകാശപ്പെടാം.

“മലയാളത്തിൽ പദ്യരചനാപാടവത്തിന്റെ അഭിവൃദ്ധി അറിയാൻ ആഗ്രഹിക്കുന്നവർ ഇതിനെ മാനദണ്ഡമായി എടുത്തുനോക്കുന്നതിൽ

അബാധമില്ല" എന്ന് വിവേകോദയത്തിൽ കുമാരനാശാനും പറഞ്ഞുവെയ്ക്കുന്നുണ്ട്. 'സ്വദേശാഭിമാനി', 'കേസരി', 'വിവേകോദയം', 'ഗ്രന്ഥാലോകം', 'ശ്രീമതി' തുടങ്ങിയ മാസികകളും ലോകം നിഷേധിക്കപ്പെട്ട ഒരു ജനതയ്ക്ക് മുമ്പിൽ അറിവിന്റെ വാതായനങ്ങൾ തുറന്നു. സാഹിത്യത്തിന്റെ പദ്യഗദ്യമേഖലയ്ക്ക് പുത്തൻ പ്രവണതകൾ സമ്മാനിക്കുകയും അന്ധവിശ്വാസങ്ങളെ നിർമാർജ്ജനം ചെയ്യുകയും ശാസ്ത്രസാങ്കേതിക മേഖലകൾ ജനങ്ങൾക്ക് പരിചയപ്പെടുത്തുകയും ചെയ്ത ഈ മാസികകളെല്ലാം തന്നെ മലയാള സാഹിത്യശാഖയുടെ പുത്തൻ താരോദയത്തിന് വഴി വെട്ടി തെളിക്കുകയാണ് ഉണ്ടായത്. ഇന്നും ജനങ്ങൾക്കിടയിലുള്ള അന്ധവിശ്വാസങ്ങളേയും ഉച്ചനീചത്വങ്ങളേയും സാഹിത്യത്തിലെ പുതിയ താരോദയങ്ങളേയും പരിചയപ്പെടുത്തുന്നതിനുള്ള ഒരു ഉപാധിയായി മാസികകൾ മാറേണ്ട കാലം അതിക്രമിച്ചിരിക്കുന്നു.

പുതിയ കാലത്തേക്കുള്ള ഭാഷയുടെ വളർച്ചയിൽ ഇത്തരം സാഹിത്യ മാസികകൾ വഹിച്ച പങ്കാണ് പിൽക്കാലത്ത് പുരോഗമനാശയങ്ങളുടേയും നവോത്ഥാനചിന്തകളുടേയും കാതലായി വർത്തിച്ചത്.

അസിസ്റ്റന്റ് പ്രൊഫസർ (Govt. Guest)
മലയാളവിഭാഗം
കാർമ്മൽ കോളേജ്, മാള

സഹായകഗ്രന്ഥങ്ങൾ

1. അച്യുതൻ. എം (പ്രൊഫ:), സ്വാതന്ത്ര്യസമരവും മലയാളസാഹിത്യവും, കറന്റ് ബുക്സ് തൃശ്ശൂർ, 1994.
2. കണ്ടത്തിൽ വർഗ്ഗീസ് മാപ്പിളയുടെ കൃതികൾ (ഒന്നാം വാല്യം) മനോരമ പബ്ലിഷിംഗ് ഹൗസ് (സമ്പാ:), 1977
3. ചുമ്മാർ ടി.എം, ഭാഷാഗദ്യസാഹിത്യചരിത്രം, നാഷണൽ ബുക്ക് സ്റ്റാൾ, 1979
4. ചെറിയാൻ കുന്നിയന്തോടത്ത് (ഡോ.), മലയാളഭാഷയും ഡോ. ഹെർമൻ ഗുണ്ടർട്ടും, പി.കെ.ബ്രദേഴ്സ്, കോഴിക്കോട്, 1997

Academic Deliberations on Words, Visuals and Beyond

Mediatization of Narrative Spaces

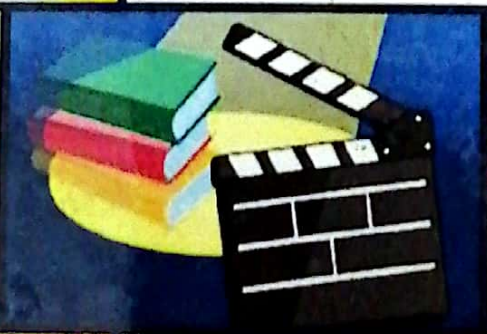

Dr. Mini M Abraham
Dr. Gayathri P. J

Scanned by CamScanner

ACADEMIC DELIBERATIONS
ON
WORDS, VISUALS AND BEYOND: MEDIATIZATION OF NARRATIVE SPACES

Edited by:

Dr. Mini M. Abraham
Dr. Gayathri P.J.

Sub Editors:

Dr. Laly Mathew
Mr. Jojy K.V.
Ms. Merin Jose
Ms. Mincy Mathew
Ms. Anju Maria
Ms. Lissy Kachappilly
Ms. Sabitha Zacharias
Ms. Smitha Elizabeth George
Ms. Reshma K.P.
Ms. Nasnin S.

PRATHAM PUBLICATIONS
New Delhi

Scanned by CamScanner

Academic Deliberations on Words, Visuals and Beyond: Mediatization of Narrative Spaces

© Author

Edition 2019

ISBN : 978-93-88742-12-2

Published by :
Pratham Publications
4228/1, Ansari Road
Darya Ganj,
New Delhi - 110 002
Ph.: 011-23266109.
Fax : 91-011-23283267
e-mail: prathampublications30@gmail.com

Typesetting by :
Sanya Computers
(Mob: 9810458150)
Delhi - 110053

Printed and Bound in India

Scanned by CamScanner

Contents

Preface (v)

Acknowledgements (vii)

SECTION-I

MEDIATIZATION

1. Mediatization of Culture and the Transformation of Individualism 3

   —*Stig Hjarvard*

2. Xenotransplantation, Form-of-life and Post human Lives 5

   —*Pramod K. Nayar*

3. From Mediatisation to Mythification: The Course of Icons in the Making 18

   —*Arya M.P.*

4. Mediatization of Narrative Spaces in M.T. Vasudevan Nair's *The Soul of Darkness* 24

   —*Febi Abraham*

5. Exposed: Mediatization and the Realm of the Private 30

   —*Nivedhitha S.*

6. From Reel to Real: Cinema Fictionalised in Shashi Tharoor's *Show Business* 36

   —*Prashant V.G.*

7. Mimetic Blurring of Cultural and Aesthetic Spaces 42

   —*Smitha Elizabeth George*

SECTION-II

NEW MEDIA AND CULTURE

8. Digital Story worlds and Beyond: Analyzing the Unnatural Immersive Reading Experience in Digital Fictions 49

   —*Anu K. Sam*

Scanned by CamScanner

32. A Foray into the Interactive Space of New Generation Visual Narrative: The Video Games 207

—*Neena Simon*

33. Visibility and Surveillance: A Study of Ruth Ozeki's *A Tale for the Time Being* 215

—*Ms. Pretty John P.*

34. Images of Mourning: Combating Trauma through the Narrative Space of Photography 224

—*Shobha S. Nair*

35. Adapting Novels into Graphic Novels: Reading the Gaps in *Knight of Darkness* 231

—*Vidhu Mary John*

36. Cartoons: Visual Narratives that Sculpture Young Minds 238

—*Vidhya Viswanathan*

SECTION-VI

MEDIA IDENTITY AND NARRATIVE SPACES

37. Brands as Narratives: Identity Constructs generated by Brands 247

—*C.S. Prabha*

38. *The Museum of Innocence* and *The Innocence of Objects*: OrhanPamuk's Polemics of Words, Objects and History 255

—*Dr. Jeena Ann Joseph*

39. Garhwal in Memes: Connecting with the Everyday through a New Narrative Space 264

—*Kritika Kshettrie; —Dr. Rahul Narayan Kamble*

40. Narrating the Nation through Biographical Comics: An Analysis of Amar Chitra Katha's *Mahatma Gandhi: Father of the Nation* 271

—*Preeti Kumar*

41. Reinterpreting Turkish History through Monumental Space: A Study of OrhanPamuk's *Silent House* 279

—*Dr. K.M. Shamla*

42. Digital Chronotopes: Individual, Shared, and Public 285

—*Princy K.P.*

43. Media Consciousness: Role of Education in the 21st Century 293

—*Vinu C. James*

Scanned by CamScanner

33 Visibility and Surveillance: A Study on Ruth Ozeki's *A Tale for the Time Being*

—**Ms. Pretty John P.**

Carmel College, Mala

The Internet has become part and parcel of human life, for it offers WWW, e-commerce, entertainments, personal interactions through IM ing, emailing, social networking, and so on. It is also largely based on: "... the unique ability of the Internet to converge textual and visual media in both real and chosen time and at relatively low cost" (Wall, 2007: 105). Through New Media, people convey their personal opinions, share files, photos and videos of anything globally.

Ruth Ozeki's *A Tale for the Time Being* (2013) depicts the predicament of a depressed teenaged girl Nao, who wants to write a memoir on her 104-year-old great-grandmother, a Zen nun and feminist novelist, as her extended suicide note. Ozeki successfully renders the twin protagonists' — Nao and Ruth — divided cultural loyalties, sense of alienation and degradation, and the development of autonomous female identity in her novel. The Internet functions as a character in the novel, as a kind of temporal gyre. As the information is no longer written down in physical form, Ozeki questions how stable are our information in the digital world. The present study provides insights into how the New Media world of visibility, constant surveillance and instantaneous availability of digital information with frequent looping of the media content can wreak havoc on the lives of laymen in Ozeki's *A Tale for the Time Being.*

The great earthquake and tsunami in Japan on 11 March, 2011 followed by the Fukushima Nuclear Meltdown are traumatic experiences for the Japanese since the Second World War. Because of the cyber revolution, their trauma has become a global catastrophe: "There is probably no other disaster which has received as much

Scanned by CamScanner

documentation" (Slater, 2015: 25). The tsunami and Fukushima Nuclear Meltdown accounts were disseminated through New Media. In *A Tale for the Time Being*, Ruth describes the role played by the Internet in sharing the information related to these disasters globally: "In the two weeks following the earthquake ... the global bandwidth was flooded with images and reports from Japan, and for that brief period of time, we were all experts on radiation exposure and microsieverts and plate tectonics and subduction. But then the uprising in Libya and the tornado in Joplin superseded the quake, and the keyword cloud shifted to *revolution* and *drought* and *unstable air masses* as the tide of information from Japan receded" (113).When new events take place, the older ones will be forgotten in the digital culture. Ozeki'swords gives a new dimension to the significance of New Media in disseminating the news related to the havoc wrought by these disasters:

The tidal wave, observed, collapses into tiny particles, each one containing a story:

- A mobile phone, ringing deep inside a mountain of sludge and debris;
- A ring of soldiers, bowing to a body they've flagged;
- A medical worker clad in full radiation hazmat, wanting a bare-faced baby who is squirming in his mother's arms;
- A line of toddlers, waiting quietly for their turn to be tested.

These images, a minuscule few representing the inconceivable many.... (114) Just like the gyre, the Internet connects and isolates people simultaneously. Not getting a response from her American friend to her repeated emails, Nao observes: "There's nothing sadder than cyberspace when you're floating around out there, all alone, talking to yourself" (125). In the whirlpool of life, people are instantly lost and forgotten in the Internet.

Like the ocean gyres collecting pollutants, the Internet too, collects debris. But it's not physical, but digital in the cyberspace. Nao is both fascinated and repelled by the cyberspace. She experiences the fantasy of disembodiment in cyberspace by spending her time on her blog, "The Future is Nao." She escapes the confines of her bio-body to the uploaded consciousness of the cyber world, to her dreams of disembodiment. She feels that the Internet will give her new freedom in the cyber world which is forbidden in the real world. She thus, becomes part of the mediatization of the global world. Through her blog, she constructs a persona for the public consumption and response

Scanned by CamScanner

and it represents her escape from *ijime* or torture by her classmates and teacher. She regards cyberspace as her room of her own. In order to enjoy the unlimited freedom offered by the blog, she reduces herself to a hyperlinked self among numerous such selves/blogs. She has been under the impression that her blog will secure many readers and dreams to create an online community through the sharing of her private space. Instead of telling about her *ijime*, she conveys a very false impression of her life in Japan. She gives an alternative digital narrative to her American friend Kayla. Her blog, at first, signifies her disembodiment in cyberspace, for she has been satisfied with her digital identity. Unfortunately, her blog turned out to be a big flop. The Zen Buddhist meditation known as Zazen seems to be her temporary relief from the media conglomerates. As her website has been under surveillance, bulliesphish her account. It becomes a threat to her own existence because they upload defamatory messages and video clips in her website. Thus, hacking results in her increased visibility, invasion of her privacy and her exploitation in the technological consumption of her body.

Ozeki succinctly outlines the relationship between cyber consumer society and pornography and how the Internet becomes a medium of distribution and consumption of pornography in her novel. In *Cybercrime*, David Wall classifies cybercrime into cyber-trespass, cyber-deceptions and thefts, cyber-porn and cyber-violence (2001: 3-7). Identity theft using spyware is not rare now. Nancy Willard defines "impersonation" in her *Cyberbullying and Cyberthreats* as a form of cyber-bullying where a "cyberbully gain(s) access to the target's account on a system and pose(s) as the target" to "post material that reflects badly on the target or interferes with the target's friendships" (2007: 08). In this regard, she also describes "outing" as "publicly posting, sending, or forwarding personal communications or images that contain intimate personal information or are potentially embarrassing" (2007: 09). Cyberspace has opened new windows of harassment to adolescent bullies. Adolescent cyber bullying has become very rampant and often threatening these days. Bullies can become aggressive anonymously and its reach is an extensive and infinite audience. The permanence of expression and instantaneous popularity of the Internet too attract the bullies. In *A Tale for the Time Being*, Nao's classmates cyber-trespass her account by hacking, impersonate her, post a video of her funeral service in the class in her absence.

Cyber culture creates and promotes massive new markets for pornographic videos. In order to get videos, the bullies may use different

Scanned by CamScanner

tactics like happy slapping, hopping, video jacking or You Tube bullying, and so on. Quoting John Carr on the Internet safety, Nick Hunter describes "happy slapping" as a form of cyber bullying in his *Cyber Bullying*:

> Being hit in public space, which is what historically bullying has been about, is ... humiliating enough, but in general it was limited to just the small number of people who would be standing around at the time it happened ... What's far, far worse is the way that (happy slapping attack victims') humiliation is being multiplied and advertised and broadcast to people they (the victim), know and people they don't know. (2012: 20)

The phrase "happy slapping" evokes fun. Unhappily, it is not at all fun for the victim: "... one person physically attacks someone, while another person records the attack, often with a mobile phone camera. The video of the incident is then posted online or sent from phone to phone for others to watch" (2012: 20). Hopping is a variant of happy slapping. It includes: "... direct assaults, is showing up with increasing frequency in the United States and elsewhere" (Kohler, 2007, Qtd. in Kowalski et al., 2012: 68). The victim could be known /unknown to the perpetrator. The New Media have made performance crimes popular. In *A Tale for the Time Being*, Ozeki underlines that the advent of New Media has enhanced the adolescents' performance crimes. Not satisfied with Nao's funeral service video in the cyberspace, her classmates "happy slap," or rather "hop" her to make a heterosexual/ homosexual rape video on her. They videotape her in a vulnerable situation and upload it to a video sharing site without her knowledge as it happens in video jacking or YouTube bullying. But the cyber bullies make them appear that they have come from the victim. The quick spread of unsubstantiated information as authentic evidence through social media aggravates the situation. As the on-demand aspect of the media content is determined by the consumer and not the producer, Nao's porn video's looping posits indescribable menaces to her. Thus, it emphasizes the silent prey-violent predator relationship in the cyberspace.

Pornography plays a key role in the e-society. In this regard, Immanuel Kant's views on sexuality and objectification need to be mentioned: "... as soon as that appetite has been stilled, the person is cast aside as one casts away a lemon which has been sucked dry ... as soon as a person becomes an Object of appetite for another, all motives of moral relationship cease to function, ... and can be treated and used as such by everyone" (1963: 163). Kant compares the objectified

Scanned by CamScanner

individual to a lemon, used and thrown afterwards. Andrea Dworkin describes sexual objectification on Kantian terms: "Objectification occurs when a human being, through social means, is made less than human, turned into a thing or commodity, bought and sold" (Cornell, 2000: 30-1). Pornography encourages rape and sexual violence against women. Robin Morgan observes: "Pornography is the theory and rape is the practice" (1980: 139). Even if all women are not the victims of actual rape, they are victims of the threat of rape. Though all men are not perpetrators of rape themselves, they are benefiting from it. Pornography cultivates sexual aberration and fuels men's sexual fantasies. Catherine Mac Kinnon defines pornography:

> ...the graphic sexually explicit subordination of women through pictures or words that also includes women dehumanized as sexual objects, things, or commodities; enjoying pain or humiliation or rape; being tied up, cut up, mutilated, bruised or physically hurt; in postures of sexual submission or servility or display; reduced to body parts; penetrated by objects or animals or presented in scenarios of degradation, injury, torture; shown as filthy or inferior; bleeding, bruised, or hurt in a context that makes these conditions sexual." (Mac Kinnon, 1987, 176)

Mac Kinnon states that such depictions of women seriously endanger them: "In pornography women exist to the *end* of male pleasure" (Mac Kinnon, 1987: 173). What is problematic here is sexuality as constructed through pornography. The use of pornography constitutes a real sex act. There is "sex between people and things, human beings and pieces of paper, real men and unreal women" (Mac Kinnon, 1993: 109). Men have real sex acts with pornographic images, may be in the form of pieces of paper, treated as real women. The purpose of men's sexual gratification is achieved whether its real sex acts between real men and real women or between real men and unreal women in the form of pornographic images. Laura Mulvey argues that women are objects of the male gaze and functions as erotic object in cinemas: "... builds the way she is to be looked at into the spectacle itself" (1988: 67). Woman on the screen is a mere spectacle and object on display, as embodying "to-be-looked-at-ness." Martha Nussbaum states that there are six other types of objectification besides instrumentality as proposed by Kant, Dworkin and Mac Kinnon. The seven notions of objectification are instrumentality, denial of autonomy, inertness, fungibility, violability, ownership and denial of subjectivity (1995: 257). Nussbaum argues that instrumentalisation leads to other forms of objectification and it is context which determines objectification. Rae Langton declares that pornography of a certain

Scanned by CamScanner

kind silences and subordinates women and she adds three more aspects to Nussbaum's seven types of objectification: reduction to body, reduction to appearance and silencing (2009: 228-9). Using J.L Austin's Speech Act Theory, Langton argues that pornographic speech subordinates and silences women.

In *A Tale for the Time Being*, Nao is a victim of rape pornography, to be more precise, a target of "menstrual" or "red rhapsody" pornography. Such porn features sexual events involving women who are menstruating with a focus on the menstrual blood. Here, the victim Nao is under the age of 18, so, it is child pornography. Nao's case is also an instance of child-on-child sexual abuse, for she is subjected to rape and exploitation by her own classmates. The perpetrators record, share and upload the videos of her sexual assault to public online spaces and see to that they have used voting or rating websites. Her videoporn finds market in the virtually untraceable dark web. The cyber consumer can instigate a virtual relationship with the content of her porn video. Her bloody panties are put on auction in a *burusera* online shop for the panty fetishists to buy it. *Burusera* is a Japanese word for the fetishism towards the used girl/ young woman's uniform or undergarments. The fetishists hide behind the anonymous web identities: "To gaze implies more than to look at—it signifies a psychological relationship of power, in which the gazer is superior to the object of the gaze" (Schroeder 1998: 21). Nao becomes a sexual victim to the voyeuristic gaze of others.

Nao's bullying—real/virtual—from her classmates results in her depression, suicide tendency, loss of self-esteem, poor performance at school, disinterestedness in day-to-day activities and withdrawal from her parents. Like many other porn victims, the cyber world offers Nao, a gateway to the sex trade industry. She stops going to school after the Panty incident and finds herself dating with the customers of one of the disreputable Akhibara French Maid Cafés. Her first customer Ryu,an affluent school uniform fetish, exchanges his clothes for her uniform. But, Nao's second and last customer takes her as a customary French maid demanding subservient attitude from her. The French maid uniform connotes the dominance-submission aspect in the sexual role playing expected from the master-slave relationship in certain BDSM groups. In the digital world, where everything is instantaneous, she becomes a commodity for the online market with high level demand for sexually explicit materials.

The major characters in the novel, in one way or the other, make use of New Media. Nao's father Harry Yasutani alias Haruki 2, a computer scientist at a large IT Company in Silicon Valley is

Scanned by CamScanner

headhunted to work on human-computer interface design and is fired from his company when he refuses to make human-computer interface design for the US military as weapon controllers for soldiers to use. After the dot-com bubble burst or the Internet boom, he becomes a pauper and takes his family to Japan. He becomes a suicide maniac and chats with similar people in different suicide websites. He always searched for the image of the Falling Man after the 9/11 World Trade Centre attack in the Internet and becomes obsessed with it. Out of his love for his daughter, he too bids for Nao's panties in the online auction organized by the fetish website in the guise of C. Imperator but loses himself to the pervert nicknamed Lolicom 73. In the alternative ending of the novel, he creates a computer programme that can erase the history of Nao from the Internet. The second protagonist Ruth too ransacks the Internet to find the viral video on "The Tragic and Untimely Death of Transfer Student Nao Yasutani" based on Nao's funeral service observed by her classmates and teacher Ugawa Sensei in her absence as part of their bullying. Ruth also googles Jiko Yasutani, the I-feminist novelist and great grandmother of Nao. She accidently comes across with Haruki 2's email on suicide to Professor Leistiko and emails to him to know Nao's family's whereabouts. Ruth's husband too discovers a researcher namely H. Yasudani in the Internet. Even the 104-year-old Jiko too is tech-savvy, for she frequently texts Nao to clear her doubts. It is Muji's texting regarding Jiko's sinking stage that finally saves Nao from going for more dates.

As the information in the Internet is no longer written down in physical form, Ruthcasts doubt on the stability of the information in the digital world: "Does the half-life information correlate with the decay of our attention? Is the Internet a kind of temporal gyre, sucking up stories, like geo-drift, into its orbit? What is its gyre memory? How do we measure the half-life of its drift?" (114). Ruth has spent days on the Internet to know what has become of Nao and her family: "She'd spent the afternoon watching clips of bullying and harassment on YouTube and other video-sharing sites in both the United States and Japan, but the clip she was looking for, "The Tragic and Untimely Death of Transfer Student Nao Yasutani," which according to Nao had once gone viral, was nowhere to be found" (115). She feels that the Internet, the "temporal gyre," has "sucked up" Nao's story just like everything else: "Vanished! ... It's like the harder I look, the more stuff slips away" (230).She mistrusts the integrity and stability of the Internet which have become very crucial in the e-society.

In *A Tale for the Time Being*, Ozeki gives insights into the digital culture and how the New Media encourage both surveillance and

Scanned by CamScanner

spectacle. The constant connection to the cyber world through New Media creates the platform for cyberbullying and facilitates sexual exploitation. The cyber bullies make the sexual victimization of Nao, which results in her digital record in the dark corners of the Web for the voyeuristic public to take pleasure in. Thus, in the hypermedia society, where the "otherness" or "object-status" of woman permeates through the cyber space, the Internet's anonymous aspect attracts the unscrupulous to do anything online.

REFERENCES

Cornell, Drucilla. *The Imaginary Domain: Abortion, Pornography and Sexual Harassment*. Routledge, 1995.

Dworkin, Andrea. "Against the Male Flood: Censorship, Pornography, and Equality."*Oxford Readings in Feminism: Feminism and Pornography*. Ed. Drucilla Cornell. Oxford U P, 2000: 19–44.

Dworkin, Andrea. *Pornography: Men Possessing Women*. E. P. Dutton, 1989.

Dworkin, Ronald. "Women and Pornography."*New York Review of Books*. 21 October 1993: 36.

Hunter, Nick. *Cyber Bullying*. Raintree, 2012.

Kant, Immanuel. *Lectures on Ethics*. Trans. Louis Infield. Harper and Row Publishers, 1963.

Kowalski, Robin .M, Susan P. Limber et al. *Cyberbullying: Bullying in the Digital Age*. Wiley Blackwell, 2012.

Langton, Rae. *Sexual Solipsism: Philosophical Essays on Pornography and Objectification*. Oxford University Press, 2009.

MacKinnon, Catharine. *Feminism Unmodified*. Harvard U P, 1987.

MacKinnon, Catharine. *Only Words*, Harvard U P. 1993.

Morgan, Robin. "Theory and Practice: Pornography and Rape." *Take Back the Night: Women on Pornography*. Ed. Laura Lederer. William Morrow, 1980: 134-40.

Mulvey, Laura. "Visual Pleasure and Narrative Cinema." *Feminism and Film Theory*. Ed. Constance Penley. Routledge, 1988: 57-68.

Nussbaum, Martha C. "Objectification." *Philosophy and Public Affairs*. Fall 1995, Vol. 24, Issue 4: 249–91.

Nussbaum, Martha C. *Creating Capabilities: The Human Development Approach*. Harvard U P, 2011.

Ozeki, Ruth. *A Tale for the Time Being*. Canongate, 2013.

Schroeder, J.E. "Consuming Representation: A Visual Approach."

Scanned by CamScanner

Representing Consumers: Voices, Views and Visions. Ed. B.B Stern. Routledge, 1998: 193-230.

Slater, David. "Urgent Ethnography." Japan Copes with Calamity. 2nd Edition. Ed. Tom Gill et al. Peter Lang, 2015: 25-49.

Surette, Ray. *Media, Crime and Criminal Justice: Images, Realities and Policies*. 5th Edition. Cengage Learning, 2015.

Wall, David .S. *Cybercrime and Society*. Polity Press, 2007.

Wall, David .S. *Cybercrime: The Transformation of Crime in the Information Age*. Sage, 2001.

Willard, Nancy.E. (2007). *Cyberbullying and Cyberthreats: Responding to the Challenge of Online Social Aggression, Threats, and Distress*. Champaign, IL: Research Press.

Scanned by CamScanner

Academic Deliberations on Words, Visuals and Beyond

Mediatization of Narrative Spaces

Narratives, being a constructive and strategic act in all forms, whether print, digital, visual, or interactive, have been the drivers of human societies in all arenas like the social, political, educational and the personal, to the extent of shaping behaviours and events. The term 'Narrative Space' has now come to include novels, films, video games, online social media and real-life environments. However, media, the major generators of the narrative, is pervading and hijacking the narrative spaces. Mediatization is the process through which core elements of a cultural or social activity like language, politics or religion, assume media form. As a consequence, the activity is largely performed through interaction with a medium, and the structure of the social and cultural activities are influenced by media environments, which they gradually become more dependent upon. It tracks changes in practices, cultures, and institutions in media saturated societies, resulting in the transformation of these societies themselves. In essence, mediatization is about 'media logic', a transformation of society and its culture through media.

Dr. Mini M Abraham is an Assistant Professor in the Postgraduate Department of English, Bharata Mata College, Kochi, Kerala. She has been dealing with topics ranging from Linguistics, Indian Writing, Culture Studies, Literary Theory, Postcolonialism and ELT. Her doctoral research was a field study in Listening Skills in ELT. Other areas of interest include Future Studies and P.G. Wodehouse. She is a member of ELTAI and ELTIF.

Dr. Gayathri P. J is a guest faculty in the Postgraduate Department of English, Bharata Mata College, Kochi, Kerala. She has been dealing with topics ranging from Literary and Critical Theory, Indian Writing, Postcolonialism, Culture Studies and Gender Studies. Her doctoral research was in Gender Studies. Her other areas of interest include Disability Studies and Modern Indian English Plays. She is a member of 'Forum on Contemporary Theory.'

PRATHAM PUBLICATIONS
4228/1, Ansari Road, Darya Ganj, New Delhi-110002 (INDIA)
Tele: +91-11-23266109,23283267
Fax: +91-11-23283267
E-mail : prathampublications30@gmail.com

₹ 2295/-

ISBN: 978-93-88742-12-2

Scanned by CamScanner